निमंत्रण

भगवती प्रसाद वाजपेयी

एक

"मनुष्य आदर्श के लिए लड़ रहा है। लड़ते-लड़ते उसे कितने युग बीते ! किन्तु उसकी लड़ाई का अन्त नहीं है। क्या इसलिए कि वह उसे छू नहीं पाता ?—या इसलिए कि आदर्श कल्पना-भर है—स्वप्न ? नहीं।

मनुष्य के कन्धे समाज-भवन की चौखट से लगे हैं। वह अपनी योजनाओं को स्वतः पूर्ण कर नहीं पाता। उसे चाहिए अपने पीछे समाज की स्वीकृति का हाथ, उसका पोषण। किन्तु समाज की नीति-रीति और उसकी मान्यतायें अतीत के अनुभवों—उनके निष्कर्षों—से आधारित रहती हैं। वे वर्तमान को नहीं देखतीं, वे भविष्य को भी नहीं देखतीं। इसका फल यह होता है कि मनुष्य के अन्तर में आग लग जाती है। सुलगता हुआ मनुष्य कुछ काल तक चलता रहता है—चलता रहता है। लेकिन यह चलना तो गति नहीं है। यह तो घसिटना है—दुर्गति।

इस दुर्गति से बचने का एक ही मार्ग है कि वह आग जो मनुष्य के अन्तर में लगी है, उसकी व्यक्तिगत न रहकर सम्पूर्ण समाज की हो जाय। तभी समाज की नीति और उसके; मान बदल सकेंगे, और तभी वह अपने उस आदर्श को पा सकेगा, जिसके लिए उसने लड़ाई प्रारम्भ की थी।

किन्तु तब तक उसका आदर्श और आगे बढ जायगा।

उसे सदा लड़ना है, लड़ते ही जाना है।'

सोचता हुआ गिरधारी उस दिन भी जब सोने के लिए पलँग पर गया, तो ग्यारह बज गये थे। नींद उसे आ जानी चाहिए थी, लेकिन आ नहीं रही थी।—"सवेरे ही उठकर उसे सम्पादकीय लेख लिखना है। नौ बजते-बजते फ़ोरमैन मैटर माँगेगा।···तनखाह उसकी कई मास की चढ़ गयी है। आज कह रहा था—'पंडितजी, अब काम चल नहीं रहा। एक-एक दिन बड़ी मुश्किल से कटता है। किसी तरह कुछ रुपये का प्रबन्ध कर ही दीजिये'। यह वह आदमी है जिसने संकट के समय हमारा साथ दिया है! स्त्री के आभूषण गिरवी रखकर इसने हमें कागज़ खरीदने के लिए रुपया जुटाया है।··· मैशीन के इंस्टालमेंट की तारीख भी आज बीत गयी। कल ही मुमकिन है उसका तक़ाज़ा भी आ धमके।···पत्र के लिए अब नया टाइप भी चाहिए। हमारे स्टैंडर्ड के अनुरूप छपाई हो नहीं रही है। हेडिंग-टाइप्स तो बहुत ज्जादा घिस गये हैं।···ये मेहरोत्रा-वोटर-कम्पनी वाले अगर एक पेज का विज्ञापन दे दें···।'

और इसी समय रेणु उसके निकट आ गयी। बोली—जान पड़ता है, रज्जन को ज्वर हो आया है। ज़रा देखो तो चलकर।

गिरधारी के जी में आया, वह साफ़ कह दे—'भाड़ में जाय रज्जन और ऊपर से गिरो तुम!' लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। एक झोंका आया और चला गया। वह सोचने लगा—रज्जन को ज्वर आ गया। मुझको क्यों नहीं कुछ हो जाता। सात-सौ-बयालिस आदमी एक हफ्ते के अन्दर लूं और टाइ-फॉयड से मर गये और मुझको···? वह उठा और उसने दूसरे कमरे में जाकर देखा, सचमुच रज्जन को ज्वर आ गया था। गिरधारी ने ज्यों ही उसके बदन पर हाथ रक्खा, रज्जन ने आँखें खोल दीं। बोला—मानी। वह 'पानी' को मानी कहता है।

प्यार से रज्जन की ठुड्डी पकड़ कर उसे ज़रा-सा हिलाते हुए गिरधारी ने पूछा—तुमको बुखार आ गया?

उसकी आँखें रज्जन की दृष्टि पर बिछी हुई हैं। वे उसकी व्यथा का आदि खोज रही हैं। वे जानना चाहती हैं कि यह व्यथा इसे हुई क्यों। साथ ही वह

यह भी जानने को व्याकुल हैं कि इस व्यथा का अन्त कहाँ है।

रज्जन व्यथित जरूर है, किन्तु वह अपने बाबू के प्यार को भी जानता है। वह जानता है कि मेरी व्यथा से बाबू को दुःख होता है। उसने पलक जरा गिराये, फिर खोले। तदनन्तर वह बोला—"हाँ बाऊ, अमें बुखाल आ दया।" किन्तु जान पड़ता है, केवल इस स्वीकृति-मात्र से उसे संतोष नहीं हुआ। तभी उसने क्षण-भर रुककर कहा—तल अत्या हो दायदा।

जब कभी बुखार आता है, यह यही कहता है—'कल अच्छा हो जायगा।' लक्ष करता हुआ गिरधारी उसके उज्ज्वल भविष्य की बात सोचने लगा। आल्हाद की एक लहर आयी और उसके अन्तर में फैल गयी।

इसी क्षण पहले शीशे की छोटी गिलसिया में थोड़ा पानी उड़ेलकर रेणु ने उसे पिला दिया; फिर अपनी धोती के अँचल से उसका मुँह पोंछ दिया।

रज्जन थोड़ा उचका और कुछ निश्चय-सा करता बोला—तल अम तो अपने छाथ ले तलना। अत्या बाऊ!

"अच्छा, अच्छा। हम तुमको दफ्तर जरूर ले चलेंगे। वहाँ तुमको तसवीरें दिखलावेंगे।" आश्वासन और उत्साह देते हुए गिरधारी कहने लगा। यद्यपि वह जानता था कि अभी दो-चार दिन रज्जन बाहर जा न सकेगा।

पिता की बात सुनकर रज्जन कितना प्रसन्न हुआ! विस्मयान्वित होकर वह पूछने लगा—तछवीलें! और सान्त्वना देते हुए गिरधारी ने उत्तर दिया—हाँ, तसवीरें। बहुत-सी दिखलायेंगे। अच्छा अब तुम चुपचाप सो तो जाओ।

किन्तु रज्जन एक बात और कहकर चुप होगा। उसे कहे बिना वह कैसे चुप होता! अधीर होकर बोला—लाल-लाल तछवीलें दिखलाना। अत्या बाऊ!

"अच्छा-अच्छा" कहते और उसकी पीठ को थपथपाते हुए गिरधारी ने कहा—लेकिन तुम सो तो जाओ।

रज्जन ने आँखें मूंद लीं।

गिरधारी जब दूसरे कमरे की ओर बढ़ने लगा, तो रज्जन ने एक वार फिर रेणु से कहा—अम्मा, वाऊ अमतो अपने छात दफ्तल ले दायंदे। वहाँ वे अमें लाल-लाल तछवीलें दिथलायेंदे।

रेणु रज्जन की उल्लसित मुद्रा देखती रही।

उधर गिरधारी क़दम आगे बढ़ाता हुआ सोच रहा था—'रज्जन के लिए हर तसवीर लाल होती है।' एक गौरव का भाव उसके मन में आ-आकर फैलता है। फिर एक धुंधला दृश्य भविष्य के पट पर आता हुआ स्पष्टतर होता जाता है। ऊर्जस्वित और महान्।

मकानों और प्रासादों, कुटियों और झोंपड़ियों, देव-मन्दिरों, मसजिदों और चर्चों के घण्टे बज रहे हैं; झाँझ, मृदंग, शंख तथा अज़ान आदि की ध्वनियाँ गूंज रही हैं; सामूहिक और सम्मिलित लक्ष-लक्ष जनसमुदाय के नारे विजय के निर्घोष, जैसे एक विश्वव्यापी कोलाहल के साथ नाना रीतियों और प्रकारों से एक ही मन्तव्य प्रकट कर रहे हैं—लाल तसवीरें!···स्वर उत्तरोत्तर आगे बढ़ रहा है और बुलन्द हो-होकर ऊँचा उठता जाता है।

रेणु पहले तो रज्जन की खाट के पास खड़ी रही; किन्तु फिर स्वामी के पीछे हो ली।

गिरधारी चलते हुए लौट पड़ा। वह निश्चिंत तो था ही सजग भी था। कहने लगा—मौसम बदल रहा है। सावधानी से रहने की आवश्यकता है। हवा चल रही है। नमी भी उसमें आ सकती है। यह चारपायी इस खुली खिड़की के सामने पड़ती है। इसको जरा भीतर की ओर खिसका लो, ताकि बौछार न लगने पाये। सवेरे डाक्टर को दिखा देना होगा। चिन्ता की क़तई ज़रूरत नहीं है।

पत्नी को आदेश देकर, फिर उसे समझाकर, वह दूसरे कमरे की ओर चल दिया।

रेणु भी गिरधारी के पीछे दो कदम चली, फिर लौट आयी और रज्जन की खाट के निकट बैठ गयी। उसे खेद हो रहा था कि इनसे जाकर मैंने

कहा ही क्यों ? सुनकर और देखकर कितने चिंतित हो उठे ! कितनी बार सोचती हूँ, कितनी बार तै करती हूँ कि इनको घर की चिन्ताओं से मुक्त रक्खूँ। लेकिन क्या करूँ, जी नहीं मानता। मुझसे कहते हैं—चिन्ता मत करो; और वह चिन्ता होती है, वास्तव में उन्हीं की।

सोचती हुई रेणु फिर उठी और रज्जन की खाट भीतर की ओर खसकाने लगी।

गिरधारी : अवस्था चालीस के लगभग। बदन एकहरा, वर्ण गेहुँआ लम्बी नाक पर सुनहले फ्रेम के चश्मे के ब्रिज। खादी का कुरता पहनते हैं। पैरों में अकसर चप्पल रहती है; कभी-कभी लाल महाराष्ट्रियन जूता, जिसकी एड़ी मुड़ी रहती है। पैदल जरा तेज चलते हैं। काम के समय मजाक से चिढ़ते हैं। हाथ में छाता-छड़ी कुछ नहीं रखते। सिर प्रायः खुला रहता है। बालों का एक गुच्छा कभी-कभी दायीं भौंह तक आ जाता है।

मजदूरों की सभा में भाषण देना है। संघ के मंत्री शर्म्माजी को घेरे खड़े हैं। उनका कथन है कि बिना आपके हमारी सभा कैसे सफल होगी ? चलना तो पड़ेगा ही और शर्म्माजी इक्के पर उस समय भी चले जा रहे हैं, जब मिलों के मालिक खस की टट्टियों के अन्दर अपनी दोपहर की नींद और ताश-शतरंज अथवा कैरम की बैठकें भी पूरी नहीं कर पाते।...जिला किसान-सभा का वार्षिकोत्सव है; और हो रहा है किसी गाँव में। सर्दी के दिन हैं और आजकल पाला गिर रहा है। लेकिन शर्म्माजी को जाना तो पड़ेगा ही और वे चले जा रहे हैं ! रात को जागरण, दिन को विचार-विमर्श, झगड़े और समझौते। सफर की थकान और आते-आते "संजीवन" का पिछड़ा हुआ कार्य-निर्वाह।...खाना खाने बैठे हैं और अन्दर खबर आ गयी कि वंशीधर के घर तलाशी हुई। पुलिस ने कुछ कागजात ले लिये और उसको गिरफ्तार कर लिया। सोचने लगते हैं—अगर यह वंशीधर जेल में ठूँस दिया गया, तो फिर जिले-भर में किसानों के बीच कौन कार्य करेगा !...रात को जाते समय प्रूफ पर फ़ाइनल ऑर्डर दे गये थे। प्रातःकाल पत्र निकल जाना चा [illegible] । किन्तु रात को चलते-चलते मालूम नहीं किस प्रकार एक ट्रे

मशीन में दबकर पिसकर रह गया ! रात को बारह बजे खबर मिली। ट्रैडिलमैन को हॉस्पिटल पहुँचाया। फिर उसके घर जाकर पिता-माता और भार्या को सक्रिय सान्त्वना दी।

विपिन एक कर्मठ युवक है। हजारों मजदूरों को अखबार पढ़ने योग्य बनाने का सारा श्रेय उसी को प्राप्त है। लेकिन बेचारा गरीब बहुत है। कांग्रेस का अधिवेशन मद्रास में हो रहा था। बड़ी इच्छा थी कि इस अधिवेशन को निकट से देखने का सुअवसर पाये। लेकिन इतना पैसा कहाँ था उसके पास कि वह जाने का साहस कर सकता। पहले से कुछ कहा भी नहीं उसने। जब चलने का दिन निकट आया, तब कहीं उसने कह दिया—शर्म्माजी मुझे साथ न ले चलियेगा ?

विपिन की बात सुनकर शर्म्माजी ने सोचा—इस प्रस्ताव के अन्दर एक कर्मठ किन्तु आर्थिक दृष्टि से असफल, निराश और पराजित युवक की आकांक्षा है और उसे पूर्ण होना चाहिये। तब विचारों की आँधियाँ आयीं और गयीं। वे सोचने लगे—हम दूसरों की आँखों से प्रायः अपने को देखते हैं और वे आँखें देखती हैं हमारे बहिरंग को। अन्तरंग हमारा उनकी आँखों में आ कहाँ पाता है ! वे हमारे मन की बात क्या जानें ? वे क्या जाने कि हमारी वास्तविक स्थिति कैसी है ? वे तो केवल उतना जान पाते हैं जितना हमारे भीतर न रहकर कार्य के रूप में बाहर आकर प्रकट हो जाता है। यद्यपि वह भी हमारी कल्पना और योजना के लेखे होता अपूर्ण—और कभी-कभी तो अप्रत्याशित—ही है। इस प्रकार हमारा यथार्थ परिचय न संसार को मिल पाता है न हमको।

—तो मन के अन्दर-ही-अन्दर उठने और घुमड़नेवाली आकांक्षाएँ और योजनाएँ कुछ नहीं हैं। व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व की रेखाओं के साथ उनका कोई महत्व नहीं।—यदि उन्हें कार्य का रूप वह दे नहीं सका।

विपिन जिस समय साथ ले चलनेवाली बात कह रहा था, उस समय रात थी और ग्यारह बज रहे थे। दस बजे के लगभग शर्म्माजी खद्दर-भण्डार में

थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि इस बार चेस्टर बनवा लें। लेकिन इतना टाइम नहीं रह गया था कि चेस्टर बन सकता। फिर भी चर्चा कर बैठे कि देखें, क्या जवाब मिलता है।

बोले—क्यों भई लियाकत, दो रोज़ में चेस्टर नहीं सिलवा सकते !

पहले तो लियाकत ने सुनकर मुसकरा दिया; फिर बोला—आप भी ख़ूब हैं शर्म्माजी। परसों आपको जाना है और चेस्टर सिलाने की बात आप आज—सो भी इस वक़्त—कर रहे हैं, जब दुकानें बन्द होने को हैं।···ख़ैर, मैं कोशिश करूँगा। आप कपड़ा पसन्द कर लीजिये और नाप दे दीजिये।··· अरे भई रामप्रताप, जरा मास्टर घोष को तो देखना; शायद अभी दुकान न बढ़ाई हो।

और सचमुच मास्टर घोष दुकान बढ़ाकर घर जा ही रहे थे। शर्म्माजी का काम है, यह जानकर तुरन्त चले आये। शर्म्माजी ने कपड़ा पसन्द करके नाप दे दिया था। यहाँ घर आये हुए अभी आधा घण्टा ही हुआ होगा।

तो इस समय विपिन की बात सुनकर उपर्युक्त बात सोचते हुए शर्म्माजी ने मुसकरा दिया। बोले—अच्छी बात है। लियाकत भाई को मेरा यह पत्र दे देना। बहुत प्राइवेट है।

पत्र लेकर निराश विपिन बिना स्पष्ट उत्तर पाये चलने लगा। उसे साहस नहीं हुआ कि अपनी याचना को एक बार फिर से दोहराये।

किन्तु उसी समय शर्म्माजी ने उसे रोककर कहा—और सुनो। चलने का प्रबन्ध हो जायगा। ट्रेन-टाइम से घंटाभर पहले यहीं आ जाना। भला !

और दूसरे दिन विपिन शर्म्माजी के साथ ट्रेन में बैठा कांग्रेस सेशन देखने जा रहा था।

लेकिन लियाकत भाई को आज तक शिकायत है कि शर्म्माजी स्वभाव के बड़े सनकी हैं। अपने ऊपर किसी की सद्भावना के ज़ोर का स्पर्श तक नहीं आने देते। एक-आध सज्जन से उन्होंने इस सिलसिले में कह भी डाला—मान लीजिये कि उनके पास रुपये की कमी थी। लेकिन इससे क्या ! क्या

हम उनके पास तकाजा भेजते ? जब चाहते, तब रुपया भेज देते। अजीब आदमी हैं साहब, क्या कहा जाय !

और शर्म्माजी हैं कि इस भेद की चर्चा उन्होंने विपिन से भी नहीं की। रह गया लियाक़त। सो उसको सफ़ाई देने की उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी। कहनेवाले ने जब उनको सूचित किया, तो अपने सम्बन्ध में लियाक़त की शिकायत सुनकर जरा-सा हँस भर दिया और बस।

दो

"सृष्टि का क्रम कितना अद्भुत है ! कहाँ का जन्मा व्यक्ति—और संसार भर में पता नहीं कहाँ-कहाँ घूमता चक्कर काटता फिरता है ! शत-शत अवसर उसे मिलते हैं, संयोग वश हो कि कार्यवश। उनकी थोड़ी-बहुत निकटता भी उसे मिलती है। परन्तु न कहीं कोई आँधी आती है, न तूफ़ान। संसार अपनी गति से चलता रहता है। किन्तु एक-न-एक दिन कहीं-न-कहीं कोई ऐसा संयोग भी आ जाता है, जब समाज और संस्कृति की समस्त सीमाएँ और मर्यादाएँ, अवसरों के अभाव और असुविधाएँ, दूर खड़ी रह जाती हैं। एक दूसरे को देखता है और देखता है। वह फिर-फिर कर देखता है और देखता चलता है। नित्य, नहीं तो जब कभी अवसर मिला तब। न अवसर मिला, तो अवसर को वह मिलता है। अवसर उसे नही पहचानता, तो वह स्वयं अपने आपको अवसर के ऊपर फेंक देता है। विवश अवसर आते हैं और व्यक्ति को अपना पूरक मिल जाता है।"

इस मिलन में रुपया बाधक होता है ?

नहीं।

समाज ?

यह भी नहीं।

संस्कृति, धर्म तथा राजव्यवस्था ? कहीं कोई नहीं। पुरुष और स्त्री के प्रकृत मिलन मे किसी प्रकार की कोई विषमता, कोई प्रतिरोध, बाधक नही है। मनुष्य की शक्ति, उसका साहस और शौर्य इस मिलन के सम्बन्ध मे समस्त अवरोधों से ऊपर हैं। यदि वह इसमें असफल रहा है, आज तक है और सोचता है कि भविष्य में भी रहेगा, तो यह एकमात्र उसकी अपनी निष्क्रियता, दुर्बलता और पराजय भावना है। सृष्टि ने उसको इस विषय में सर्वथा स्वतंत्र और विजयी बनाया है।'

कभी किसी ग्रन्थ में गिरधारी ने पढ़ा था। उस समय उसने इस कथन पर विशेष ध्यान नहीं दिया था। किन्तु आज—और इस समय, जबकि यहाँ नवाबगंज मे वह कार्यवश आ गया है और इस चलते राजपथ पर प्रश्नों की झड़ी, उसके समक्ष वर्षा-सी, लग रही है—उसे यही वाक्य बार-बार स्मरण आ रहे हैं। न जाने क्यो ?

"अरे आप यहाँ कहाँ मास्टर साहब ?"

कुछ अपरिचित सा-स्वर है। लेकिन कथन में यह माधुरी क्यों है ? जान पड़ता है, ध्वनि परिचित है। दृष्टि सामने जा पड़ती है।—ओ, यह बात है। कुछ समझ में आ रहा है। अपरिचित और अज्ञात को स्मृति ने अपने अंक में भर लिया है। जान पड़ता है, सब कुछ स्पष्ट रूप से समक्ष आ गया है—वह, जो अपरिचित था और वह भी, जो परिचित था ; वह जो अज्ञात था और वह भी जो ज्ञात था। जान पड़ता है , ज्ञात-अज्ञात, अपरिचित-परिचित दोनों-के-दोनों मिलन के पथ पर आ गये हैं।

निदान यह प्रश्न अकेला नही है। साथ मे वे भी हैं, जिन्होंने प्रश्न किया है। वे गिरधारी के निकट आ रही हैं। पर वे है कौन ?

यह जार्जेट की साड़ी , रंग हलका आसमानी, जिसमें उड़ते हुए बादल का आभास। यह किनारे पर सफेद चमकीला गोटा, जिससे पता चले कि कभी-कभी बिजली भी चमक उठती है। यह ब्लाउज जिसकी भूमि नीली, लेकिन छाप जिसमें मयूर के बैंजनी गुच्छों और उनकी हरी-हरी पत्तियों की।

ये गोरी मांसल अनावृत बाहें और स्कन्धमूल से ही ऊँचाई का पथ-निर्देश करने वाले वक्ष-कन्दुक। ये नोकदार नयन, जिनमें आकर्षण का मद और निमंत्रण। यह शृंखलित, नीचे की ओर पतली पड़ती हुई गुम्फित, काली रेशमी चोटी नितम्ब-प्रान्त के नीचे तक लहराती हुई। अंगरेजी से एम० ए० किया है। वायोलिन बजाने में कई प्रतियगिताओं के पुरस्कार और पारितोषिक ले चुकी हैं। आजकल नृत्यकला में अभ्यास चल रहा है। हाथ में एक पतली जंजीर, जिसमें बँधा हुआ रेशम से मुलायम घने और बड़े-बड़े बालों का कुत्ता जीभ निकाले हाँफ रहा है। कभी-कभी आँखें मूंद-मूंदकर खोलता है।

एक बार देखकर शर्माजी विस्मित हो उठे।—"ऐसी नारी और उनसे परिचय!" कुछ सोचते हुए बोले—ओः तुम हो मालती। दूर से देखकर मैं तो हैरान हो उठा कि यह है कौन, जो···? और कहो, अच्छी तरह हो न?

"आपकी कृपा से।"

उत्तर में शिष्टाचार है या व्यंग्य, कुछ स्पष्ट नहीं हो रहा है। व्यंग्य हो, तो कहीं दूर—प्रच्छन्न—हो सकता है। इस समय तो शिष्टाचार-मात्र झलकता है।

"यों ही जरा एक काम से आ गया था।"

जी, तो आप बेकाम भी आते-जाते हैं!

"लेकिन इस तरह यहाँ पैदल कैसे?"

प्रश्न में आभिजात्य है, लक्ष कर लेते हैं। तो भी उत्तर देते हैं—क्यों. दस कदम पर इक्का या बस जो मिलेगी!

एक खिल-खिल और मुसकराहट के बीच की हँसी। पश्चिम की ओर संकेत करती हुई बोली—इतनी दूरी को आप दस कदम कहते हैं!···

विस्मय के साथ चेष्टा थोड़ी बदलती है। कुत्ता चलने की ज़िद करता है, तो उसको रोकती हुई कहती है—रुक रे विन्टर, अभी चलती हूँ।

लेकिन यहाँ आप आये किसके यहाँ, यह आपने नहीं बतलाया?

सो, मुख्य प्रश्न यह है कि हज़रत आजकल आते-जाते कहाँ हैं ; और यह कि फिर इस बात को छिपा क्यों रहे हैं।

उत्तर देते हैं—अपने एक वर्कर (कार्यकर्त्ता) के यहाँ। उसको टी० बी० हो गयी है। घर में वृद्धा माता, युवती भार्या और तीन छोटे-छोटे बच्चे।

"हाँ, फिर यह तो दुनिया है।" मालती ने कुछ इस तरह उत्तर दिया, जैसे यह एक साधारण बात है और इस दुनिया में इस तरह की बातें तो चलती ही रहती हैं। जैसे इस पर ध्यान देना भी व्यर्थ-सा है। किन्तु फिर इस कथन को मानो गौन बनाते हुए उसने कहा—पर आपने कभी हमारे यहाँ आने की कृपा नहीं की!

बात चौंका देने की है ? क्योंकि मालती-सी नारी और शर्म्माजी से उसको यह शिकायत हो ! जान पड़ता है, तभी मुसकरा उठते हैं। कुछ सोचने और भटकते हुए कहते हैं—तुम्हारे यहाँ ?—हाँ, तुम्हारे यहाँ भी आ सकता हूँ। लेकिन पहले यह जान लेना चाहता हूँ कि इस शिकायत का उद्देश्य क्या है ?

प्रश्न के अन्दर एक चोट है, एक आरोप ; मालती अनुभव करती हुई कुछ सकपका उठती है। किन्तु उस आरोप की पकड़ में आत्मीयता का मार्दव भी तो है, लखकर तुरन्त मुसकराती हुई उत्तर देती है—चलिये चलिये। मास्टर साहब, आप बात बनाना बहुत जानते हैं। आते तो कभी हैं नहीं, और···। अरे मुझसे न सही, किन्तु कला से तो आपको कुछ दिलचस्पी हो ही सकती है।

उपालम्भ भी हो तो इतना मृदुल।

एकाएक सारे बदन में जैसी बिजली दौड़ जाती है। सोचते —'अरे मुझसे न सही।'—तात्पर्य यह कि मुझसे भला काहे को दिलचस्पी होने लगी।

जैसे अपने आपसे पूछना चाहते हैं—क्यों ? सचमुच तुम अब अपने को इस दिलचस्पी से बिलकुल दूर मानते हो ?

मन्द-मन्द मुसकराते हुए शर्म्माजी मालती के साथ चल देते हैं। चलते हुए सोचते जाते हैं—'कला से दिलचस्पी ?' प्रश्न अपने में पूर्ण है। व्यापक भी कम नहीं है। किन्तु तुरन्त, अपने ऊपर एक कर्तव्यभार का जैसे एक झटके

के साथ, अनुभव होने लगता है। गम्भीर होकर उत्तर देते हैं—मेरा जो वर्कर आज टी० वी० से आक्रान्त है, उसके जीवन का मूल्यांकन करने और उसे समाज की आँखों में अँगुली डालकर सुझाने में सहायक वह कितनी है, मेरे निकट तो कला का मूल्य इसी तरह कुछ आँका जा सकता है।

उधर एक झटका अपने चेतन मस्तिष्क के भीतर मालती भी अनुभव करती है। सोचती है कि वह इस व्यक्ति के आगे कितनी तुच्छ है! किन्तु फिर मन में आता है कि कुछ हो, मैं इनको अपने से दूर नहीं मानती। कभी-कभी इस दावे पर उसे सन्देह भी होने लगता है। तब वह सोचती है—मुझमें क्या ऐसा कुछ है जो——जो——?

कुत्ता फिर उसे एक ओर खींच रहा था। उसे रोकती हुई वह कह देती है—आप तो हर बात उपयोगिता की दृष्टि से देखते हैं। तभी आपसे बात करते हुए डर लगता है।

"आरोप यथार्थ है।" शान्त किन्तु स्निग्ध मन से शर्म्माजी बोल रहे हैं—लेकिन यह डर जो लगता है, यही थोड़ा गड़बड़ है। इसी को निकाल डालना होगा।

मालती को लगता है, जैसे कोई उसे छू रहा है। वह कह रही है—अच्छा, आपने मेरा वायोलिन तो सुना ही होगा।

"कहाँ? ऐसा अवसर कभी नहीं मिला!"

"आल-इंडिया-म्यूजिक-कान्फ्रेंस में गतवर्ष मैंने वह जो प्राइज पाया था······।"

"हाँ, सुना था।" शर्म्माजी का उत्तर है—लेकिन सुनने का अवसर कहाँ मिला! हम लोगों को अपने काम से इतनी छुट्टी कहाँ मिलती है, जो······।

मालती सड़क से हटकर दायीं ओर एक कोठी की तरफ घूमने लगती है।

शर्म्माजी—तो आजकल तुम इस कोठी में रहती हो!

"जी, पिताजी ने इसे सन् ३५ में बनवाया था।" कहती हुई मालती गौरव-भार से विलसित हो उठी। किन्तु गिरधारी को याद आ गया कि उसका जो

कच्चा मकान देहात में किसी तरह कुछ खड़ा भी रह गया था, इस वर्ष वह गिरकर पट पड़ गया ! फिर फाटक के भीतर लॉन को पार करते और पोर्टिको तक पहुँचते-पहुँचते बोल उठे—"कितने दिनों बाद मिलना हो रहा है ! क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि कभी-कभी आफिस में आकर ही मिलती रहतीं ?" कहते-कहते एक बार फिर सोचने लगे—रेणु उस मकान में ब्याह के समय दस-पाँच दिन ही तो रहने पायी थी।

बरामदा आ गया है। अमिया एक (नौकरानी) अन्दर से निकलती हुई बोल उठी—आप कहाँ थीं ? माँ जी आपको पूछ रही थीं।

मालती अनिच्छापूर्वक बोली—"यहीं सड़क पर तो घूम रही थी" और शर्माजी को ऊपर सीढ़ी की ओर ले जाने लगी। विक्टर की जंजीर उसने अमिया को दे दी।

आगे-आगे शर्माजी चले, पीछे पीछे मालती।

सीढ़ी पर चढ़ती हुई मालती ने उत्तर दिया—"हो क्यों नहीं सकता था ?···पर यह हो सकने की बात आपने खूब कही !" फिर ऊपर के कमरे में पहुँच कर बोली—लेकिन मैंने अभी पूछा न था आपसे, आपने कभी मेरे यहाँ आने की कृपा नहीं की !

शर्माजी पहले मुसकराने लगे। फिर कमरे की सजावट देखते हुए बोले—हूँ; तो यह बात है !

इसी समय अमिया आ गयी। उसने पंखा खोल दिया।

मालती बोली—दो गिलास शरबत बनाकर ले आना।

अमिया चली गई। किन्तु तत्काल ही प्रतीत हुआ, कुछ लोग सम्भवतः और आ रहे हैं। नीचे से उनका बोल स्पष्ट सुनाई दे रहा था।

इसी क्षण उल्लसित मालती बोली—आपको किसी अत्यन्त आवश्यक कार्य से कहीं जाना तो नहीं है ? मेरा मतलब केवल यह जानने से है कि आध घंटा तक तो आप ठहरेंगे ही।

जान पड़ता है, शर्माजी उसकी ग्रीवा पर उड़ती हुई एक लट की ओर देख रहे थे। बोले—अब तो उलझ ही गया हूँ······।

के साथ, अनुभव होने लगता है। गम्भीर होकर उत्तर देते हैं—मेरा जो वर्कर आज टी० बी० से आक्रान्त है, उसके जीवन का मूल्यांकन करने और उसे समाज की आँखों में अँगुली डालकर सुझाने में सहायक वह कितनी है, मेरे निकट तो कला का मूल्य इसी तरह कुछ आँका जा सकता है।

उधर एक झटका अपने चेतन मस्तिष्क के भीतर मालती भी अनुभव करती है। सोचती है कि वह इस व्यक्ति के आगे कितनी तुच्छ है! किन्तु फिर मन में आता है कि कुछ हो, मैं इनको अपने से दूर नहीं मानती। कभी-कभी इस दावे पर उसे सन्देह भी होने लगता है। तब वह सोचती है—मुझमें क्या ऐसा कुछ है जो——जो——?

कुत्ता फिर उसे एक ओर खींच रहा था। उसे रोकती हुई वह कह देती है—आप तो हर बात उपयोगिता की दृष्टि से देखते हैं। तभी आपसे बात करते हुए डर लगता है।

"आरोप यथार्थ है।" शान्त किन्तु स्निग्ध मन से शर्म्माजी बोल रहे हैं—लेकिन यह डर जो लगता है, यही थोड़ा गड़बड़ है। इसी को निकाल डालना होगा।

मालती को लगता है, जैसे कोई उसे छू रहा है। वह कह रही है—अच्छा, आपने मेरा वायोलिन तो सुना ही होगा।

"कहाँ? ऐसा अवसर कभी नहीं मिला!"

"आल-इंडिया-म्यूजिक-कान्फरेंस में गतवर्ष मैंने वह जो प्राइज़ पाया था······।"

"हाँ, सुना था।" शर्म्माजी का उत्तर है—लेकिन सुनने का अवसर कहाँ मिला! हम लोगों को अपने काम से इतनी छुट्टी कहाँ मिलती है, जो······।

मालती सड़क से हटकर दायीं ओर एक कोठी की तरफ घूमने लगती है।

शर्म्माजी—तो आजकल तुम इस कोठी में रहती हो!

"जी, पिताजी ने इसे सन् ३५ में बनवाया था।" कहती हुई मालती गौरव-भार से विलम्बित हो उठी। किन्तु गिरधारी को याद आ गया कि उसका जो

कच्चा मकान देहात में किसी तरह कुछ खड़ा भी रह गया था, इस वर्ष वह गिरकर पट पड गया ! फिर फाटक के भीतर लॉन को पार करते और पोर्टिको तक पहुँचते-पहुँचते बोल उठे—"कितने दिनों बाद मिलना हो रहा है ! क्या ऐसा नही हो सकता था कि कभी-कभी ग्राफिस में ग्राकर ही मिलती रहती ?" कहते-कहते एक बार फिर सोचने लगे—रेणु उस मकान में ब्याह के समय दस-पांच दिन ही तो रहने पायी थी।

बरामदा ग्रा गया है। ग्रमिया एक (नौकरानी) ग्रन्दर से निकलती हुई बोल उठी—ग्राप कहाँ थीं ? माँ जी ग्रापको पूछ रही थीं।

मालती ग्रनिच्छापूर्वक बोली—"यहीं सड़क पर तो घूम रही थी" ग्रौर शर्म्माजी को ऊपर सीढी की ग्रोर ले जाने लगी। विक्टर की जंजीर उसने ग्रमिया को दे दी।

ग्रागे-ग्रागे शर्म्माजी चले, पीछे-पीछे मालती।

सीढी पर चढती हुई मालती ने उत्तर दिया—"हो क्यों नहीं सकता था ?···पर यह हो सकने की बात ग्रापने खूब कही !" फिर ऊपर के कमरे में पहुँच कर बोली—लेकिन मैंने ग्रभी पूछा न था ग्रापसे, ग्रापने कभी मेरे यहाँ ग्राने की कृपा नही की !

शर्म्माजी पहले मुसकराने लगे। फिर कमरे की सजावट देखते हुए बोले—हूँ; तो यह बात है !

इसी समय ग्रमिया ग्रा गयी। उसने पंखा खोल दिया।

मालती बोली—दो गिलास शरबत बनाकर ले ग्राना।

ग्रमिया चली गई। किन्तु तत्काल ही प्रतीत हुग्रा, कुछ लोग सम्भवतः ग्रौर ग्रा रहे हैं। नीचे से उनका बोल स्पष्ट सुनाई दे रहा था।

इसी क्षण उल्लसित मालती बोली—ग्रापको किसी ग्रत्यन्त ग्रावश्यक कार्य से कहीं जाना तो नही है ? मेरा मतलब केवल यह जानने से है कि ग्राध घंटा तक तो ग्राप ठहरेंगे ही।

जान पड़ता है, शर्म्माजी उसकी ग्रीवा पर उड़ती हुई एक लट की ग्रोर देख रहे थे। बोले—ग्रब तो उलझ ही गया हूँ······।

मालती ने लक्ष किया—उसका नाम एक लता से भी सम्बद्ध है। बोली—लेकिन सुलझाव आप पर निर्भर है।

"चले जाने का संकेत काफ़ी शिष्ट है!" शर्म्माजी इस तरह बोले कि मुसकराहट से उनके दो दांत भी झलक पड़े।

भावमत्त मालती गम्भीर हो गयी। बोली—ऐसी बात हो तो, मैं जीवन-भर के लिए निमंत्रण देती हूँ। आपको कहीं जाने की आवश्यकता न होगी।

उत्तर में शर्म्माजी ने एकाएक अत्यधिक गम्भीर होकर जैसे एक निःश्वास को दबा लिया हो—बोलने की आवश्यकता नहीं समझी।

इसी क्षण मां के साथ तारिणी और पूर्णिमा आ गयीं। पुलक हास और उत्साह जैसे उस कक्ष भर में फैल गया।

मालती ने परिचय कराया, फिर वह बोली—देख लो, यही हैं मेरे मास्टर साहब। इन्हीं की प्रेरणा से मेरे हृदय में कला के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ था।

"किन्तु यह श्रेय लेते आज मुझे सकोच हो रहा है" शर्म्माजी बोले—मैं इतना बदल गया हूँ कि मेरे तब और अब में कोई साम्य नहीं है। मैं कला को उद्देश्यहीन नहीं मानता।

मां, पूर्णिमा और मालती एक साथ शर्म्माजी की ओर देखने लगीं।

तारिणी बोली—आनन्द को कदाचित् आप उद्देश्य में सम्मिलित नहीं मानते।

"आनन्द? आनन्द तो सापेक्ष्य वस्तु है। प्रत्येक व्यक्ति आनन्द को पृथक्-पृथक् रूपों, प्रकारों और संयोगों में देख सकता है। फिर व्यक्ति का आनन्द यदि समाज के विकास के प्रतिकूल ठहरता हो, तो मैं ऐसे आनन्द की कला को कभी जीवित न रहने दूं।

सुनकर मां स्थिर रहीं, किन्तु तारिणी और पूर्णिमा अवाक् हो उठीं।

क्षणभर रुककर मालती कहने लगी—उन दिनों शायद बीस रुपये पर (शर्म्माजी के समर्थन की कामना से) क्यों? हां, बीस रुपये पर—मुझे शहर

से बाहर साइकिल पर हिन्दी पढ़ाने आते थे। आज तो चार-पाँच सौ रुपये इन्हें अपने प्रेस से मासिक बाँटने पड़ते हैं! क्यों ?

शर्माजी बोल उठे—सात-सौ से भी ऊपर।

"लो सात-सौ से भी ऊपर!—और इतना ही क्यों?" मालती गौरव का अनुभव करती हुई कहने लगी—आज तो ये हमारे देश के गौरव ..."।

"बस रहने दो।" शर्माजी ने बीच ही में बात को समाप्त करने का आदेश करते हुए कहा—"अपनी श्रद्धा को अधिक आगे मत बढ़ाओ। देश बहुत बड़ी चीज है, सेवा भी कम बड़ी नहीं। जो कुछ सोचता हूँ, उसका दशांश भी तो नहीं कर पाता। हमारे देश की जनता शिक्षित ही कितनी है, जो उसकी समस्याओं को लोग ठीक तरह समझ सकें। फिर वह शिक्षा भी कितनी एकांगी है? जीवन के असली महत्व को हममें से कितने समझ पाते हैं!"

सुनकर मालती अपने ऊपर एक चोट का अनुभव करने लगी। अब उसके मन में बार-बार यही प्रश्न उठता—एक ये हैं!—एक मैं।

तब जान पड़ता है, विषय को बदलने की इच्छा से वह बोल उठी—देखती हूँ, आप हमेशा हर बात में कितनी गहराई खोजते हैं!

आगत पुरुषों के स्वागत में तारिणी और पूर्णिमा प्राय एक मत होकर उन्हें बनाने की चेष्टा करती आ रही थी। किन्तु आज वे भी अपेक्षाकृत गम्भीर जान पड़ती थी। कदाचित् इस विचार से कि ये कितने विचित्र आदमी हैं, जो प्रशंसा की बात भी नहीं स्वीकार करते।

पूर्णिमा बोली—अच्छा मास्टर साहब, आप सदा व्यस्त रहते हैं, या किसी प्रकार के मनोरंजन की भी आवश्यकता आपको पड़ती है?

माँ उठी और टहलती हुई छज्जे पर आ गयी। मालूम हुआ, किसी ने कोई सूचना दी है।

शर्माजी सोचते थे—मनोरंजन? कैसा मनोरंजन? गुलाम और पतित देश, रूढ़ियों और परम्पराओं से बँधा हीन समाज और संघर्ष-जर्जर मनुष्य को क्या इतना अवसर है कि वह मनोरंजन को खोजता फिरे?

फिर सोचते हैं—किन्तु क्या यह दृष्टि एकांगी नहीं है ? हँसने-बोलने और अपनी समस्याओं को सुलझाने के सिलसिले में घड़ी-दो घड़ी का मनोरंजन तो सबके लिए अत्यन्त आवश्यक है। कौन इससे इन्कार कर सकता है ?

माँ ने भीतर आकर सूचना दी—गेहूँ साढ़े नौ रह गया !

सुनकर सभी क्षण-भर स्तब्ध रह गये शर्म्माजी बोले—बड़ा कठिन समय आ रहा है !

गम्भीर माँ बोली—जैसे-जैसे भगवान रक्खेंगे वैसे-वैसे हमें रहना होगा।

थोड़ी देर मौन रहने के बाद फिर मूल विषय पर आते यकायक भाव दल गया। हँसत हुए शर्म्माजी कहने लगे—ये सब बातें मैं इस तरह सहज नहीं बतलाता। इस घर में मेरी हरएक बात का मूल्य होता आया है। कुछ गम बटाने की कहो तो बतलाऊँ भी।

माँ तारिणी और पूर्णिमा सब-की-सब क्रम-क्रम से शर्म्माजी और मालती ोनों की मुद्राओं को ध्यान से देखने लगीं। क्षण-भर बाद माँ ने जब शर्म्माजी ी 'हर एक बात के मूल्य होने' का अभिप्राय समझ पाया, तो वे आप-ही-आप ास पड़ीं। बोलीं—देखती हूँ, जितने भी आदमी अब तक मेरे यहाँ आये, अपनी ातचीत में, किसी ने भी हमको इतना आनन्द नहीं दिया, जितना बेटा तुम्हारी ास बात ने।

मालती इस समय अपना उत्तर रोककर माँ की ओर आकृष्ट हो गयी ौर पूर्णिमा सोचने लगी कि काम बटाने से इनका अभिप्राय क्या है ?

माँ ने इसी क्षण कह दिया—आज भी बेटा तुम्हारी बात खाली न ायगी। जिस लायक हूँ, ज़रूर करूँगी। लेकिन यह काम बटाने की बात मेरं ामझ में नहीं आयी।

"हाँ, मैं हैरान हूँ कि' मालती तत्काल बोल उठी—आखिर आपक ातलब क्या है ? इतने दिनों बाद जो आपका दर्शन भी हुआ, तो लगे अ हेली बुझाने।

अंतिम बात में मालती की धृष्टता देखकर माँ को किंचित लज्जा का अनु:

हुआ। पूर्णिमा तारिणी के कन्धे से लगकर उसके कान में चुपचाप कुछ कहने लगी।

परन्तु उस ओर ध्यान न देकर शर्म्मा जी बोल उठे—युग कितना बदल रहा है, कभी आप लोगों ने सोचा है? सोचा है कभी कि आज हमारे देश को कला के नाम पर वायोलिन की मधुर झंकार, अभिनय और नृत्य-कला के नव-नव प्रकारों की अधिक आवश्यकता है या उस संगठित शक्ति और स्वाधीनता की, जो मदान्ध फैसिस्ट देशों के आक्रमणों से हमें बचा सके—हमारी संस्कृति की रक्षा कर सके? कर सकेगी रक्षा उसकी उस समय तुम्हारी यह कला, जब फ़ैसिस्ट देशों के सैनिक हमारी सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक मर्यादा को भंग करने—उसे कुचलने—आवेंगे?

पूर्णिमा बोली—लेकिन हम कर ही क्या सकते हैं? हमारी सामर्थ्य ही कितनी है?

"इसके सिवा ये समस्यायें एक तो राजनैतिक हैं, दूसरे क्षणिक।" गम्भीरता-पूर्वक मालती बोली—"समस्त काल-व्यापी कला की शाश्वत सत्ता पर इनका क्या प्रभाव हो सकता है!"

इसी समय अमिया शरबत ले आई। माँ, तारिणी तथा पूर्णिमा के बीच थोड़ी-बहुत अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हुई। मालती बोली—अब मैं तो शरबत लूँगी नहीं। मुझे चाय बना ला अमिया। शर्म्मा जी बोले—शरबत के बजाय चाय मैं भी अधिक पसन्द करूँगा।

मालती की ओर संकेतकर अमिया बोली—आपने शरबत के लिए ही कहा था।

मुस्कराती पूर्णिमा की ओर देखती हुई मालती बोली—तूने देर कर दी, तब मुझे भी राय बदलनी पड़ी।

पूर्णिमा बोली—तो ला, एक गिलास मुझे दे दे। दूसरा माँ तुम ले लो।

माँ ने कहा—मैं न लूँगी।

तब तारिणी ने उसे ले लिया।

शर्म्मा जी ने कहा—केवल यह कह देने मात्र से आज का कोई नागरिक बरी नहीं हो सकता कि ये समस्याएँ तो राजनैतिक हैं। इसलिए मेरे साथ

इसका सम्बन्ध ही क्या है ! और हम कर क्या सकते हैं, यह कहना हमारी पराजित भावना का द्योतक है। 'हम कर ही क्या सकते हैं' न सोचकर सोचना हमें यह चाहिए कि हम क्या नहीं कर सकते ?—और यह कि—जो कुछ भी कर सकते हैं, क्या हम उसे कर रहे हैं ?…रह गयी बात समस्त काल-व्यापी कला की शाश्वत सत्ता की। सो जीवन की भांति कला की कोई भी स्थिति, रूप-रेखा और सत्ता समस्त काल-व्यापी नहीं होती।

उत्तर सुनकर कमरे भर में एक निस्तब्धता-सी छा गई। उधर इन शास्त्रीय कथनों और विवादों से मां को जब कोई दिलचस्पी न जान पड़ी, तो मालती की ओर देखती हुई वे बोल उठीं—यह बहस तो खत्म होने से रही। अपने मास्टर साहब को वायोलिन ही बजाकर सुनाया होता।

किन्तु ऐसे गम्भीर विचार-विमर्श के समय वायोलिन बजाने का मालती में कोई उत्साह न रह गया था। इसका एक कारण यह भी था कि शर्म्माजी के विचारों द्वारा वह अपनी कला-प्रियता की अवमानता का भी उत्तरोत्तर अनुभव कर रही थी। अतएव वह बोली—इस समय तो मैं इसके लिए तैयार नहीं हो सकती मां।

शर्म्मा जी मुस्कराते हुए बोले—मैं तुमसे इस समय ऐसे ही उत्तर की आशा करता था।

इस पर पूर्णिमा तारिणी के कन्धे से लगकर खिलखिलाने लगी। यहाँ तक कि उसे रूमाल मुंह से लगा लेने की जरूरत पड़ गयी। मां चुप रहीं। हां, एक बार मुस्कराने की असफल चेष्टा उन्होंने जरूर की।

मालती शान्त भाव से बोली—मैं बहस नहीं करना चाहती। लेकिन इतना अवश्य जानती हूँ कि युद्ध के समय भी हर आदमी सैनिक नहीं बनता। इसके सिवा युद्ध के सैनिकों को भी मनोरंजन की आवश्यकता होती है। अवकाश के समय वे मनोरंजन के साधनों पर भी उसी प्रकार टूट पड़ते हैं, जैसे भूख लगते ही खाने के ऊपर। मनुष्य चाहे जिस स्थिति में हो, कभी-न-कभी भावनाओं, तरंगों जीवन की मधुर स्मृतियों और भविष्य के स्वर्ण-प्रभात की स्वप्न-कल्पनाओं में निमग्न होना अवश्य चाहता है। और इसी

में कला की सार्थकता भी है। रह गयी बात देश की रक्षा की, सो इसकी ज़िम्मेदारी सरकार की है, न कि जनता की। जनता पर तो तब होती, जब सरकार ने उसे इस योग्य बनाया होता। निहत्थे आदमी अपने ऊपर आक्रमण हो जाने पर साधारण बौद्धिक प्रयोगों और ज्ञात विधियों द्वारा आगत संकट के दुष्परिणामों से भले ही थोड़ी-बहुत रक्षा कर लें, किन्तु वे आक्रमणकारी को आक्रमण करने से कभी रोक नहीं सकते।

एकाएक माँ तारिणी और पूर्णिमा मालती का उत्तर सुनकर सजग हो उठीं। भावी संकट की कल्पना से एक उनके बीच हलचल-सी उपस्थित हो गयी।

किन्तु ज़रा भी अस्थिर न होकर शर्माजी बोले—तुम्हारे तर्क बहुत पुराने हैं। कला की सार्थकता मनुष्य को केवल तरंगित, विह्वल, विवश और अचेत कर देने में नहीं, जीवन के विकास में उसको सजग, सतर्क, सचेत, आरूढ़, कटिबद्ध और उत्तेजित करने में भी है। फिर गुलाम, पशु और असमर्थ जनता की यह परले दरजे की कायरता है कि वह सरकार के उन स्वेच्छापूर्ण विधानों को भी, जो उसने व्यवस्था और शांति-रक्षा के नाम पर प्रचलित किये हैं, वरदान मानकर चुपचाप सहन करती जाय।

व्यंग्य के स्वर में, कुटिल मुस्कान के साथ पूर्णिमा बोली—तो इसके लिए क्या आप हम विवाहित स्त्रियों से भी घर-गृहस्थी त्याग कर, सर में कफनी लपेट कर, चल देने की आशा कर रहे हैं?

"यह बात मेरे बतलाने की उतनी नहीं, जितनी उन लोगों के स्वयं सोचने और तै करने की है, जिन्होंने परिस्थितियों के आगे अपने आपको बलि-पशु बना लिया है।" शर्मा जी ने कुछ इतने गम्भीर होकर ऐसे ओजस्वी स्वर में कहा कि सब अवाक् किंवा अस्थिर हो उठे।

इसी समय अमिया ट्रे में चाय ले आई। एकाएक तारिणी के होंठ कुछ हिले। वह बोली—आपके लिए चाय मैं बना दूं।

शर्माजी बोल भी न पाये थे कि मालती ने मुस्कराते हुए कह दिया—धन्यवाद। उसका तात्पर्य यह था कि यह कार्य-निर्वाह तो मुझे करना था।

पूर्णिमा ने फिर तारिणी के कान में फुसफुस किया। शायद कहा कि प्राइवेट-सेक्रेटरी बड़ा तेज पड़ रहा है! शब्द कुछ ऐसे श्रमन्द थे और स्वर में ऐसी चंचलता कि शर्म्माजी ने ताड़ लिया। बोले—पूर्णिमाजी, आपको तो एक सफल सेटायरिस्ट लेखिका होना चाहिये। आप में इसके अनुकूल समस्त गुण हैं।

चाय ढालती तारिणी बोल उठी—इसी तरह एक-एक करके हम सबको बहका लीजिये। आपका यह नुसखा मुझे बहुत पसन्द आया। अच्छा, मुझे आप क्या करने को कहते हैं?

माँ बोल उठीं—ऐसी बात मत कहो बड़ी-बहू। बटा, तुम इसकी बात का कुछ खयाल न करना। ये दोनों-की-दोनों बड़ी हँसोड़ हैं।

पूर्णिमा इसी क्षण कहने लगी—बाद मुद्दत के हम लोगों को जो एक राही मिला भी, तो तुम हमें खुलकर उससे दो बातें तक कर लेने की आज़ादी नहीं देना चाहतीं। तुम ठहरीं बड़ी-बूढ़ी माँ तुम्हें चाहिए कि हमें आशीष-भर देती रहो,·· बस। दुनियाँ भर की पंचायत में पड़ने की तुम्हें क्या ज़रूरत?—है न दीदी?

किन्तु तारिणी मुस्कराती बोली—अच्छा ऐसी बातों में मेरा समर्थन तुम्हारे काम का न हो, तो···?

इस पर सब ने हँस दिया। केवल माँ ने झट उत्तर दिया—अच्छी बात है, मैं अब न बोलूँगी। जो तुम्हारे मन में आये सो बको।

मालती मन-ही-मन घुल रही थी। उसके मन में आया कि वह अम्माजी को संकेत कर दे कि वे पूर्णिमा की बातों में न पड़ें। किन्तु संकोचवश वह फिर इस सम्बन्ध में कुछ कह न सकी।

पूर्णिमा बोली—तुम्हारे पैर पड़ती हूँ माँ, मुझे दो-चार बातें और कर लेने दो।···हाँ साहब, बतलाइये, दीदी के बारे में आपने क्या तै किया?

तारिणी शर्म्माजी के प्याले में चीनी घोल रही थी। एकाएक उसके होठों में कम्पन हुआ और वह बोली—चाहे जैसी चाय मैं ढाल दूँ, मेरा तो विश्वास है पीने वाले को कभी शिकायत हो नहीं सकती।···लीजिये, शर्म्माजी

पूर्णिमा बोली—दो घूंट पीकर बतलाइयेगा, तो जजमेंट और भी अधिक बलेंस्ड रहेगा।

शर्माजी समझ गये, ये लोग इन समय वार्तालाप में गम्भीर कितने हैं। तब वे सचमुच दो घूंट पीकर बोल उठे—माफ़ कीजियेगा, अगर आप स्थानीय काफ़े-डी-लग्ग की मलका होतीं, तो मैं आपके यहां चाय पीने नित्य आया करता।

एकाएक मालती और पूर्णिमा ने ताली पीट दी। हाथ उठाकर एक नमस्कार (सलाम) के साथ प्रफुल्लित तारिणी बोली—शुक्रिया। (दाँतों में जिह्वा ले जाकर) नहीं, धन्यवाद !······पर आपको मालूम होना चाहिए शर्माजी कि मेरा छोटा भाई मसूरी में एक होटल का ही बिज़नेस कर रहा है।

आश्चर्य के साथ शर्माजी बोले—अच्छा !

और उत्साहित पूर्णिमा कहने लगी—और मैंने भी शर्माजी हास्यरस की कुछ कहानियाँ लिख रखी हैं। कभी आपको दिखलाऊँगी। लेकिन···अच्छा, अब आप आयेंगे कब ?

"बारह वर्ष के बाद इसी बार आये हैं।" मालती कुछ इस तरह बोली जैसे कुछ कहते-कहते रुक गयी हो।

"तो शंकरजी का-सा फेरा होता है आपका !" पूर्णिमा हँसते-हँसते बोल उठी—"यह बात है ! लेकिन पार्वतीजी को भी साथ रखा कीजिये, तो अच्छा हो !"

इस क्षण शर्माजी के सामने आज की रुग्ण, अस्वस्थ और चिड़चिड़ी रेणु जैसे समस्त आकार खड़ी हो गयी। और इसी क्षण मालती ने कह दिया—सो इस बार भी ये अपने मन से थोड़े ही आये हैं। मैं ही जबरदस्ती खींच लायी हूँ।

माँ बोली—"ख़ैर, किसी तरह सही। इतनी कृपा क्या कम है कि आये तो।

"पर अबकी बार जो बारह वर्ष बाद आये, तो कौन जाने बीबी कहाँ हों······।" पूर्णिमा बोली—और हम लोग···?

चिन्तित-सी माँ बोल उठीं—एक दिन आगे की बात तो कही नहीं जा सकती। कितना समझाती हूँ कि इस तरह नहीं चल सकता। पर इसकी समझ में ही कुछ नहीं आता। आशीर्वाद दीजिये कि इसका जीवन सुखी बने।

संकोच से मालती गम्भीर हो उठी। कुरसी से उठकर टहलती हुई वह कभी माँ की ओर देखती, कभी शर्माजी की ओर।

अन्त में उठते हुए शर्म्माजी बोले—पर विवाह के लिए इतनी चिन्ता करने की भी जरूरत नहीं है। एक-न-एक दिन तो वह होगा ही। हाँ, उसकी प्रतीक्षा में जीवन का यह बहुमूल्य समय खोना अलबत्ता शोचनीय है। बल्कि मैं तो यह भी कहना चाहूँगा कि अगर ये देश-कार्य की ओर दृष्टि डालें, तो इनके जीवन को अपने आप पूर्ण और सफल होते देर न लगे!

शर्म्माजी को चलने के लिए तत्पर देखकर मालती सबके साथ पीछे-पीछे चलने लगी। बोली—चलिये, आपको पहुँचा आऊँ।

सुनकर शर्म्माजी को आश्चर्य हुआ। उस आश्चर्य में एक विचित्र प्रकार की मधुरता थी। उन्हें अपूर्व प्रसन्नता हुई, कुछ उस तरह की, जैसी समुद्र के किनारे पहुँच जाने पर हो।—आशंका भी हुई, जैसी परीक्षा दे देने के पश्चात् हुआ करती है। वे चल रहे थे; किन्तु उन्हें प्रतीत हो रहा था, आज इस गति में थोड़ा परिवर्तन है।

कमरे के द्वार पर आकर बोले—इतनी तकलीफ़ उठाने की क्या ज़रूरत है? मैं चला जाऊँगा।

फिर मालती की ओर दृष्टि डालते हुए कहने लगे—विश्वास मानो, तुरन्त ही लौट न आऊँगा।

माँ बोली—सो आपका घर है। ऐसा सौभाग्य कहाँ मिलता है जो आप जैसा देश-सेवक इस घर को पवित्र करे।

हाथ जोड़कर पूर्णिमा बोली—और मैं अपनी धृष्टता के लिए अगर क्षमा माँगूं तो आपको कहीं बुरा न लगे, यही सोचकर···। लेकिन क्या आप

हमारे ऊपर कृपा-भाव रखकर कम-से-कम हफ्ते में एक बार अवश्य···?···मैं गाड़ी भेज दिया करूँगी।' ···फिर पेट्रोल-राशनिंग की बात सोचती हुई बोली—'खैर, सवारी भेज देने का प्रबन्ध कुछ-न-कुछ हो ही जायगा।

"खैर, आने के लिए सवारी बाधा नहीं पहुँचायेगी।" माँ बोल उठी।

हँसती हुई तारणी बोली—मैं एक ही बात का आपको प्रलोभन दे सकती हूँ। वह यह कि चाय आपको आपकी इच्छा के अनुसार···। और उसने हाथ जोड़ लिए।

सब लोग फिर हँस पड़े।

माँ ने कह दिया—क्या बताऊँ। बड़े बेटा भी इस समय नहीं हैं, लेकिन मेरी प्रार्थना है कि आप आते रहें बराबर।

"मैं थोड़ी दूर आपको भेज आऊँ माँ।" मालती ने किंचित् संकोच के साथ पूछा।

आश्चर्य से माँ बोली—"तू भेजने जा रही है! अच्छी बात है।" यद्यपि उन्हें यह उचित नहीं प्रतीत हुआ।

फिर सबने नमस्ते की।

गिरधारी ने माँ को प्रणाम किया तो वे बोलीं—जियो-जियो बेटा।

कार पर जब शर्माजी पीछे बैठ गए और उसके बगल में मालती, तो माँ के जी में कुछ उलझन-सी हो उठी। कार जब चल पड़ी, तो अन्तिम नमस्ते फिर हुई।

हाथ जोड़े हुए पूर्णिमा बोली—मेरी धृष्टता···और तारणी—मैं क्या कहूँ?

दोनों जब पोर्टिको से अन्दर लौटने लगीं तो अलग-अलग कुछ सोच रही थीं। एक को दूसरे से कुछ भी कहने की आवश्यकता न थी।

तीन

आज रात को बड़ी देर तक मालती को नींद नहीं आई। वह करवटें बदलती रही। फिर उठी और उसने आलमारी से एक पुस्तक निकाली। वह उसे पढ़ती रही। किन्तु पाँच पेज तक पढ़ जाने के बाद वह जब अपने आप

से पूछने लगी—कितना क्या···पढ़ा ?' तो उसे प्रतीत हुआ कि वह एकदम कोरी है; कुछ पढ़ नहीं सकी। उसने चाहा कि वह वायोलिन वजाये, किन्तु आज उसे उसमें भी कोई आकर्पण नहीं रह गया था। यकायक उसके मन में आया, मेरी इस कोमल देह का क्या होगा ! कितने कलुप को उसने अपने साथ लपेट रक्खा है ! वार-वार उसका ध्यान गिरधारी की ओर दौड़ जाता। उन्हीं की बातें घूम-फिरकर उसके मानस पर तैरने लगतीं। वार-वार वह सोचने लगती—मेरा अब तक का जीवन व्यर्थ चला गया ! मैंने अब तक किया क्या ! वक्त से खाना खा लेना, इधर-उधर निरुद्देश्य घूमना, यह भी कोई जीवन है !

उसने सोचा—कला से प्रेम और उसका आनन्द। लेकिन उससे मुझको मिला क्या ? और उससे मैंने किसी को दिया भी क्या ? फिर कला के प्रेम से ही क्या जीवन पूर्ण हो जाता है ? हाँ जीवन की पूर्णता अवश्य एक कला है।···और वह आनन्द भी कितना अधूरा है, कितना नश्वर, जो मुझे जीवन की पूर्णता की ओर ले जाने में सहायक नहीं है ? एक शर्म्माजी हैं जो कहीं भूल से निकल पड़ें तो रास्ते से गुज़रने वाले लोग भी उन्हें घेर कर खड़े हो जाँय और ललच उठें कि वे हमसे दो बातें ही कर लें। समाज की श्रद्धा उनकी अर्चना करती है, देश का हृदय उन पर अपने को न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहता है।···क्या मैं ऐसी नहीं वन सकती ? क्या मैं···? क्या···?

एकतो उसे वड़ी कठिनाई से नींद आयी। फिर उस नींद में भी वह स्वप्न ही देखती रही। वह जब सवेरे उठी, तो उसके पलक भारी थे, उसकी आँखें दुख रही थीं। परन्तु जव उसे खयाल आया कि इन पलकों पर आज रात-भर उनके निमंत्रण रहे हैं, आह्वान गूंजे हैं, तो उनका मन नाच उठा। वह उत्फुल्ल मन से उठी और घूंघरू पहनकर नाचने लगी। देर तक वह नाचती रही। तव तक वह वरावर नाचती रही, जब तक एकदम से शिथिल होकर गिर नहीं पड़ी।

दूसरे दिन की वात है। तीन वजे के लगभग अनक प्रात
पहुँची, तो वह क्या देखती है कि भाभी अलमारि मालती स्ताव
मालती जानती है कि कहीं चलने की वात तुरन्त मिलन
तैयार नहीं हो सकती। कम-से-कम एक दिन पह २५ हैं
चाहिये। कौन-सी साड़ी उस अवसर के वाताव
धैर्य के साथ इसे निश्चय करना होता है। ब्लाउज पहा
वात है। कानों में वह झूमर प्रायः कम पहनती हैं। पर इससे क्या? कभी पहनने की इच्छा तो हो ही सकती है। इन सब वातों को तै करने के लिए कुछ वक्त भी तो चाहिये।

अस्तु मालती सोचने लगी—आज ऐसी कहाँ की तैयारी है, जो भाभी साड़ियाँ उलट-पुलट रही हैं।

तारिणी स्नेह-भाव से वोली—आज सिनेमा देखने का इरादा है। तुम तो चलोगी नहीं, इसीसे तुमसे नहीं कहा। शारदा साथ रहेगी। शायद छोटी भी चलें।

मालती अन्यमनस्क थी। अतएव उसने कुछ कहा नहीं, केवल सुन लिया। साड़ियाँ देखने में उसका ध्यान लग नहीं रहा था। यद्यपि हैं एक-से-एक वढ़िया और क़ीमती साड़ियाँ उसके पास भी। किन्तु इतनी अधिक संख्या में नहीं हैं। और दिन होता, तो सम्भव था कि इस चुनाव में वह स्वयं भी तारिणी का साथ देती; किन्तु इस समय न जाने क्यों यह कार्य्य उसे रुचिकर नहीं हुआ। थोड़ी देर वह चुपचाप पलंग पर बैठी रही। फिर तकिया सिर के नीचे लगाकर लेट रही; किन्तु फिर उठकर कुछ सोचती हुई पूर्णिमा की ओर चल दी।

अन्दर पहुँचते ही वोली—"कहो वीवी, क्या इरादे हैं?" सदा की भाँति मुस्कराकर पूर्णिमा ने तकिया-गिलाफ में रेशमी अक्षर पिरोने का कार्य रोककर पूछा और फिर दोनों हाथों को परस्पर गुम्फित करके ऐसे ढंग से अँगड़ाई ली कि एकदम से अँगुलियाँ चटाचट वोल उठीं।

से पूछने लगी ने देखा, तकिये के आवरण पर जो अक्षर बन रहे हैं, उनके कोरी ऐसे शब्द बनता है—स्वप्न। तब कुतूहल-वश उसने पूछा—यह क्या है ?

मृदुकंठ से पूर्णिमा बोली—क्यों, 'स्वप्नों के राजा' लिखना अच्छा न होगा ?

सुनकर मालती के होंठों पर मुस्कराहट आ तो गयी, पर ठहर न सकी। उसका ध्यान अन्यत्र चला गया। गद्दे पर ही वह पूर्णिमा के पास आकर बैठ गयी थी। अब उठी और दाँतों में कहीं से तृण दबाकर उसे खुटकती और फुरकती हुई बोली—बड़ी भाभी आज सिनेमा देखने जा रही हैं। तुम साथ जा रही हो न ?

पूर्णिमा उठी और दरवाज़े तक आकर बोली—क्यों तुम नहीं चलोगी क्या ?

"नहीं तो।" बिना ठहरे कहती हुई मालती आगे बढ़ गई और अन्त में माँ के पास जा पहुँची। वे गीता सामने रक्खे, आँखों पर चश्मा धारण किये, ध्यानावस्थित थीं।

बेटी को आया जानकर स्नेहभाव से पूछने लगीं—क्या टाइम हुआ बेटी ?

"यही साढ़े चार के लगभग होगा। क्यों ?" कहकर मालती चुपचाप माँ की ओर देखने लगी।

माँ ने कहा—आज चार बजे से रामलाल बाबू के यहाँ कीर्तन है तुझे भी चलना है। पहले से कहने का मुझे खयाल ही नहीं रहा। उसकी बहू ने हाथ जोड़कर कहा था कि बीबी अगर न आयीं तो कीर्तन तो होगा, पर रंग न जमेगा।

अन्तिम बात कहते हुए माँ कुछ अधिक प्रसन्न देख पड़ीं। कदाचित् वे सोचती थीं कि इस बात को सुनकर मालती अवश्य प्रभावित होकर चलना-स्वीकार कर लेगी। परन्तु इसके विपरीत हुआ यह कि माँ का कथन सुन कर मालती जैसे चौंक पड़ी। अभी वह दोनों भाभियों के यहाँ से होकर

आयी है। उसने जिन कार्यों में उन्हें व्यस्त और संलग्न पाया, उनके प्रति यों भी वह अरुचि से भर गयी थी। अब यहाँ माँ ने भी उससे ऐसा प्रस्ताव कर दिया।

सुनते ही मालती के मुख की आकृति परिवर्तित हो गयी। जरा रुककर उसने कहना प्रारम्भ किया—तुम जानती हो माँ कि मैं ऐसी जगह नहीं जाती। मुझे इन सब बातों में कोई आस्था नहीं है; फिर भी तुमने···। खैर मैं किसी तरह नहीं जा सकती। मैं पूछती हूँ, तुमको अपनी राम-भक्ति से मतलब है या दुनिया-भर की भक्ति-भावना का तुमने ठेका ले लिया है ?

"लेकिन अगर कीर्तन में जरा देर के लिए तू···" माँ ने कहा ही था कि बीच में ही बात काटती हुई मालती बोल उठी—जरा देर को !···अरे मैं एक मिनट के लिए भी नहीं जा सकती। मुझे खुद बहुतेरे काम हैं। मैं अभी शर्माजी के यहाँ जा रही हूँ। परसों उनसे मेरी बातचीत हो चुकी है। असल में मैं यही तुमसे कहने आयी थी।

माँ कुछ नहीं बोलीं, मन-ही-मन अत्यधिक असन्तुष्ट हो उठीं। मालती जब चलने लगी, तो उन्होंने सिर्फ इतना कहा—जाने मेरे भाग्य में क्या बदा है !

मालती सुनकर लौट पड़ी। वह यों भी कम उत्तेजित नहीं थी; फिर माँ की उपर्युक्त बात को सुनकर तो तिलमिला उठी। बोली—जो लोग भाग्य के नाम पर नित्य सिर पीटते रहते हैं, तुम्हें मालूम है, मैं उन्हें क्या कहकर पुकारती हूँ ?

माँ चश्मे के भीतर से अवाक्, निःशब्द जैसे आँखें फाड़-फाड़कर देखती रहीं, कुछ कह न सकीं।

माँ को चुप पाकर मालती जोर से सिर हिलाकर बोली—वे कायर होते हैं कायर !—और मैं उनकी जमात से घृणा करती हूँ !

कहकर, थोड़ी देर रुककर, उत्तर न पाकर पुनः मालती जाने लगी तो माँ उठीं और गीता की पुस्तक आलमारी में रखने लगीं। एक निःश्वास उन्होंने लिया और बोलीं—हे कृष्ण !···हे कृष्ण !!

शर्माजी 'संजीवन' कार्यालय में बैठे हुए अपनी दैनिक डाक देख रहे थे। शाम के पाँच बजे थे और आफ़िस के सभी कर्मकारी छुट्टी पाकर जा रहे थे।

इसी समय मालती कार लेकर आ पहुँची। शर्माजी ने देखते ही कहा—आओ, बैठो। फिर पत्र देखते हुए बोले—कहो, क्या हाल-चाल है ?

चश्मे के भीतर से आँखों की पैनी दृष्टि एक साथ ही सब-कुछ पढ़ लेती है। मन में जो भाव आते हैं, उन्हें छिपाकर रखना नहीं जानते। आज और दिनों की अपेक्षा रज्जन की तबियत कुछ ज्यादा खराब है। एक बार काम के बीच ही उठकर उसे देखने के लिए घर जाना पड़ा है। डाक्टर का कहना है—टाइफायड उसे हो गया है। अत्यधिक चिन्तित जान पड़ते हैं।...आज शेव भी नहीं किया है, न कपड़े बदले हैं। दोपहर को खाना नहीं खाया। सिर्फ़ एक बार थोड़ा दूध पिया है।

विनम्र कण्ठ से मालती बोली—बतलाइये, मुझे क्या करने को कहते हैं।

मुद्रा पर एक बार प्रसन्नता की दीप्ति आ गई। पत्र पढ़ना छोड़कर एक ओर रख दिया और बोले—इसके पहले कि तुम सार्वजनिक क्षेत्र में आओ, मुझे यह बतला दो कि तुम्हारे जीवन का मुख्य ध्येय क्या है ?

"मैं कुछ नहीं जानती" समर्पित-सी मालती बोली—सिवा इसके कि आप जो कुछ करने को कहें, उसे मैं चुपचाप करती चलूँ। उस दिन जब मैं आपको भेजकर घर लौटी, बड़े भैया से कुछ कहा-सुनी हो गई। बोले—तुमको इतना अधिक पढ़ाकर मैं पछता रहा हूँ। अगर मैं ऐसा जानता कि विवाह न करके तू इस तरह जहाँ चाहेगी, घूमेगी; जिससे चाहेगी, उससे बिना विशेष प्रयोजन मिलेगी; मेरा और माँ का कोई दबाव तुझ पर न होगा, यहाँ तक कि आये दिनों, अनेक तरह की, सच्ची-झूठी—प्रिय-अप्रिय—बातें हम लोगों को सुनने को मिलेंगी, तो मैट्रिक के बाद ही बाबू पर जोर देकर तुझे कहीं-न-कहीं विवाह के बन्धन में जकड़कर बाँध देता। आखिर हम लोगों की एक मर्यादा है; हमारा एक समाज है और उसकी कुछ सीमाएं हैं। उनके बाहर हम कैसे जा सकते हैं !

'मैंने पहली बार उनके मुँह से ये बातें सुनीं। मैं उनका आदर करती हूँ। कभी मैंने उनकी बातों का जवाब नहीं दिया। मुझे कितना दुःख हुआ, मैं कह नहीं सकती। मैं रो पड़ी। उनसे तो मैंने कुछ कहना उचित नहीं समझा, किन्तु बड़ी भाभी तारिणी को मैंने खूब खरी-खोटी सुनाई। मैंने कहा—अपना हिताहित मैं खूब समझती हूँ। हमारे समाज में स्त्री का क्या मूल्य है, क्या वे नहीं जानते? केवल स्वामी के लिए नित्य सुख-शांति की व्यवस्था करना और बच्चे जन-जनकर रात-दिन उनके पालन-पोषण में अपने को खपा देना; बस, यही दो कार्य स्त्री के लिए रह गये हैं न? मैं तुम्हीं से पूछती हूँ—मैंने भाभी से पूछा—विवाहित होकर तुम्हीं ने क्या कर लिया?

"मैं आजाद हूँ—मैं पुरुषों के बीच रहती हूँ—उनसे स्वतन्त्रापूर्वक मिलती हूँ। बस, इसीलिए मैं चरित्रहीन हूँ! और घरों के अन्दर सीता और सावित्री जैसी सती, शकुन्तला और उर्वशी जैसी सुन्दर स्त्रियों को पालते हुए भी जो लोग केप्ट प्रास्टीच्यूट् (रखैल वेश्या) रखते हैं, वे क्या हैं? मैंने भाभी से कहा—तुम उनसे पूछना, मैं इसका उत्तर चाहती हूँ। जानना चाहती हूँ, इस विषय में उनके समाज की सीमाएँ क्या कहती हैं?

"रह गयी चरित्र की बात, सो—मैंने कहा—वह केवल शरीर के ही स्थूल व्यापारों तक सीमित है, मैं नहीं मानती। चरित्र मानसिक सदाचार का दूसरा नाम है। जो लोग दुनियाँ भर के झूठ-सच, छल-प्रपंच, कपट, धूर्तता तथा ईर्षा-द्वेष के खून से रँगे रहते हैं, जो मनुष्य के साथ कुत्ते का-सा व्यवहार करते नहीं लजाते, जो सत्य और न्याय से दूर रहकर एकमात्र स्वार्थों में ही संलग्न रहते हैं, पैसे के बल पर जो जमीन और जायदाद, स्त्री और प्रेयसी के लिए भाई और पुत्र तक का छिपकर सत्यानाश कर सकते हैं जो समाज उन्हें चरित्रहीन नहीं मानता, मैं ऐसे समाज को नहीं मानती। बल्कि मैं तो उसका नाश देखना चाहती हूँ।"

मालती की बातें सुन-सुनकर शर्माजी बीच-बीच में बार-बार मुसकराते रहे। एक-आध बार तो कुछ कहने को भी हुए; किन्तु फिर सोच-समझकर बोले नहीं।

अन्त में मालती बोली—भाभी ने उनसे जो भी कहा हो। सवेरे जो बड़े भैया को बहुत गम्भीर पाया तो फिर मैंने भी स्पष्ट रूप से कह दिया—मेरे हिस्से का रुपया आप मुझे दे दीजिए। मैं आपसे और कुछ नहीं चाहती।

उन्होंने जवाब दिया—विवाह से पहले उसमें से एक पाई भी नहीं मिल सकती।

तब से मैं उनसे बोली नहीं।

जब पूरी बात मालती कह चुकी, तो शर्म्माजी ने सबसे पहले एक चुटकी ली। बोले—व्याख्यान तुम बहुत अच्छा दे लेती हो!

पर मालती उस समय गम्भीर थी। ज़रा भी विचलित न होकर वह बोली—खैर, यह तो भविष्य बतलायेगा। मजाक बनाने का आपको अधिकार है। लेकिन मैं वास्तव में चाहती हूँ, आप मुझे ठीक रास्ता सुझायें।

शर्म्माजी विचार में पड़ गये। वे सोचने लगे, इसे इस समय रुपये की आवश्यकता ही क्या हो सकती है? कहीं से भी कोई सूत्र इसकी जानकारी का जब वे नहीं निकाल सके, तो उन्होंने सीधे तौर से एक प्रश्न कर दिया। बोले—लेकिन इसी समय रुपया उठा लेने की बात उठाने का अर्थ क्या है, मैं नहीं समझ सका। सारे खर्चे के लिए आखिर घर से पूरी व्यवस्था तो हो ही रही है।

मालती बड़े असमंजस में पड़ गयी। कैसे वह अपना अभ्यन्तर खोल कर दिखलाये, कैसे वह अपने जीवन की साध प्रकट करे। फिर ऐसी अवस्था में, जब कि वह रक़म उसके हाथ में नहीं है। अगर इस स्थिति में वह अपना सर्वस्व-समर्पण प्रकट भी करे, तो उसका अर्थ क्या होगा!

क्षण भर वह मौन बनी रही। किन्तु मौन रहने से बात तो आगे बढ़ने से रही। अतएव विवश होकर वास्तविक मन्तव्य को थोड़ा इधर-उधर करते हुए उसने कहा—सीधी-सी बात है। वह रक़म जब तक मुझे मिलती नहीं, जब तक वह सुरक्षित है, तब तक उसको अपनी पूंजी मानकर जो एक संस्कारगत गौरव और अभिमान मैं अनुभव करती हूँ उसके प्रभावों से मैं कैसे बच सकती हूँ! मेरी आन्तरिक इच्छा है कि मैं उसे किसी ऐसे जनहित-

सम्बन्धी व्यवसाय में लगा दूँ, जिसका एक स्थायी महत्व हो, जो मुझे संतोष दे और जिसके नाते मैं यह सोचने का अवसर पाऊँ कि यही मेरा कार्य-क्षेत्र है।

शर्मांजी ने इस समय यह नहीं पूछा कि ऐसा जनहित-सम्बन्धी कौन-सा कार्य तुमने सोचा है। उन्होंने इस स्थिति के मर्म को भी स्पष्ट करने का आग्रह नहीं किया कि जो व्यक्ति वास्तव में रुपये के मोह और उसके प्रभावों से बचने की भावना रखता है, वह उससे बच क्यों नहीं सकता? उन्होंने मूल समस्या को ही स्पष्ट कर दिया। उन्होंने कहा—लेकिन विवाह तो तुमको एक न एक दिन करना ही पड़ेगा। उस समय तुमको रुपये की कितनी जरूरत होगी यह स्पष्ट है।

"आप कहते क्या हैं?" मालती दृढ़तापूर्वक बोली—"मैं विवाह नहीं करूँगी—किसी तरह नहीं करूँगी। मैं प्रत्येक विवाहित नारी से घृणा करती हूँ। मैं नहीं मानती कि विवाह का प्रेम के ऊपर कोई अधिकार है। मैं उसे प्रेम के ऊपर राजमुकुट के रूप में मानने को तैयार नहीं हूँ।"

विवाह के विपक्ष मे जितनी भी दलीलें दी जाती हैं, शर्मांजी जानते न हों, यह बात नहीं है। पर वे मानते हैं कि हमारे देश में स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र बहुत ही सीमित है। उनसे यह भी छिपा नहीं है कि आज हमारे देश की संस्कृति और सभ्यता नारी के स्वतंत्र जीवन को समादर देने के लिए कतई तैयार नहीं है। अतएव उन्हें यह मान्य नहीं हुआ कि वे मालती के जीवन को अविचार, असम्मान और समाज की उपेक्षा-दृष्टि के प्रभाव में बह जाने के लिए प्रोत्साहन करें। अस्तु।

"किन्तु यह नशा तभी तक चलता है मालती" शर्मांजी बोले—"जब तक खर्च करने के लिए पास काफ़ी रुपया रहता है। एक साधारण व्यक्ति का सा जीवन व्यतीत करना पड़े, तो साल-डेढ़-साल में ही होश ठिकाने लग जायें।...मैंने कुछ खटकने वाली बातें कह दी थी, उन्हीं की प्रतिक्रिया-स्वरूप आज यह त्याग-वृत्ति दिखा रही हो। जिस दिन पैसा पास न होगा और एक ओर ये भाई और भाभियाँ भी तुम्हारे स्वतन्त्र जीवन-क्रम में छिद्र,

कालिमा और कलुष देखना प्रारम्भ कर देंगी, दूसरी ओर रूढ़िवादी और परम्पराओं का ग़ुलाम यह समाज भी तुमको अपने बीच समादर न देगा, उस दिन तुम्हारी क्या स्थिति होगी, कभी सोचा है ?"

सचमुच मालती ने कभी सोचा न था कि शर्म्माजी उसे इस तरह का उत्तर देंगे। वह यह भी नहीं जानती थी कि जब ये उसे सार्वजनिक जीवन में आने का परामर्श देते हैं, तब पचीस हज़ार रुपये की रक़म को किसी जनहित के कार्य में लगा देने को ऐसा संयोग खो देने में उन्हें कोई हिचकिचाहट होगी। किन्तु इन सब बातों के ऊपर एक बात वह बार-बार सोचने लगती—इनको मेरा ध्यान कितना है !—यह मेरा हित कितना देखते हैं !

तब मालती शर्म्माजी की कुरसी के पीछे आगयी और बोली—आपकी ये बातें मेरे निकट कोई मूल्य नहीं रखतीं। मैं तो केवल यह जानती हूँ कि मैं चाहे जैसी स्थिति में और चाहे जिस प्रकार रहूँ—इसके सिवा यह ज़लील दुनिया भी मुझे चाहे जितना पतित समझे—मुझे किसी से कोई शिकायत न होगी, यदि मैं अपनी दृष्टि में उचित पथ पर अग्रसर बनी रहूँ।

"सुनो मालती, इधर सामने आकर सुनो"—शर्म्माजी कहने लगे—"तुम इस वक्त प्रमाद की दशा में हो। मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे प्रभाव में आकर कोई ऐसा काम कर बैठो, जिसके लिए तुम्हें बाद में पछताना पड़े। सार्वजनिक जीवन काँटों का पथ है। एक बार उसमें आगे बढ़कर फिर पीछे लौटने में दुर्दशा से मुक्ति पाना दुर्लभ है।"

शाम हो गई थी और कमरे में अँधेरा हो रहा था। इसलिए शर्म्माजी ने झट उठकर बिजली का स्विच दबा दिया। मालती अपनी कुरसी से उठकर खड़ी हो गयी। बोली—मैंने खूब सोच-समझ लिया है। आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं, यह मैं स्पष्ट देख रही हूँ। लेकिन अब शाम हो गयी। चलिए, ज़रा घूम आयें। आज आकाश भी स्वच्छ है। पानी बरसने की गुंजायश बहुत कम है।

शर्म्माजी उठकर चलने को तत्पर थे ; किन्तु बारम्बार उनके मन में आता था—क्या मालती के साथ मेरा खुले-तौर पर घूमना जनता की दृष्टि

एक व्यर्थ का कुतूहल उत्पन्न करने का कारण न होगा? और क्या मुझे इतना अवकाश है कि मैं इस तरह निरुद्देश्य घूमता-फिरूँ? मुझे कांग्रेस आफिस जाना है। कई दिनों से मजदूर-संघ का कोई हाल-चाल नहीं मिला। एक सार्वजनिक सभा श्रद्धानन्द पार्क में भी करानी होगी। उसके सम्बन्ध में चन्द्रगुप्त से मिलना आवश्यक है।...रञ्जन की तबियत अलग गड़बड़ है।...कल अगर पाँच-सौ रुपये का प्रबन्ध न हुआ, तो 'संजीवन' छपेगा कैसे! कागज कहाँ से आयेगा?

कमरे में टहल रहे हैं। मालती एक ओर मौन खड़ी है। उसके हाथ में एक समाचार-पत्र है। वह प्रतीक्षा में है कि कब शर्माजी चलें। किन्तु उसने देखा, वे चल नहीं रहे; कुछ सोच रहे हैं। इसी क्षण उसकी ओर जो उनकी दृष्टि जा पहुँची, तो मालती जरा मुसकराकर कहने लगी—चलिये न, सोचते क्या हैं?

सोच यह रहा हूँ कि—शर्माजी ने दहकते हुए हृदय की भट्टी को जरा कुरेदते हुए कहा—चिड़िया तो तुम जरूर हो, इसमें शक नहीं। उड़ना तुम्हारे लिए अस्वाभाविक भी नहीं है। लेकिन देखता यह हूँ कि मैं तुम्हारे साथ उड़ना भी चाहूँ, तो उड़ नहीं सकता। न तो मेरे पर इतने फैले हुए है और न मुझमें इतने दूर देश तक उड़ने का हौसला ही है।

मालती एक दम से स्तम्भित हो उठी। उसके कपोलों पर लालिमा छा गई। बोली—आप मेरा अपमान कर रहे हैं।

शर्माजी के हृदय को एक धक्का-सा लगा। बात एक प्रकार से सत्य थी। किन्तु उन्होंने सोचा, यह नयी बात है। चिन्तक, महात्मा और तपस्वी लोग प्रमदाओं के साथ इस प्रकार का व्यवहार तो प्राचीनकाल से ही करते आए हैं। आदर्श का पथ ही काँटों से भरा रहता है। हम कर ही क्या सकते हैं?

तब दृढ़ता के साथ अपने को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ। तुमको इतना अवकाश है कि तुम पार्क में जाकर घूमो। वहाँ ठंडी-ठंडी हवा तुम्हारे कोमल कलेवर को स्पर्श करे। हरे लॉन पर

कदमी करती हुई जब तुम किसी गुलाब के पुष्प के सुवास से तरंगित हो उठो, तो तुम्हारी कल्पनाओं के बन्द, सुप्त और अधखुले स्तर खुलकर, चटककर, तुम्हें किसी के संतप्त वक्ष और तृषित-अधरों की ओर ले जाना चाहें, हरे-भरे नवपल्लव टहनियों के साथ दोलन करें और तुम्हारा जी चाहे कि यहीं—इसी स्थल पर—सृष्टि की इस नैसर्गिक छवि पर मुग्ध हो-होकर नृत्य करूँ, और तुम सोचने लगो—मेरे नटनागर ! तुम कितने सुन्दर कलाकार हो !

क्षण भर रुक कर, टहलना रोककर किवाड़ से लगकर, रूमाल जेब से निकाल कर मस्तक, मुँह और आँखों को झट-से पोंछते हुए वे फिर कहने लगे—किन्तु क्या तुमने यह जानने का कभी कष्ट उठाया है कि जिन वृद्ध माताओं के इकलौते बेटे, जीवन की विषमताओं से लड़ते-लड़ते मृत्यु से आलिंगन कर रहे हैं, उनका अवलम्बन क्या है ! आज का हमारा पूँजीजीवी अन्धसमाज और ग़ुलाम देश, जिन दुधमुँहे बच्चों को ताज़ी हवा, पोषक खाद्यसामग्री, सुन्दर खिलौने, फ़सल-फ़सल के अनुकूल स्वच्छ कपड़े और रहने के लिए साफ़-सुथरे मकानों का प्रबन्ध नहीं कर रहा है, जिन बालकों और युवकों को, उनकी स्वाभाविक अभिरुचियों के अनुकूल शिक्षा, कार्य-क्षेत्र और विकासमूलक सुविधाएँ प्राप्त नहीं, जिनकी महत्वाकांक्षाएँ अपूर्ण, झुलसी हुई और जीर्णजर्जर हैं, उनके सुख-दुःख देखने-समझने—उनकी समस्याओं का समाधान करने—से विरत रहकर आज उस नटनागर की कला कहाँ सो रही है ! पर मेरे सामने एक कार्य-क्रम है—एक योजना। मैं उसी के साथ जीता हूँ और उसी की पूर्ति में मरना चाहता हूँ। मुझे इतना अवकाश कहाँ है कि मैं तुम्हारे साथ घूमने चल सकूँ।

सुनकर मालती स्तब्ध रह गई। तुरन्त कुछ कह सकने की स्थिति से वह बहुत दूर जा पहुँची। उसे प्रतीत हुआ, उसकी सारी आभिजात्य भावना धूल में मिल गई है। अपने प्रति वह एक हीन भावना से भर गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो मानवता से दूर—बहुत दूर—किसी ऐसे भूखण्ड में जा पहुँची थी, जहाँ केवल हिंसक और वन्य सभ्यता का निवास था। उसे अपने निकट पूर्व का जीवन—उसका एक-एक क्षण—याद आने लगा।

उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे किसी डॉक्टर ने उसे प्रमाद का इंजक्शन दे दिया है। वह अपने खोये स्वप्नों की ओर दौड़ गई। कई व्यक्ति उसकी स्मृति पर आये और चले गये। एक घृणा का भाव, उनके प्रति, उसके मन मे भीतर-ही-भीतर विष की भाँति फैल गया। अपने आप कुत्सा की एक कालिमा वह अपने मुख पर देखने लगी। वह जहाँ खड़ी थी, वहीं खड़ी रह गयी। उसे बोध हुआ कि वह एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती। उसे जान पड़ा, इस कमरे की जड़ दीवारें भी उसे एक वासनारत कुलटा के रूप में देख रही हैं!

मालती चुप ही बनी रही। धीरे-धीरे उसके मन में अपने आप एक विचार उठने लगा। वह सोचने लगी—उसने अभी कोई गलती नहीं की। उसने तो सदा अपनी आत्मा का रस—अमृत—दिया ही दिया है; पाया बदले में कुछ नहीं। यदि कुछ पाया भी है, तो वह धोखा है—प्रवञ्चना!

उसका मुख एकदम से विकृत हो गया। दाँतों से एक बार उसने अपने होंठों को इतनी ज़ोर से दबा दिया कि उसे मालूम पड़ा, मानो वे कटना चाहते हैं। फिर सहसा आगे बढ़कर वह कुरसी का पृष्ठ-भाग पकड़ती हुई पहले अपने को दृढ़ता के साथ थहाने लगी; फिर बोली—आप मनुष्य नहीं हैं शर्माजी; और मैं इतना जानती हूँ कि आप देवता भी नहीं हैं। आपके हृदय नहीं है, आप पत्थर हैं। आप मे वीरोचित साहस नहीं है। आप मे पौरुष भी नहीं है; केवल दम्भ है—मिथ्या और विकृत। आप एक सुसंस्कृत-नारी का सम्मान करना तो दूर, उसके साथ बैठने और उससे बात करने योग्य भी नहीं हैं। आप असभ्य और कायर हैं! ऐसा पुरुष कभी नेता नहीं हो सकता। ऐसे पुरुष को सेवा के किसी जिम्मेदार पद पर रहने का अधिकार नहीं है। मैं जाती हूँ और अब आपके पास कभी नहीं आऊँगी।

बस, इतना कहकर मालती चल दी।

साँप काटते ही मनुष्य की जो दशा शरीर-भर मे विष फैल जाने पर होती है, शर्माजी ने अनुभव किया, इस समय वही दशा उनकी है।

देर तक वे कमरे में टहलते रहे। उन्हें कई जगह जाना था; पर वे कहीं

न जा सके। वे अपने समक्ष एक महासमुद्र का भीम विस्फूर्जन देख रहे थे। वे साफ़ देख रहे थे कि अब तट पर खड़ा रहना कठिन है। फिर उन्होंने कल्पना के उसी तट पर देखा कि वे यद्यपि पहाड़ की एक चोटी पर खड़े हैं और समुद्र की लहरें उन्हें कभी छू नहीं सकतीं; किन्तु बारम्बार वे अपने आपसे पूछ रहे थे—क्या मैं इन आह्वानों को निरंतर अस्वीकार ही करता रहूँ ?

पाँच

शरीर का कोई विशेष अंग जब जल जाता है, तो उसमें दो प्रकार की पीड़ा होती है। एक तो केवल उसके जले हुए भाग से सम्बन्ध रखती है, दूसरी न केवल उस अंग-विशेष को, वरन् सम्पूर्ण शरीर और मन को भी कुरेदती है। एक तो उस अंग से शरीर के अन्य अंगों के कार्य-संचालन का सम्बन्ध होता है; अतएव एक की क्रियाशीलता रुक जाने से अन्य सम्बद्ध अंगों को भी अपना कार्य-क्रम स्थगित कर देना पड़ता है। दूसरे उस पीड़ा को जिन कारणों ने उत्पन्न किया है, उनके इतिहास के छानबीन की क्रिया भी निरन्तर मन के भीतर चलती रहती है। पीड़ित व्यक्ति सोचता है कि कौन जाने, कब इस व्यथा का अन्त होगा—पता नहीं, कब तक यातना का यह क्रम चलेगा ! कमज़ोर हृदय का प्राणी हुआ, तो वह यह भी सोचता है कि बीच में कहीं अन्य कोई व्यक्तिक्रम उपस्थित न हो जाय।

इस दशा में सौंदर्य-बोध अगर उसका कुछ विकसित हुआ, तो वह यह भी सोचता है कि जलने के जो—सफ़ेद और लाल—अमिट चिह्न पड़ जाते हैं वे अगर पड़ ही गये, तो जीवनभर के लिए उनकी एक कुरूपता इस शरीर के साथ लग जायगी। बार-बार वह उस दुर्घटना की दारुण यातना के इतिहास को कुरेदने का अवसर देगी। बिना पूछे, बिना आग्रह किये, वह यह बतलाने को तत्पर रहेगी कि किस प्रकार यह अंग जला था और उससे कैसी

असह्य यन्त्रणा का विस्फोट हुआ था ; चिकित्सा का क्रम कैसा चला था और कितने दिनों बाद उससे मुक्ति मिली थी !

किन्तु प्रेमी से मिले हुए अपमान की जलन उस दाह से भी अधिक दाहक होती है। उसमें सारा शरीर ही नहीं, मन-प्राण तक जलता है। शरीर के समस्त धर्म, नियन्त्रण और व्यवस्था के क्षेत्र में, सर्वथा असहाय हो उठते हैं ; खाना-पीना, सोना और वार्तालाप करना ही नहीं, चेतन और अर्धचेतन अवस्था का कोई भी कार्य अच्छा नहीं लगता। सभी ओर एक व्यर्थता-ही-व्यर्थता पुञ्जीभूत हो उठती है। .

फिर यह पीड़ा एक ही ओर दाह नहीं उत्पन्न करती, केवल उसी को व्याकुल नहीं बनाती, जिसपर आक्रमण होता या आघात पहुँचता है। वरन् उसे भी व्यथित किये बिना नहीं छोड़ती, जो आघात पहुँचाता है। दोनों दूसरे के संबंध में सोचते हैं—पता नहीं, वह इस समय क्या सोचता हो और कैसी दशा में हो ! जो अपमान करता है, वह सोचता है—मालूम नहीं, इस चोट का उस पर क्या प्रभाव पड़ा हो ! और जिसका अपमान होता है, वह सोचता है—मालूम नहीं ; इसके अनन्तर उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई हो !

मालती शर्माजी के यहाँ से लौटकर जब चल खड़ी हुई, तो वह अत्यधिक उत्तेजित थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। एक-आध बार तो वह अपने को धिक्कारने लगी—तूने यह किया क्या ! कलमुँही, तेरा इतना साहस कि तू शर्माजी का अपमान करे !

उत्तर में जब वह सोचती—उन्होंने मेरा अपमान जो किया था !—तो उसे अपना पहलू बिलकुल लचर मालूम होता। कोई उससे कहने लगता—उन्होंने तुम्हारा कुछ भी अपमान नहीं किया। उन्होंने तो अपनी वास्तविक स्थिति का स्पष्टीकरण मात्र किया था।…अच्छा, उन्होंने तुझे जो एक उड़ती चिड़िया की समता दी, तो उसमें गलत क्या है ?

इसी प्रकार के विचार-मंथन के साथ मालती अपने घर जा पहुँची। घर पहुँचने पर सब के पहले उसे बड़ी भाभी तारिणी मिली। सामने

पड़ते ही बोलीं—आज बड़ी जल्दी छुट्टी मिल गयी। किन्तु इतना कह जाने पर वे आप ही संकुचित हो उठीं। कारण, ऐसा उद्विग्न मुख तो उन्होंने इधर बहुत दिनों से उसका देखा न था। चाल में इतनी तीव्रता और उत्तर के प्रति ऐसी उदासीनता भी न देखी थी। उन्होंने तुरन्त माँ से जाकर कहा—बीबी लौट आयी हैं। पर चेहरा बड़ा उतरा हुआ है। जान पड़ता है, कहीं-कुछ -सुनी हो गयी है।

तारिणी ये बातें माँ से कुछ इस तरह धीरे-धीरे कह रही थी कि पूर्णिमा भी कुतूहल हुआ। वह झट से उनके पास आ गयी। बोली—तबियत तो है न ?

तारिणी बोली—मैं कह नहीं सकती।

माँ ने कह दिया—ज़रा देखें तो चलके, क्या बात है ?

सब-की-सब उसके कमरे में जा पहुँचीं।

द्वार भीतर से बन्द था। तारिणी ने जोर से धक्का दिया।

मालती तकिये पर सिर रखकर लेटी सिसकियाँ भरती हुई रो रही थी। ह उठी कि द्वार खोल दे—और न उसने कोई उत्तर दिया। तब तक रणी ने और भी जोर से धक्का दे दिया।

अब मालती को दरवाज़ा खोलना पड़ा। किन्तु उसके बाद झट से वह ग पर आकर गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी।

उसी समय तारिणी, पूर्णिमा और माँ ने आकर उसे घर लिया।

तारिणी ने पूछा—क्या हुआ बीबी ?

पूर्णिमा ने देह पर हाथ रख कर देखा तो कह दिया—हरारत भी तो है

माँ ने मालती के सिर को गोद में भर लिया। बोली—जान पड़ता किसी से कुछ कहा-सुनी हो गयी है। मैंने कितना समझाया कि इन सभा ाजों में कुछ नहीं रक्खा है। लेकिन मुझे तो तू पागल समझती है : मैं जानती हूँ, मान-प्रतिष्ठा अथवा अन्धस्वार्थों को लेकर ये लोग सद ाड़ते रहते हैं। निःस्वार्थ सेवा का आदर कौन करता है! फिर इन ों के बीच में स्त्रियों की तो और भी आफ़त है। सभी उनकी ओर लपकते

हैं, सभी उनसे अपना स्वार्थ-साधन कराना चाहते हैं। स्पर्द्धा और द्वेष उनके अपने—समान के—अन्दर होता है; पर दुष्परिणाम स्त्रियों के हिस्से आ लगता है।...शर्माजी के यहाँ गयी थी ?" उन्होंने पूछा।

मालती ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप रोती रही।

"मैं तो जानती हूँ न" माँ फिर कहने लगीं—वाह ही उन्होंने कोई लगती हुई कह दी होगी, जिसको तू सहन न कर सकी। मैं सब जानती हूँ। पूछो, नेता तो तुम हो गये और नाम भी तुमको चौका भर मिल गया, लेकिन उससे तुम्हारे घर-द्वार को फ़ायदा क्या पहुँचा ? मैं क़सम खाकर कह सकती हूँ कि उनकी जोरू के पास गहने के नाम पर दो सेर की एक जंजीर तक न होगी।

इसी क्षण मालती ने आँसू पोंछते हुए कुछ उग्र होकर कह दिया—तुम उनका अपमान कर रही हो माँ !...मैं...मैं" ! और वह फिर सिसकने लगी।

"और मैं पूछती हूँ" माँ ने तीव्र पड़कर कहा—उन्होंने जो तेरा अपमान किया हो तो !

मालती ने सिसकना बन्द कर दिया। उसका मुँह एकदम से लाल पड़ गया। जैसे अधर थे, वैसे कपोल हो गये ! नयन भी अरुणारे हो-हो रहे थे; करुणा के मोती उनसे ढुलक पड़े।

पर उस समय उसके भीतर-ही-भीतर कुछ ऐसी लहर आयी कि वह आँसू पोंछ-पाँछकर सावधान हो गयी। माँ के प्रश्न के अनन्तर उसने कुछ अधिक तीव्र पड़कर कह दिया—मेरा क्या, किसी का अपमान वे नहीं कर सकते।...फिर जब तुम उन्हें जानती नहीं हो—जान सकती भी नहीं हो—तब उनकी बात उठाती ही क्यों हो ?

"जो चाहे कर, मुझको क्या है !"...कहती हुई माँ तिनककर उठ खड़ी हुई। दोनों—नोगना जीवन-भर तुझे पड़ेगा।—रोना तुझको है। मुझे क्या है ? दो-चार वर्ष और इसी तरह काट दूँगी। वे बने होते, तो मैं कुछ न कहती। जब तक जिये, तेरी पढ़ाई-लिखाई की ही रट लगाये रहे। अब जब तू पढ़-लिखकर सयानी हुई, तो तेरा यह हाल है !...खुद तो चलते

बने; मुझे इस जंजाल में छोड़ गये !

माँ इसी तरह बड़बड़ाती हुई चली गयीं।

तारिणी बोली—अब तुम मुँह धो डालो बीबी। तबियत साफ़ हो जायगी" और उसने पूर्णिमा की ओर देखकर संकेत से कह दिया—गिलास-भर पानी तो मँगा लो।

पूर्णिमा द्वार पर जाकर पुकारने लगी—अरी अमिया,..... एक गिलास पानी तो ले आ।

क्षण भर बाद पानी से मुंह धोकर मालती पलँग पर बैठी ही थी कि अमिया ने पुनः लौटकर कहा—एक बाबू ने यह चिट दी है।

छः

दो साथियों के युद्ध में विजेता का जीवन भी सर्वथा सुखमय नहीं होता। उसका एक पक्ष दुःखमय भी होता है। यह ठीक है कि वह स्वनिश्चित आघातों और आक्रमणों के प्रयोग, उसकी तीव्रता, कठोरता और अचूक सफलता को प्रत्यक्ष अनुभव करने का अवसर पाता है। किन्तु इसके बिलकुल विपरीत उसकी एक दूसरी स्थिति भी है। उसमें विजित ही नहीं होता, विजेता भी आहत होता है। क्योंकि जो आघात वह अपने विपक्षी पर करता है, वह जितना तीखा और मर्मभेदी होता है, उतना ही अपने आपको भी आहत कर डालता है। उसमें क्षुब्ध स्थितियों की प्रतिज्ञाएँ स्थिर नहीं रह पातीं और स्वाभिमान तो अन्तरिक्ष का वासी हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह अपने प्रतिपक्षी की न स्तुति सहन कर पाता है, न निन्दा। क्योंकि उसकी स्तुति अपना अपमान हो उठती है और निन्दा उसका अपमान, जो उसके अन्तःकरण का देवता, उसके अतल लोक का साथी होता है। मनुष्य के सरल, पावन और सहृदय रूप की यह कैसी विचित्र स्थिति है !

तीसरे दिन की बात है। प्रातःकाल गिरधारी जरा देर से उठा था। आज भी रात में सोते समय कई बार उसे मालती का ध्यान आया। इधर रात को रज्जन को ज्वर १०४ प्वाइन्ट ८ तक रहा। अचेत अवस्था में वह कभी-कभी कुछ बातें अस्पष्ट रूप से बक रहा था। बीच में वह प्रायः पानी माँगता, तो रेणु कटोरी में उसे पानी पिलाती। रज्जन पूछता—बाऊ नहीं आये अम्मा ? रेणु उत्तर देती—आये तो हैं रज्जन। उस कमरे में लेटे हुए हैं। तब वह उसे गिरधारी के पास ले आती।

एक बार जो वह स्वतः रज्जन के सामने जा खड़ा हुआ और बोला—

"कैसी तबियत है ?"

उसने कहा—बुखाल आ दया बाऊ।

गिरधारी ने देखा, उसकी वाणी में व्यथा स्पष्ट झलकती है। वह चुपचाप खड़ा रहा। तब उसी क्षण रज्जन पिता की बात न सुनकर अपनी बात कहने लगा—

"अबी ले आओ मोतल बाऊ, अम अभी उछ पल तलकल घूमेंदे और लेक्तल देंदे। तुम बी लेचर देना बाऊ। लोद तालो पीतेंदे। अम बी ताली पीतेंदे।"

"अभी नहीं रज्जन। अभी तो तुमको बुखार है। मोटर पर घूमोगे, तो हवा न लग जायगी। तबियत और ज्यादा खराब हो जायगी। चढ़े बुखार में कोई लेक्चर देने जाता है ?

"हूँ। औल तुम क्यों दाते हो ?"

"हम जाते हैं तो हमको मामूली बुखार रहता है। पर तुमको बहुत ज्यादा है। देखो न, तुम्हारा मत्था कैसा तप रहा है !"

थोड़ा रुककर "तुमने तो तआ था, अम तुम्हें मोतल ले आयेंदे। लाये नहीं बाऊ।"

गिरधारी ने जवाब दिया—तुम्हारी तबियत अच्छी हो जाय; तब तुमको साथ लेकर मोटर खरीदेंगे। खूब अच्छी-सी मोटर लेंगे अपने रज्जन को······।

"अत्था कल चलेंदे। अत्था वाऊ! अमको जलूल ले तलना। अम मोतल लेंगे। अम..........।"

"अब तुम सो जाओ। तुम्हारी तवियत अच्छी नहीं है।"

रज्जन आँखें मूंदकर सोने की चेष्टा करने लगा।

इसी प्रकार दुबारा जब वह रज्जन को देखने गया, तो वह अस्पष्ट रूप से कभी-कभी पड़ोस की एक समवयस्क लड़की सुधा का नाम लेने लगा वह अक्सर उसके साथ खेलता है। दोनों अजीब तरह के तमाशे करते हैं। जब रज्जन जज बनता है तो अपना जजमेंट पढ़ता हुआ कहता है—तुम पर चौबीस दफा लगाई गयी। तीन साल की क़ैद और पाँच-सौ रुपये जुर्माना। और तुरन्त जज अपने आसन से उतर कर अपराधी से आकर लिपट जाता है। वह तब अपराधी न रहकर कुछ और हो जाता है। उसके शब्द होते हैं—"तुम जेल जा रही हो! जाओ" और तब दोनों गले मिलते हैं! जान पड़ता है, इसी तमाशे का उसे स्मरण आ गया। वह कह रहा था—तुम जा रही हो छुधा? जाओ।

रज्जन के आँसू बह रहे थे।

इस दृश्य की कल्पना करते और रज्जन के बहते आँसू देखते हुए गिरधारी को अपने आप पर सन्देह होने लगा! उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वह स्वयं भी रो पड़ेगा। वह उसके आँसू पोंछने लगा।

रेणु को आश्चर्य हुआ। वह बोली—अधीर क्यों होते हो?

गिरधारी कुछ बोला नहीं। वह चुपचाप उठकर अपने कमरे को लौट गया। उस समय उसे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उसके भीतर एक महासमुद्र गर्जन कर रहा हो। उसकी लहरें उसके ऊपर छींटे डालती हुई लौट जाती हों। उसे ऐसा कुछ बोध हुआ, जैसे वे बार-बार उससे कहने आती हों—

"अच्छे हो, जाने पर भी—रज्जन को—मोटर तो क्या—एक ताँगा भी नसीब न होगा!"

इस तरह गिरधारी रात को कई बार उठा और सोया। सोया क्या, सोने

का प्रयत्न रातभर करता रहा। नींद उसे हल्की-सी हो आयी। एक तरह से अर्धनिद्रित अवस्था में ही उसकी यह रात कटी।

पलँग पर वह अभी उठकर बैठा ही था कि उसके नौकर लोचन ने आकर कहा—कोई एक स्त्री मोटर पर आयी है। खद्दर पहने हुए है आपसे मिलना चाहती हैं।

गिरधारी को ध्यान आ गया—प्रभाजी होंगी। उस दिन कांग्रेस आफिस में मिली थीं। आने के लिए कहा भी था; लेकिन इतने सबेरे…!

वह बोला—अच्छा, यह कुर्सी साफ़ कर दो और उनको भेजकर चाय बनाओ। और देखो, चाय के साथ खाने को भी हो सके तो कुछ बना लेना।

लोचन चला गया। गिरधारी ने भी उठकर बदन पर एक गंजी डाल ली। रात को वह केवल अण्डर वियर पहने सो गया था। इतने में उसकी दृष्टि जिस व्यक्ति पर जा पड़ी, वह मालती थी। देखते ही वह जैसे चौंक पड़ा। बोला—अच्छा, तुम हो! यह खद्दर की साड़ी खूब रही। लेकिन सबसे पहले रेणु के पास चलो। हालाँकि रात उसे जगते बीती है। शायद सो भी रही हो।

आगे-आगे गिरधारी, पीछे-पीछे मालती।

चलते समय मालती बोली—आपने मुझे माफ़ कर दिया न?

गिरधारी ने बिना किसी हिचकिचाहट के, उसकी ओर देखे बिना, कह दिया—मैं अपने को कभी क्षमा नहीं कर सकता।

उत्तर सुनकर मालती उनकी ओर देखती रह गयी, लेकिन गौरव और उल्लास के साथ।

अन्दर जाने पर पता चला, वह वास्तव में सो रही है। बालों की एक लट मस्तक पर होती हुई कपोल पर आगयी। नाक में सोने की कील और कानों में आर्टिफिसियल मोतियों के झूमर। साड़ी एकदम उजली न होकर दो दिन पहनी हुई है। गला खुला हुआ है और पैरों में अँगूठे के पासवाली अँगुली में चाँदी की एक-एक मछली पड़ी है। लम्बा छरहरा बदन है। ऊपर

दरी मात्र बिछा है। चद्दर सिरहाने तहाया पड़ा है। दाँया पैर पाटी के ऊपर है और वायाँ हाथ मुँह और सिर को अर्धवृत्त से घेरता हुआ मिचवे के निकट आ गया है। मुँह पर कुछ स्वेद-बूंद झलक रही हैं। खिड़की खुली है, जिस में चिक पड़ी हुई है। वत्ती बुझाई नहीं गयी है और क्षीण प्रकाश भीतर फैला हुआ है।

गिरधारी ने सबसे पहले वत्ती बुझाई, फिर रेणु के पास से चुपचाप लौटते हुए वह मालती को रज्जन के पास ले गया। बोला—रात भर डिलीरियम से चौंकता और बकता रहा। यद्यपि बातों में आग्रह उसका जैसा उचित है सपने भी उसके वैसे ही सर्वथा स्वाभाविक हैं। इस समय तो नींद में है!

मालती ने निकट आकर सिर पर हाथ फेरा, नब्ज़ देखी। बोली—ज्वर इस समय भी एक-सौ-एक से कम न होगा।

गिरधारी—सम्भव है, आठ बजे तक सो रह जाय। "फिर दोनों उसी कमरे की ओर जाने लगे।" द्वार से पास होते हुए मालती ने पूछा—बस, यही एक बच्चा हुआ क्या मास्टर साहब?

"यह चौथा है। पहली बार पुत्र फिर दो पुत्रियाँ। तीनों साल-दो-साल के बाद चल बसे। देखा नहीं, रेणु किस दशा को प्राप्त हो गयी है! विवाह का अभिशाप भोगते-भोगते स्वस्थ-से-स्वस्थ और सुन्दर-से-सुन्दर स्त्री दस वर्ष के अन्दर प्रायः सूखकर अमचूर हो जाती है!"

गिरधारी पूर्ववत् पलंग पर आ गया। मालती कुर्सी पर बैठ गयी।

अंतिम कथन के साथ उनकी मुद्रा कुछ अधिक विदग्ध हो उठी। बात रेणु के सम्बन्ध से उठी थी, इसलिए मालती ने कुछ उत्तर देना उचित नहीं समझा। तब गिरधारी कहने लगा—गृहस्थी का भार उसकी समस्त महत्वाकांक्षाओं को धूल में मिला देता है। उसका सारा दिन केवल खाना बनाने बच्चों की देख-भाल करने और दैनिक आवश्यकताओं के अनुसार घर को परिपूर्ण और तत्पर रखने में बीत जाता है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सौंदर्य और मानसिक विकास के रक्षण और उन्नयन का उसे अवकाश ही नहीं मिलता। चारों ओर से घिर कर, विवश होकर, वह पति की सहचरी न रहकर सर्वांश

में एक अनुचरी हो जाती है।

बात समाप्त होते-होते लोचन ट्रे में चाय और दो तश्तरियों में पकौड़ि
ले आया और पलँग के बायी ओर रक्खी छोटी टेबिल पर लगाकर उ
मालती के आगे रख दिया।

मालती इसी क्षण बोल उठी—आप तो हमारी बात कह रहे हैं।

मतलब यह है कि इस बात में आपकी कोई मौलिकता नही है। इस
सिवा यह भी कि अपनी बात कहिये; हमारी बात क्या कहते हैं! और त
इस बात के साथ उसके होंठों पर एक मन्द मुसकान दौड़ गयी।

लोचन ट्रे रखकर चला गया था। अब फिर लौट आया। इस व
उसके हाथ में 'टुडे' एक अंग्रेजी दैनिक-पत्र था। पत्र लेकर गिरधारी उ
देखने लगा। मालती चाय बनाने लगी। गिरधारी बोला—मैं सिर्फ दो मिन
लूँगा, तब तक तुम'''। और उसने देखा, कथन से पहले ही मालती ने चा
डालना प्रारम्भ कर दिया है।

गिरधारी ने इसी क्षण सूचित किया—विश्वनाथ गिरफ्तार हो गया।

मालती ने पूछा—यह विश्वनाथ कौन है?

"मज़दूर-सभा का हमारा एक वीर कार्यकर्ता।" गिरधारी ने कहा—"ए
ही ज़िन्दादिल आदमी है। सन् ३५ में जेल गया था। इनकलाब के नारे लगा
के उपलक्ष्य में उसे पच्चीस बेंत की सज़ा मिली, तब उसने उफ तक नहीं किया
६७ दिन की भूख-हड़ताल में यही सबसे अन्तिम व्यक्ति था, जो अन्त तक दृ
बना रहा।"

इसी क्षण मालती ने पूछा—शुगर आप कितनी लेते हैं?

"बस, उतनी ही, जितनी तुम्हारे यहाँ उस दिन डाली गयी थी।"

कहते हुए गिरधारी के पत्र को एक ओर रख दिया।

मालती सोचने लगी—तो मेरे यहाँ जाने और उस सम्बन्ध से चा
पीने की बात भी ये अब तक मन में डाले हुए हैं। सम्बन्ध के सम्पर्क को
जान पड़ता है, ये मन से अलग नहीं कर पाते।

उसने चाय का कप गिरधारी के आगे बढ़ा दिया।

कप लेते हुए गिरधारी बोला—जेल में बेंत लगने पर, जानती हो, आदमी की दशा कैसी हो जाती है ?

मालती ध्यान से शर्म्माजी की ओर देखती हुई बोली—बतलाइये।

शर्म्माजी बोले—जो आदमी जितना अधिक साहसी, सच्चा, निरपराध, कायर और दोषी होता है, बेंत लगने पर उसकी दशा भी तदनुसार उत्तम और शोचनीय हो जाती है। निर्दोष, वीर और एक उद्देश्य के लिए यातना भोगने वाले प्रायः आह तक नहीं करते और विशेष अवस्थाओं में तो उनका वज़न तक बढ़ जाता है। किन्तु दोषी, भीरु और दुर्बल आत्मा के व्यक्तियों को पेशाब और पाखाना तक हो जाता है। बेहोश हो जाना तो एक साधारण बात है। शारीरिक यन्त्रणा के सिवा आत्मग्लानि की पीड़ा शत-शत बिच्छुओं के दंश से भी अधिक दाहक होती है।

आश्चर्य और संताप से मालती ने पूछा—आपने स्वयं देखा है ?

शर्म्माजी बोले—देखा ही नहीं, उन्हें समझाया और धैर्य बँधाया है। ऐसे-ऐसे भावुक लोगों को, जो सम्भव था कि देर हो जाने पर अपनी जान तक दे देते !

विचार-मग्न मालती स्तब्ध रह गई ! तदनन्तर गिरधारी ने पहला घूंट अभी सिप किया ही था कि सामने से रेणु आती देख पड़ी। तब वे बोले—देखो रेणु, मालती तुमसे मिलने आयी हैं।

रेणु ने एक बार मालती को देखा, मालती ने रेणु को। हाथ जोड़ती हुई रेणु बोली—नमस्ते और उल्लास की एक क्षीण रेखा उसके मुख पर खेल गयी।

'नमस्ते' के साथ मालती बोली—मैं अभी आपके कमरे से होकर लौट रही हूँ। आप सो रहीं थीं शायद।

"आजकल रञ्जन के बीमार हो जाने के कारण" रेणु बोली—"अकसर सवेरे आंख झपक जाती है आज तो मैं सो ही नहीं सकी। अभी चार बजे ज़रा-सी झपकी लग गयी थी।"

गिरधारी ने कहा—खड़ी क्यों हो, यहीं बैठ जाओ न ? और उसने अपने को ज़रा एक किनारे कर लिया। फिर पूछा—चाय पियोगी ?

रेणु मुसकराती हुई बोली—"जिसमें मालती की मिठास पड़ती हो ऐसी चाय पीने को मिलती कहाँ है ?"

मालती गौरव के भाव से सिहर उठी। बोली—इस सम्मान के लिए धन्यवाद।

फिर रेणु यह कहती हुई अन्दर जाने लगी कि अभी आती हूँ।

रेणु के चले जाने पर गिरधारी ने पूछा—कहो, क्या राय है ?

पूछने के क्षण उसकी दृष्टि मालती के मुख पर थी।

मालती बोली—मेरे निकट जैसे आप हैं, भाभी उससे किसी प्रकार, किसी दिशा में कम नहीं हैं ! आप तो जब-तब उग्र भी हो उठते हैं; पर भाभी तो, कभी किसी से नाराज़ होती ही न होंगी। अच्छा, आप ही बतलाइये, क्या कभी वे आपसे किसी विषय पर झगड़ती हैं ?

इसी क्षण रेणु अपने लिए प्याला लेकर आ गयी। वह स्वामी के पलँग पर बैठी ही थी कि गिरधारी ने कहा—अब यह तुम, इन्हीं से पूछ लो मालती।

रेणु बोली—क्या बात चल रही है ?

मालती ने रेणु के लिए चाय ढालते हुए कहा—बात बड़ी मीठी है भाभी। मैं कह रही थी कि भाभी तो मुझे इतनी मृदुल जान पड़ीं, जैसे नाराज़ होना वे जानती ही न हों। फिर इसी सिलसिले में मैंने इनसे यह भी पूछा—अच्छा, आप ही बतलाइये क्या, कभी किसी विषय पर आपसे उनका झगड़ा हुआ है ?

रेणु सोचने लगी—कण्ठ में मार्दव है, कथन में चुहल। वह बोली—झगड़ूँगी क्यों नहीं ? अभी उसी दिन की बात है, मालूम नहीं कहाँ से खाना खा-आये। मैंने कितनी हौंस के साथ गुझियाँ बना रक्खी थीं। मेरा सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। इसके सिवा परसों रात को कितनी देर से लौटे। रज्जन बार-बार कहता रहा, बाबू नहीं आये। इन्होंने मेरी परवा कब की, जो मैं चुप रहती। मालूम नहीं, किस-किस के साथ घूमते रहते हैं। ऐसे लोगों का विश्वास क्या !

रेणु सारी बातें कहती गयी, लेकिन उसकी मुद्रा पर ऐसा कोई प्रभाव झलकने नहीं पाया, जिससे उसके अन्दर कहीं कोई कसक लक्षित होती।

गिरधारी हँसने लगा। बोला—लो, और सुनोगी ?

मालती लजा गयी। एक-आध बार तो उसके मन में यह भी आया कि जानबूझ कर ये मुझे बना रही हैं! ऐसा तो नहीं है कि मास्टर साहब ने सारी बातें पहले ही कह रक्खी हों। किन्तु किसी बात को वह भ्रम और सन्देह से ढककर रखना नहीं चाहती। अतएव वह बोली—भाभी, परसों तो इनके साथ मैं ही थी। जहाँ कहीं भी ये गये, मैं साथ रही। बल्कि दरवाज़े तक मैं इन्हें छोड़ गयी थी। अधिक देर हो जाने के भय से मैं आपसे मिलने नहीं आयी। लेकिन मैंने इनसे एक वादा कर दिया था कि किसी दिन मैं भाभी से मिलने आऊँगी ज़रूर। फिर आज सवेरे उठते ही मैंने सोचा, आज ही क्यों न मिल आऊँ। लेकिन आपने एक बात बड़ी महत्वपूर्ण कही। मैं भी उससे सहमत हूँ। वास्तव में ये लोग विश्वास करने योग्य नहीं होते।

और इस कथन के बाद वह स्वयं भी हँसने लगी।

इस बार मालती के हास-दोलन को रेणु ने और भी ध्यान से देखा। देखा, शरीर का अंग-अंग जैसे कुछ कह उठता है।

गिरधारी मालती की बात सुनकर हँस पड़ा। बोला—षड्यन्त्र तो काफ़ी संगठित जान पड़ता है। मुक्ति पाने की गुंजायश तक नहीं रह गयी है।

पर गिरधारी की ओर एक भी दृष्टि डाले बिना मालती कहती गयी—एक दिन की बात है, मैंने जो कहा—चलिये शाम हो गयी; जरा घूम आयें; तो इस पर ये इतने बिगड़े कि मुझे लज्जित किये बिना इनकी तबियत नहीं भरी।

आशंकाएँ उथल-पुथल मचाने में आगे-आगे चलती हैं; चाहे प्यार की हों, चाहे ईर्षा-द्वेष की। किन्तु एक आशंका ऐसी होती है, जो आगे चलकर भी पीछे देखती चलती है। रेणु को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसने अब तक आगे ही आगे देखा है, पीछे कभी ध्यान ही नहीं दिया।

वह बोली—एक बात आप भूल जो रही हैं। घर के अन्दर बैठकर चाहे जैसी बातें की जा सकती हैं—गम्भीर-से गम्भीर और गोपनीय। पर पार्क में साथ लेकर घूमने में वह आज़ादी भला कहाँ रह जाती है! कोई देखे तो क्या कहे, इसका एक भय भी तो नेता के लिए कम आतंक और आदर्श-स्थापन के लिए कम भयावह नहीं है। तभी तो मोटर में बैठकर सैर करने में इन्हें कोई आपत्ति नहीं हुई। आजकल ब्लैकआउट के दिन ठहरे। सड़कों पर यों भी अन्धकार छाया रहता है। अतएव आत्म-चेतन के राजपथ पर चलने में इससे बड़ी सुविधा भला कहाँ मिलेगी! एक मैं हूँ कि कभी सिनेमा देखने की इच्छा हुई तो बीस काम लगातार गिना जायेंगे! और फिर इस सिलसिले में बात करने में भी कहीं देर न हो जाय, इसलिए कुरता पहनते हुए तुरन्त सड़क पर ही दिखाई पड़ेंगे!

"वाह भाभी, सचमुच तुमको पाकर आज मैं धन्य हो गयी।" मालती बोली—इनके आगे मैं तो बात भी नहीं कर पाती! झट से ये मेरा मुँह बन्द कर देते हैं। किन्तु तुम्हारे समक्ष अपनी बात कहने में जैसे एक खोया हुआ साहस आप-ही-आप आ जाता है।

इस वार्तालाप के समय पहले तो गिरधारी मुस्कराता हुआ कमरे में टहलता रहा, किन्तु रेणु का कथन समाप्त होते-होते वह फिर झट रज्जन के पास जा पहुँचा। मालती ने ज्यों ही लक्ष किया, शर्मा जी अन्दर चले गये, त्यों ही वह चुप रह गई। रेणु ने कहा—मैं जरा रज्जन को देखती हूँ। आप लोग तब तक बात-चीत कीजिए। मैं अभी हाल आती हूँ।

और इसके बाद वह अन्दर जाने लगी।

मालती बोली—अब मैं भी चलूंगी।

"अच्छा, जाओगी?" कहती हास बिखेरती रेणु बोली—मुझे आज कितनी प्रसन्नता हुई, मैं ही जानती हूँ।

वह क्षण भर चुप रही, नमित दृष्टि और आकुल मन से। फिर सिर उठाकर उसका हाथ अपने हाथों में भरकर कहने लगी—क्या मैं आशा करूँ कि आप मुझे भूलेंगी नहीं?

शान्त, स्निग्ध और मृदुल कण्ठ से मालती ने उत्तर दिया—भूलूंगी कैसे बल्कि तंग करने के लिए नित्य ही आ पहुँचूंगी।

"मेरा सौभाग्य" कहकर रेणु क्षणभर रुकी और बोली—अच्छा।

दोनों ने हाथ जोड़कर नमस्ते की।

रेणु के अन्दर जाते ही गिरधारी आ पहुँचा। बोला—मैंने कहा न था, ज्वर अभी कम होगा। वही बात हुई। डाक्टर के आने का समय भी हो रहा है। तुमको और तो कहीं जाना है नहीं ?

मालती ने तुरन्त कह दिया—नहीं तो। किन्तु अन्यत्र जाने का सन्देह आरोपित होते ही वह एक आशंका से आतंकित होकर कुछ गम्भीर हो गयी ; परन्तु फिर क्षणभर में आप-ही-आप कुछ सोचकर प्रकृत हो उठी। सहज स्वाभाविक कण्ठ से उसने पूछा—किस डाक्टर की दवा चल रही है ?

लोचन इसी समय तश्तरी में पान लाकर टी-सेट उठा ले गया।

गिरधारी ने उत्तर दिया—डाक्टर ललित की।

तब मालती ने अधिक इधर-उधर न करके सीधी बात कह दी—आये देर हुई। अब चलूंगी।

और वह नमस्ते करती हुई जाने लगी।

गिरधारी ने पूछा—शाम को आफ़िस में आओगी ?

अन्यमनस्क भाव से मालती ने ज़रा-सा घूमकर उत्तर दिया—"कह नहीं सकती।"

फिर वह चल दी।

सात

वह नारी जो विवाह नहीं करना चाहती, क्यों चाहती है कि लोग उसके आन्तरिक जीवन से अनभिज्ञ रहें ? अपने आपको समाज की दृष्टि में

छिपाने; दृष्टि मे ही क्यों, उसकी आलोचना से भी अक्षुण्य रखने का मन्तव्य क्या है ? समाज की अवमानना अगर वह सहन नही कर सकती, तो उसके द्वारा होने वाली सामाजिक नीति और आदर्श की उपेक्षा समाज ही क्यो सहन करे ? उसे पति की आवश्यकता नहीं है, इसका यह अभिप्राय तो नही कि उसे किसी पुरुष की आवश्यकता नही है। उसे पति नहीं मिला है, इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि पति से उसे जो कुछ मिलना सम्भव था, उसे किसी से भी मिलना या पाना उसने अपने लिए असम्भव कर डाला है।

चिट देखते ही मालती की मुद्रा एकाएक परिवर्तित हो गई। वह सम्हलकर बैठ गयी और बोली—उन्हें हमारी बैठक मे ले जा री अमिया! और कह देना उनसे, मैं अभी आयी।

तारिणी ने पूछा—है कौन ?

"जानकर करोगी क्या ?" बिहँसती हुई मालती कहने लगी—"बहुत दिनों के बाद तो बेचारे को आने का साहस हुआ है।"

उत्सुकता से पूर्णिमा बोली—अच्छा, तो यह कहो कि युवक के वेश मे कोई लाजवन्ती युवती आयी हैं।

मालती उठी और ड्रेसिंग-टेबिल के सामने जा पहुँची। केशों की कुछ लटें इधर-उधर बिखर रही थी। उन्हें ठीक करती हुई कहने लगी—तमाशा देखना हो, तो चिक की ओट से देखो जाकर। कमरे के अन्दर जाते हुए बिलकुल सीधी दृष्टि पाओगी। क्या मजाल कि आँखें दायें-बायें ओर कही जरा-सी भी मुड़ पायें।

पूर्णिमा झट से उठ खड़ी हुई और आश्चर्य से बोली—सच बताओ बीबी तुम्हें मेरे सर की कसम।

"मैं तुमसे झूठ कहूँगी भाभी ?" मालती बोली।

वह उस समय पोमेड लगा रही थी।

"मैं भी देखूँगी" कहती हुई तारिणी भी पूर्णिमा के साथ चल दी।

विनायक अभी तक बरामदे मे खड़ा था। अमिया उससे [illegible]—

इधर चले आइये।

इसी क्षण पूर्व और पश्चिम के दोनों कमरों की चिकें एकाएक हिलीं, खुलीं और उनसे वाहर निकलकर पूर्णिमा और तारिणी देखती क्या हैं कि एक दुवला युवक खादी की पोशाक में कैनवेस के जूते पहने हुए, इस ढंग से चल रहा है कि चलने का शब्द तक वचाना चाहता है। दृष्टि इतनी सीधी है कि जान पड़ता है, गर्दन घूम ही नहीं सकती। आँखों पर पुराने फ़ैशन का गोल्डन फ्रेम का चश्मा है और सिर के वाल विना कटे हुए काफ़ी वड़े हैं।

यह हाल देखकर दोनों ओर से दोनों एकाएक खिलखिल करती हुई हँस पड़ीं। यहाँ तक कि अमिया भी मुस्कराने लगी। वोली—चले आइये। आप तो···।" उसका अभिप्राय है कि अन्दर आते हुए डरते से हैं।

चिकों से वाहर निकल कर पूर्णिमा और तारिणी फिर भीतर नहीं गयी; वल्कि उसी युवक ने साथ हो लीं।

वैठक के अन्दर जाते ही पूर्णिमा ने देखा वे महाशय अभी तक खड़े हैं। कहाँ वैठें, जान पड़ता है, यही तै नहीं कर पा रहे हैं।

एक कोच की ओर संकेत करती हुई तारिणी वोली—इधर वैठिये इत्मीनान से।···वीवी अभी आयी जाती हैं।

उसकी वगलवाली कुरसी पर पूर्णिमा जा वैठी और वोली—जान पड़ता है, आप यहाँ पहली वार आये हैं।

"जी।"

"लेकिन मुझे ऐसा जान पड़ता है, मैंने कहीं आपको देखा है।"

कहकर तारिणी कुछ सोचने का अभिनय करने लगी।

"जी, हो सकता है कि···।"

इसी समय मालती कानों के कुण्डल हिलाती आ पहुँची और मुसकराती हुई वोली—कहिये विनायक वावू, आप अच्छे तो हैं?

"जी, अच्छा क्या······यही विलकुल खामोश-सा, अपने आप में ही—"

पूर्णिमा ने व्यंग्य के प्रकार में दा

हो गया-सा !

"जी, आपने बिलकुल ठीक समझा।"

और विनायक बाबू हैं कि उत्तर जरूर देते हैं, पर दृष्टि क्या मजाल कि प्रश्नकर्त्ता से कभी आ मिले ! मालूम होता है, सदा यही सोचते रहते हैं कि कहीं कोई यह चार्ज न लगा दे कि घूरकर मुझे देख रहे थे।

तारिणी कृत्रिम गम्भीरता-पूर्वक कहने लगी—आपको मालूम नहीं महाशयजी, इन्होंने ज्योतिष-विद्या की बहुत ही उच्च-शिक्षा पायी है। भविष्य की बात बतलाने में इन्हें कई बार मेडिल मिल चुके हैं !

"भाभी, तुम चलो तो यहाँ से।···विनायक बाबू, आप इनकी बातों का कुछ खयाल न कीजियेगा।" मालती बोली—"लेकिन मैंने अभी तक आपका परिचय तो कराया नहीं।······ये हमारी बड़ी भाभी तारिणी हैं, फ़र्स्ट-इयर से इन्होंने कालेज छोड़ा था और ये, जिनकी बाबत आपने अभी सुना कि ज्योतिष-विद्या बहुत अच्छी जानती हैं, पूर्णिमा जी हैं, हमारी छोटी भाभी। ये संस्कृत भाषा और साहित्य में विदुषी हैं। मैट्रिक इन्होंने भी किया था और आप—उसने विनायक की ओर देखकर कहा—हमारे पूर्व परिचित, कालेज-मैगज़ीन के सम्पादक मिस्टर विनायक हैं, संस्कृत, दर्शन और इतिहास, तीन विषयों में आपने एम० ए० किया है।···पर आजकल तो आप शायद बेकार हैं। हैं न ?

विनायक ने धीरे से कह दिया—"जी।"

प्रशंसा सुनकर तारिणी और पूर्णिमा स्तब्ध हो उठीं। हाथ जोड़कर तारिणी बोली—अशिष्टता के लिए क्षमा कीजियेगा।

"जी, अशिष्टता क्या—भावुकता में डूबकर विनायक बोला—मैं तो—इसी योग्य हूँ कि आप मुझे कुछ भी कह लें···बल्कि अच्छा, हो, कुछ न कहकर भी—

"कुछ न कुछ कह ही दें" पूर्णिमा ने पुनः वाक्य पूरा कर दिया। तारिणी हँस पड़ी और कृत्रिम आश्चर्य से मालती बोली—तुम लोगों को आज हो क्या गया है !

"ऐसी बात कहती हैं आप कि मैं तो कुछ कह ही नहीं पाता हूँ।"

अन्य बातों पर कुछ भी ध्यान न देकर विनायक विमुग्ध होकर कहने लगा—मैंने आज तक किसी स्त्री में इतनी इंटलिजेंस नहीं पायी।

प्रशंसा सुनकर तरंगित तारिणी बोली—अच्छा, एक बात बतला दीजिये विनायक बाबू, मैं आपका बड़ा एहसान मानूंगी। आपने स्त्री-जाति में अभी तक क्या पाया है ?

"स्त्री में ? स्त्री में ?" विनायक अत्यन्त गम्भीर होकर कहने लगा—मैंने पाया वह हृदय···जो, जो सब कुछ खोकर भी कभी रिक्त नहीं होता, अजेय होकर भी सदा पराजित, असमर्थ होकर भी सदा आत्मदान में तत्पर रहता है। त्याग जिसकी प्रकृति है और तपस्या एकान्त निष्ठा।

प्रभावित तारिणी अवसन्न हो उठी और मालती बोली—लेकिन यही आप भूलते हैं विनायक बाबू। स्त्री सदा रिक्त रहती है। सब कुछ पाकर भी वह अपने पास कुछ रख नहीं पाती। शून्य है वह।

"भूल किसकी है, यही ठीक ढंग से समझ पाना जरा कठिन है।" विनायक ने इस बार साहस करके पूर्णिमा की ओर देखते हुए कहा—शिकायत है कि स्त्री रिक्त है। किन्तु स्त्री की यह रिक्तता स्वाभाविक ही है। इसको तो उसने समाज से खरीदा है; और पाया है बहुत महँगे दामों में। प्रकृत सत्य पर धूल डालकर उसने अपने आपको अभावों से मुक्त करना चाहा है, सीमाओं की सृष्टि करके उसने असीम को अपनाने की चेष्टा की है। यहाँ तक कि विकृतियों को भी उसने प्रकृति का रूप दे डाला है !

मालती उग्र होकर कुछ कहने ही जा रही थी कि तारिणी बोल उठी—"किन्तु अभी आपने कहा था कि स्त्री की प्रकृति तो त्याग में है !"

"हाँ" विनायक कहने लगा—मैंने मूल प्रकृति की बात कही थी। किन्तु जहाँ स्त्री प्रतिहिंसक का रूप धारण करती है, वहाँ वह सारी विकृतियों को अपनाकर स्वतः भी अपरूप हो उठती है। उस विकृति का यह कुफल केवल स्त्री ही भोगती हो, यह बात नहीं है, आजीवन अविवाहित रहने के प्रयोग जिन पुरुषों ने किये; उन्होंने पतन की चरम सीमाओं का आलिंगन करके

क्या पाया ?

मालती उत्तेजित हो उठी। तीव्र स्वर में वह बोली—उन्होंने मनुष्य के विकास का पथ-निर्देश किया है। समाज की जड़वृत्तियों का विध्वंस करके कठोर, कटु और निर्मम सत्य का अन्वेषण उन्हीं ने तो किया है।

संकोच त्यागकर विनायक कहने लगा—यही आप भूल रही हैं मिस मालती। सच पूछिये तो उन्होंने समाज में अनीति का विष फैलाकर उज्ज्वल मानवता पर कालिमा पोती है, उन्होंने समाज के मांगलिक रूप की खिल्ली उड़ा-उड़ाकर उसमें भेद, हिंसा और अशान्ति का बीज वपन किया है।

"कदापि नहीं। उन्होंने समाज के घातक और पतनशील अंधविश्वासों, रूढ़ियों और परम्पराओं का मूलोच्छेदन किया है। उन्होंने मनुष्य के मिथ्या दम्भों, अव्यावहारिक आदर्शों, उनकी ह्रासोन्मुख सीमाओं और मर्यादाओं का परदा फ़ाश किया है। ढोंगी, धूर्त, कायर और अस्वस्थ महन्तों, पुजारियों और नैतिक व्यवस्थापकों की काली करतूतों का रहस्योद्घाटन उन्होंने किया है।"

तारिणी बोली—एक पूर्व है, तो दूसरा पश्चिम।

और पूर्णिमा कहने लगी—लेकिन पूर्व आज पश्चिम को निमंत्रण अच्छा दे रहा है।

"निमंत्रण ?" विनायक कहने लगा—निमंत्रण तो सच पूछो, पूर्व ने ही सदा पश्चिम को दिया है।

मालती बोली—भ्रम है यह। निमंत्रण पश्चिम ने ही दिया है, पश्चिम ही देता आया है। आज यहाँ पूर्व पश्चिम से मिलने जो आया है, उसका निमंत्रण पाकर ही। पूर्व प्रारम्भ है, पश्चिम विकास। पूर्व अपूर्ण है, पश्चिम सम्पूर्ण।

विनायक हँसने लगा। बोला—पूर्व यदि प्रारम्भ भी है, तो पूर्णता, प्रकाश और ज्ञान का। और पश्चिम तो अन्धकार है, अन्त है—मृत्यु।

मालती बोली—इसे बहस न कहकर कठहुज्जती कहना अधिक उपयुक्त होगा।

तारिणी पूर्णिमा की ओर देखती हुई धीरे से बोली—पान नहीं मँगवाये।

पूर्णिमा उठकर बाहर जो गई, तो देखती क्या है कि आगे-आगे माँ जी आ रही हैं पीछे-पीछे अमिया और पान की तश्तरी माँ जी के हाथ में है।

अन्दर आकर माँ ने देखा तो बोलीं—ओ हो, तुम तो विनायक हो! कहो बेटा, अच्छी तरह से रहे?

विनायक ने प्रणाम करते हुए कहा—आपके आशीर्वाद से। लेकिन माँ, तुमने मुझे पहचाना खूब।

"क्यों, क्या मैं कभी भूल सकती हूँ कि बड़े बेटा के विवाह के अवसर पर तुम्हारे ही व्याख्यान ने दोनों पक्षों को शान्त किया था। इसके सिवा भी एक बार गृह-प्रवेश के अवसर पर तुम यहाँ आये थे।"

फिर थोड़ी देर रुककर माँ बोली—अमिया, विनायक बाबू को चाय बना ला।

"लेकिन माँ" विनायक ने कह दिया—चाय तो मैं पीता नहीं।

मालती हँसती हुई कहने लगी—चाय ही नहीं माँ, ये पूरी-मिठाई—यहाँ तक कि रोटी तक नहीं खाते। भीगे हुए कच्चे चने, फल और कभी-कभी खिचड़ी मात्र लेते हैं।

आश्चर्य से चकित होकर माँ बोली—बापरे बाप! कहती क्या है मालती?...सचमुच, क्या तू अब साधू हो गया है रे?

"नहीं तो माँ, साधू मैं क्यों बनूंगा। हाँ, खान-पान में अलबत्ता कुछ प्रतिबन्ध मैंने लगा रखे हैं।"

"तो, दूध तो पी ही सकते हो?" माँ ने आकुल अनुरोध से पूछा।

"हाँ, दूध तो..." कहते हुए विनायक कुछ रुका ही था कि पूर्णिमा बोली—लेकिन अकेले दूध से भी क्या होगा? नौ बज ही गये हैं। खाने का समय हो गया है। नये मेहमान को बिना खाना खिलाये भेजना भी ठीक न होगा। अधिक अच्छा हो खिचड़ी बनवा दो। क्यों भाई जी?

विनायक पूर्णिमा की ओर देखता रह गया।

तारिणी खिल-खिलकर हँसने लगी और मुसकराती हुई पूर्णिमा बोली—हाँ माँ, यही ठीक रहेगा। नये मेहमान को खिचड़ी खिलाकर भेजने में बड़ा पुण्य होता है।

इस पर सब लोग एक साथ हँस पड़े।

माँ ने अन्दर जाकर छीले और कटे हुए कुछ आम भेजे और गिलास भर गरम दूध। तब तक तारिणी और पूर्णिमा विनायक से उसकी दिनचर्य्या का हाल-चाल पूछती रहीं।

इसी क्षण अमिया ने आकर सूचित किया—दोनों सरकार आ गये हैं। सुनकर तारिणी और पूर्णिमा दोनों कुछ अस्त-व्यस्त हुई ही थी कि माँ ने आकर कहा—तुम दोनों चाहो तो जाओ। मैं तो यहाँ हूँ ही।

तारिणी और पूर्णिमा दोनों नमस्कार करती हुई चलने लगी।

तारिणी बोली—मुझसे धृष्टता तो बहुत हुई; पर आशा है, आप ख़याल न करेंगे।

पूर्णिमा कहने लगी—और मुझसे तो आपको शिकायत हो ही नहीं सकती; क्योंकि मैंने ही आप को ठीक ढंग से समझ पाया है।

मुसकराते हुए विनायक बोला—बड़े घरों में सभी जगह मेरा स्वागत-सत्कार प्रायः इसी प्रकार होता है।

मुसकराती हुई दोनों चली गयीं।

मालती अँगड़ाई लेती हुई उठी और बोली—आज मैंने आपको बहुत कष्ट दिया।

"कष्ट ?" आश्चर्य और आह्लाद के भाव से विनायक ने कहा—लेकिन इस प्रकार का कष्ट मुझे रोज तो मिलने से रहा, अगर मैं चाहूँ भी!

एक साथ मालती और माँ, इस बात पर, उसे ध्यान से देखती रह गयीं।

देर से कौंधा लपक रहा था, लेकिन हवा बन्द थी। आकाश में बादल घिरे हुए थे। अमिया ने कहा—जान पड़ता है, पानी बरसेगा माँ।

माँ ने पूछा—तुम तो साइकिल पर आये होंगे विनायक?

विनायक बोला—साइकिल छोड़ हम लोगों के पास दूसरी और सवारी हो ही क्या सकती है!

"तब न हो, रात यहीं रह जाओ।" माँ ने कहा—शहर यहाँ से काफ़ी

दूर पड़ता है। पर घर में कोई विशेष चिन्ता तो न करेगा ?

एकाएक मालती का ध्यान माँ की ओर आकृष्ट हो गया।

"नहीं माँ" विनायक ने उत्तर दिया—चिन्ता करनेवाला और तो कोई है नहीं; केवल एक माँ है। सो, जब तक मैं पहुँचूंगा नहीं, तब तक वह प्रतीक्षा में दरवाज़े पर ही, किवाड़ों से लगी, बैठी रहेंगी।

माँ बोली—तब मैं तुमको नहीं रोकूँगी।

आठ

मन को समझाने से ही क्या होता है ? क्या मन ऐसी चीज़ है कि एक बार समझा देने से ही उसकी भूल शान्त हो जा सकती है ! फिर उसको समझानेवाली कोई दृढ़ सत्ता हो, तो भी एक बात है। विवेक मनुष्य की गति पर शासन तो कर नहीं सकता। यह शक्ति तो भावना में ही रहती है। शरीर की जो आवश्यकताएँ जागरूक हैं, विवेक उनके पलकों पर आसीन होकर उन्हें सुलाएगा कैसे ? भविष्य की सीमा-रेखाओं का संकेत मात्र करते जाना उसका गुण ठहरा। वर्तमान की गति उकसाने का भार वह कैसे वहन करेगा ! जीवन के निदारुण भोगाभोग का लेखा उसके पास भले ही बना रहे; किन्तु अकल्पित अभावराशि के दर्प को व्यर्थ कर डालने की सामर्थ्य उसमें नहीं है।

सायंकाल तो मालती 'संजीवन' कार्यालय में शर्म्माजी से मिलने न जा सकी, किन्तु दूसरे दिन सवेरे अवश्य उनके घर गयी। आज भी शर्म्माजी बैठे 'टुडे' पढ़ रहे थे। मालती को आया देखकर सहज शान्त भाव से बोले—आओ, बैठो।

मालती ने पूछा—रज्जन की तबियत तो अच्छी है न ?

"वैसे ही है" शर्म्माजी ने उत्तर दिया और फिर वे चुप हो रहे। किन्तु

जान पड़ता है, इस उत्तर से मालती को संतोष नहीं मिला। इसलिए चुप न रहकर फिर मालती बोली—मैं सिर्फ चन्द मिनटों के लिए आई हूँ।

गिरधारी ने समाचार-पत्र एक ओर रख दिया। फिर कुछ विनोद के भाव से बोले—ख्याल तो बुरा नहीं जान पड़ता। मालती ने लक्ष किया, इस उत्तर में व्यंग्य-विनोद का भाव ऊपर से जड़ा गया है, वास्तव में एक तटस्थता ही उनमें अधिष्ठित है। तब उसने कहा—खैर, यह आप जानें। मुझे इस वक्त सिर्फ यह जानने की जरूरत है कि श्रद्धानन्द-पार्क में जो सभा होगी, उसका कार्य-क्रम क्या है ?

"कार्य-क्रम विशेष तो कुछ है नहीं।" गिरधारी ने उत्तर दिया—एक प्रस्ताव रहेगा, उसी पर कुछ व्याख्यान हो जायेंगे। क्यों ? तुमको कोई नवीन प्रस्ताव उपस्थित करना है क्या ?

"मालती ने लक्ष किया, यह व्यंग्य कदाचित उस दिन के मेरे कथन को लेकर उठा है। मैंने कहा था कि''''ऐसा पुरुष नेता नहीं हो सकता। ऐसे पुरुष को सेवा के किसी भी जिम्मेदार पद पर रहने का अधिकार नहीं है।" और तब कृत्रिम आवेश और तरंगित विनोद से उत्साहित होकर वह बोली—भीतर कहीं कोई उछल-कूद मचा रहा है क्या ?

बिना छींटा डाले गिरधारी भी अपने को रोक न सका। बोला—उछल-कूद के दिन तुम्हारे हैं और तुम बैडमिंटन खेलती भी खूब हो। दिलचस्पी देखकर मैं तो यों ही एक बात पूछ रहा था।

इसी समय रेणु आ गयी और मालती की ओर होकर स्वाभाविक हास के साथ बोली—नमस्ते।

प्रत्युत्तर में 'नमस्ते' करती हुई मालती बोली—"मैं अभी आ ही रही थी भाभी।" यद्यपि उसके दबे और कृत्रिम स्वर से यह छिपा न रह सका कि केवल एक शिष्टाचारवश वह ऐसा कह रही है।

उधर रेणु ने भी इस पर अन्यथा सोचकर हँसते हुए कहा—

"तुम आती ही रही और मैं आ भी पहुँची। अब तुम कभी यह न सोच सकोगी कि मैं तुम्हारा ध्यान नहीं रखती।"

अतः गम्भीर होकर वह बोल उठी—क्यों, मुझमें ऐसी क्या खास
?

रेणु कार्य-वश अन्दर चली गयी थी। गिरधारी ने अनुभव किया, प्रश्न-कथन में—कण्ठस्वर में—वह स्वभाविक मार्दव नहीं है। तब उसने उत्तर का प्रकार ही बदल दिया। वह बोला—क्यों, खास बातों की तुममें ऐसी कोई कमी तो है नहीं, जो चिन्ता करने की आवश्यकता हो। सभा-मंच पर जब तुम सिंहनी की भांति गर्जन करोगी, तो कितने ही वन्य जन्तुओं का कलेजा दहल जायगा। श्वानों और शृंगालों को तो रास्ता खोजे न मिलेगा। फिर मृदुल कंठ से जब तुम किसी प्रश्न अथवा समस्या की व्याख्या करती हुई आगे बढ़ोगी, तो कितने ही श्रोताओं को केकी का भ्रम होगा।

आनन्द और उल्लास की लहरें उठातीं मालती हँसती हुई बोली—लेकिन घनश्याम जब तक कृपालु न होंगे, तब तक वर्षा भी कैसे होगी! कभी-कभी भागते हुए से दीखते हैं। कौन जाने, कब बरसेंगे। ऐसी दशा में एक नय रिस्क कौन मोल ले।

"लेकिन घनश्याम कभी किसी को आश्वासन देकर तो आते नहीं। यह तक कि किसी का निमंत्रण भी नहीं करते। बरसते क्षण यह भी नहीं विचा करते कि कहाँ इस वर्षा की अधिक उपयोगिता है, कहाँ कम।"

"तब तो वे सचमुच बड़े अन्यायी हैं।"

"न्याय और अन्याय तो हमारे सोचने और निश्चित करने का वि है।"—गिरधारी बोला—सो भी अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार। प्रकृति की जो एक जड़, अबाध और दुर्निवार कर्मधारा है, उसके आगे न्य अन्याय का कोई प्रश्न नहीं रहता।

"तब मुझे केकी बनने का कोई मोह भी नहीं है।" कहती हुई मा ने कृत्रिम गम्भीरता धारण कर ली और गिरधारी पूछ बैठा—कब से ?

"जब से प्रकृति की जड़, अबाध और दुर्निवार कर्मधारा का ज्ञान हुआ

उत्फुल्ल गिरधारी कुछ कहने ही जा रहा था कि उसी क्षण डाक्टर ल आते देख पड़े। आते ही मालती की ओर देखते हुए बोले—हल्लो मिस मा

तुम यहाँ कहाँ !

एकाएक मालती ललित को सामने देखकर अप्रकृत होती-होती बची। बोली—ललित बाबू, मुझे यहाँ देखकर आपको आश्चर्य क्यों हुआ ?

अब ललित ने एक बार सरसरी दृष्टि से उसे ऊपर से नीचे तक देखा। देखा, साड़ी के रूप में रेशमी और जार्जेट का स्थान खद्दर ने ले लिया है। तब एक कुटिल हास के साथ वे बोले—मुझे अब तक मालूम नहीं था कि अब आप एक देशभक्त-राष्ट्र-कामिनी के रूप में पब्लिक फ़ील्ड में आ रही हैं। इस उज्ज्वल भविष्य के चुनाव के लिए मेरी बधाई और शुभ कामनाएँ स्वीकार कीजिये।

मालती परस्पर विरोधी विचारों में पड़ गयी। भीतर और बाहर का क्षण-क्षण का द्वन्द्व उसकी मुद्रा पर आये बिना न रह सका। फलतः ललित की ओर देखे बिना साधारण स्वर में उसने कह दिया—बहुत-बहुत धन्यवाद।

इसी समय रेणु मुस्कराती हुई आ पहुँची। बोली—आज तो तबियत कल की अपेक्षा अच्छी रही डाक्टर साहब।

. ललित ने एक बार मालती को दृष्टि में भरकर आगे बढ़ते हुए कहा—चलिये, ज़रा-सा देख ही लूँ। गिरधारी भी उनके साथ हो लिया।

किन्तु मालती वहीं कुर्सी पर जड़वत् बैठी हुई निःश्वास लेती रही।

नौ

कभी-कभी साधारण परिहास भी बड़ा काम कर जाते हैं। एक व्यक्ति के अन्दर से फूटी हुई विनोद-वाणी, जो दूसरे को अयोग्य समझकर उसकी हीनता को कुरेदने में आनन्दित होती है एक ऐसा अहंकार है, जो साधारण रूप से मनुष्य-मात्र में होता है। किसी में कम, किसी में अधिक। महापुरुषों में इसकी मात्रा कुछ विशेष होती है। रूप-सौंदर्य और धन का [illegible]

कोटि का समझा जाता है; क्योंकि वह विद्या-बुद्धि की अपेक्षा नश्वर होता है। त्याग, उदारता, विनयशीलता, सत्य और प्रेम का भी अहंकार होता है। सुन्दर, शोभन और कीर्तिदायक। जो परिहास प्रेमी की सोती हुई योग्यता को जगाने अथवा उस पर अयोग्यता का आरोप करने के लिए होते हैं, वे प्रारम्भ में मूलतः परिहासकार की अहंकार भावना ही को लेकर उठते हैं; किन्तु उनमें प्रेमी के विकास का एक मार्दव संकेत भी रहता है। इस प्रकार के परिहास वास्तव में एक प्रकार के प्रेमचिह्न हैं। आकर्षण के आदान-प्रतिदान का आह्वान ही उनका मूल उद्देश्य होता है।

व्याख्यान की बात सुनकर मालती बड़े फेर में पड़ गयी थी। विद्यार्थी-जीवन में कालेज के डिबेट में वह सम्मिलित होती थी, उसकी वक्तृत्व-शक्ति भी आकर्षक और प्रभाव-शालिनी थी। किन्तु सबसे बड़ा दोष उसमें यह था कि व्याख्यान देते क्षण वह प्रायः अपने सोचे हुए विचार भूल जाती थी। इसका परिणाम यह होता था कि वह जितनी देर बोलना चाहती, उतनी देर बोल नहीं पाती थी—'ऐसी दशा में क्या वह सफल हो सकती है?' वह बार-बार अपने आपसे पूछने लगती।

आज मालती को अपने वे दिन भी बार-बार याद आ रहे थे। वह सोचती थी, उन दिनों मन में उल्लास कितना रहता था! कालेज के सिवा घर पर भी पढ़ना, सखियों से मिलना-जुलना, सिनेमा-थियेटर, पार्टी—दिन-रात कितनी जल्दी और कितना व्यस्त व्यतीत होता था!...परन्तु आज तो उसे एक सार्वजनिक सभा में भाषण देना है।'—बार-बार घूम-फिरकर यही प्रश्न उसके सामने आ जाता।

घर पहुँचना मालती के लिए दुष्कर हो गया। पेट्रोल-राशनिग के कारण आज उसे घोड़ा-गाड़ी पर आना पड़ा था। आज समय का मूल्य भी वह अधिक अनुभव कर रही थी। बार-बार वह कोचवान से कहने लगती—जल्दी ले चलो जी मत्तू, बहुत जरूरी काम है, और फिर वह विचारों में लीन हो जाती। उल्लास की लहरें उसके शरीर-भर में दौड़ रही थीं। वह सोचती—व्याख्यान के बीच में अगर चार-छै बार तालियाँ न पिटीं, तो व्याख्यान दो

कौड़ी का। लोग चर्चा तक नहीं करते। मैं खुद भी तो कितने ही लोगों का मज़ाक बनाया करती हूँ।···धीरे-धीरे, रुक-रुककर बोलना भी, एक मुर्दापन की निशानी है। भाषण में प्रवाह···उसे याद आ गया, उसने कहीं पढ़ा था कि ग्लाडस्टोन बारह-बारह घंटे धाराप्रवाह बोल सकता था।···लेकिन यह सब कुछ नहीं। वक्ता के पास कुछ गम्भीर विचार और नया सुझाव होना चाहिए, जिससे श्रोताओं को कुछ सोचने का अवसर मिले।—शैली में एक ऐसा ओज, जो उनको हहराती यमुना में बहा ले जाय!

गाड़ी से उतरकर मालती जब बरामदे में आयी, तो बड़ा भतीजा सुशील अमिया को डाँट रहा था—'गाड़ी आने में अगर देर हो गयी, तो मैं स्कूल कैसे जाऊँगा?—मुझसे बिना कहे सुने मत्तू को जाने ही क्यों दिया?'

मालती क्षण-भर को उस कमरे के द्वार पर खड़ी हो गयी और बोल उठी—क्या है सुशील?

सूट से लकदक, एक हाथ में पुस्तकें लिये सिर हिलाते हुए, सुशील बोला—"तुमने तो बस, मुझे हैरान कर डाला बुआजी। मैं सोच रहा था, कहीं तुम जल्दी न आयी तो? खैर शुक्रिया, 'माफ करना बुआजी। (घड़ी देखकर) ले चलो जी मत्तू।"

मत्तू बोला—"बाबू भैया, अभी तो जानवर जरा थका हुआ है। थोड़ा ठहर जाओ तो मैं उसे दाना खिला लूँ। आज दस मिनट लेट ही सही।"

"क्या बकते हो! ऐसा भी कहीं हो सकता है!"

"बाबू भैया, तुम तो···।"

अब फ़र्श पर पैर पटकते हुए सुशील ने कह दिया—"मैं कहता हूँ, ऐसा नहीं हो सकता—नहीं हो सकता।"

स्थिति का अनुभव करती हुई मालती बोली—"जिद मत करो सुशील। ज़रा घोड़े को दाना खा लेने दो। अभी सवा नौ ही तो बजा है।"

"बात यह है बुआजी"—सुशील बोला—"आज मुझे जल्दी पहुँचना है।"

और मालती तब सोचने लगी—आज इस घोड़े की जो स्थिति है, वही पूँजीजीवी समाज में प्रत्येक श्रमजीवी की है।

वह बोली—"देखा सुशील, जिद्द मत करो; थोड़ी देर ठहर जाओ।
ानवर बे-ज़बान होते हैं। वे अपनी तकलीफ़, अपना दुःख-सुख, कह नहीं
ाते। हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम सहानुभूति रखकर उनसे
व्यवहार करें। है न ?"

मालती की बात सुनकर इस बार सुशील को थोड़ा आश्चर्य हुआ। बात
भी कुछ-कुछ उसकी समझ में आ गयी थी। अतएव उसने कहा—"अच्छी
बात है। मैं दस मिनट की जगह पन्द्रह मिनट देता हूँ।"

इतना कहकर वह भीतर—अपने कमरे की ओर—बढ़ गया।

मालती के अन्दर जाने पर पूर्णिमा सामने पड़ गयी। उसको देखकर
मुसकराती हुई वह बोली—आज बहुत प्रसन्न देख पड़ती हो। ऐसी क्या
बात है ?

विहँसती मालती ने कहा—श्रद्धानन्दपार्क में आज शाम को सभा होगी।
चलोगी नहीं ?

आश्चर्य के साथ पूर्णिमा बोली—मैं ? कौन मुझे साथ ले जायगा। फिर
तुम तो नेताओं के बग़ल में विराजोगी; मेरा कौन ख़याल करेगा ?

गम्भीरतापूर्वक मालती ने उत्तर दिया—क्यों ? क्या वहाँ स्त्रियों के लिए
ख़ास इन्तज़ाम न होगा ?

"लेकिन उन स्त्रियों के बीच मैं रहूँगी तो अकेली ही। जीजी चलेंगी
नहीं। संग-साथ की जब तक दो-चार स्त्रियाँ न हों, तब तक सभा-समाज
जाना ठीक नहीं।"

"क्यों ? वहाँ किसी तरह का डर तो रहता नहीं।"

"तुमको क्या पता कि जहाँ दस स्त्रियाँ इकट्ठी हुईं, वहाँ किसी-न-कि
विषय पर मतभेद अथवा कहा-सुनी हो जाना अवश्यम्भावी हो जाता
अलीगढ़ में एक बार एक सभा में भाभी के साथ गयी तो थी। व्याख
प्रारम्भ ही हुआ था कि देखती क्या हूँ, एक बुढ़िया जल रही है !

"दोनों हाथ फटकार-फटकारकर वह सभी उपस्थित महिलाओं को
खोटी सुनाने में बिलकुल अग्नि चंडी का रूप धारण कर रही थी। सिगर म

की तरह तो उसकी जबान चलती थी। कारण पूछने पर बड़ी मुश्किल से मालूम हुआ कि वह उस दिन एकादशी व्रत में थी और उसका कहना था कि उसके पास बैठी हुई स्त्री बात करती हुई थूक उटकाती है; इसलिए उसे घर जाकर नहाना और सारे कपड़ों को धोना पड़ेगा। उसकी इस बात पर बहुतेरी स्त्रियाँ उसी को दोष देने लगीं। हल्ला देखकर स्वयंसेविकाएँ आ पहुँचीं। तब कहीं बड़ी मुश्किल से वह शान्त हुई।"

विनोद के भाव से मालती ने पूछा—उसके बाद फिर क्या हुआ?

पूर्णिमा बोली—थोड़ी देर बाद भजन शुरू हुआ, तो एक स्त्री एकाएक चीख उठी। पीछे बैठी हुई स्त्रियों की ओर संकेत करती हुई वह बोली—मालूम नहीं किसने पीछे से मुझे पिन चुभा दिया। दूसरी स्त्री बोली—जान पड़ता है, इसी बुढ़िया की करतूत है। फिर एक साथ कई स्त्रियों ने इसी बात का समर्थन भी कर दिया। अन्त में स्वयंसेविकाओं ने विवश होकर उसे उठा दिया। तब वह टर्राती हुई चली गयी।

व्यंग-भाव से मालती बोली—पर अन्त में एक बात कहना तो तुम भूल ही गयीं।

आश्चर्य के साथ पूर्णिमा ने पूछा—कौन-सी बात?

मालती ने उत्तर दिया—अन्त में कहानी का यह निष्कर्ष कि जैसा उसने ऊधम मचाया, वैसा ही चटकीला उसका फल पाया।

तदनन्तर वह चलने लगी।

किन्तु इस पर पहले पूर्णिमा और फिर मालती दोनों हँस पड़ीं।

पूर्णिमा बोली—ख़ैर, मॉरल की बात तो तुम जानो, लेकिन तुमसे क्यों छिपाऊँ, उस बुढ़िया का नाम पहले-पहल मैंने ही लिया था।

इस बार मालती भाभी की इस बात को सुनकर कुछ तरंगित होती-होती हँसी रोककर बोली—लेकिन यह बात तुमने अब तक माँ को तो बतलायी न होगी?

मुसकराती हुई पूर्णिमा बोली—तुम बड़ी धूर्त हो!

मालती को जल्दी-से-जल्दी अपने कमरे में पहुँचना था। पर वह चलने

लगी, तो पूर्णिमा ने रोकते हुए उत्सुकता से पूछा—अच्छा यह बतलाओ विनायक बाबू का भाषण भी होगा ?

"हो सकता है" कहती हुई मालती कुछ सोचती हुई बोली—अच्छा, उनका भाषण करा दूं तब तो चलोगी, बोलो ?

मन-ही-मन कुछ स्मरण करती हुई मन्द स्वर में पूर्णिमा ने कहा—मैं कैसे जा सकती हूँ बीबी ? वे सरकारी नौकर जो हैं।

"तो इससे क्या ?"—मालती ज़ोर देकर कहने लगी—तुम इस विषय में सर्वथा स्वतंत्र हो। भैया कभी इसके लिए तुम्हें मना नहीं करेंगे।

पूर्णिमा चुप थी।

तब दृढ़ता के साथ मालती बोली—"अब तो तुमको चलना पड़ेगा भाभी" और आगे बढ़ने को जो हुई तो माँ ने कह दिया—कब से खाना तैयार रखा है। खा क्यों नहीं लेती ?

किन्तु अन्दर चलते हुए मालती ने उत्तर दिया—तुम खाओ माँ। मुझे अभी भूख नहीं है। इसके सिवा मुझे इसी समय एक ज़रूरी काम भी है।

"काम तो तुझे इस तरह बना ही रहता है।" माँ ने मीठे प्यार के साथ शिकायत करते हुए कहा—कभी तूने वक्त पर खाना खाया है ?

माँ के कथन की ज़रा भी परवा किये बिना मालती अपने कमरे में जाकर व्याख्यान की तैयारी करने लगी।

इस समय उसके मानस-क्षितिज पर कई चित्र उड़ रहे थे। उसके मन में आता था—

जो बातें शर्म्माजी ने व्यंग्य में कही हैं, वह उन्हें चरितार्थ करके दिखा देगी। वह भाषण देगी। उसे भाषण देना ही पड़ेगा। अपनी विचारधारा को व्यक्त करने में वह ज़रा भी नहीं हिचकिचायगी।···भाभी ने स्त्रियों की हीनावस्था का अच्छा मज़ाक बनाया। सचमुच उसे अपने ऐसे हीन नारी-समाज को ऊपर उठाना है। उसे अपने नगर में एक आदर्श उपस्थित करना है।

कई दिन से वह अकेली, चुपचाप, नित्य मज़दूरों के मुहल्लों में जाती रही है। उसने उनका यथार्थ जीवन अपनी आँखों से देखा है। उसके मन में

बार-बार कुछ विचार टकराते रहे हैं। उसने अनुभव किया है कि जो समाज रात-दिन श्रम करता है, उसकी यह दुर्गति हो कि वह अपने परिवार का भरण-पोषण तक न कर सके और केवल पूंजी की बदौलत, जो वास्तव में राज्य की सम्पत्ति होनी चाहिये, कुछ लोग बिना परिश्रम किये गुलछर्रे उड़ाते रहें, हमारे समाज की यह कैसी जड़ता है !

एक चित्र उसके सामने आ गया।

वह गाड़ी से उतरकर, बटुआ हाथ में लिये हुए, ज्योंही विपिन के घर की ओर जाने को हुई कि बगल में नाली की ओर उसकी दृष्टि जा पड़ी ! दरवाजे के नीचे ही एक ओर जमीन पर कुछ पका दाल-चावल पड़ा था। इसी क्षण एक साँड़ आता है। स्थूलकाय इतना कि माँस थल-थल होता है; मारने पर दौड़ नहीं सकता। अनाज की ढेरी हो कि फलों की मल्ली, एक बार मुँह डालकर फिर उसे उठाना नहीं जानता; चाहे पीठ पर डंडे ही क्यों न पड़ें। फिर एकाएक आकर उस दाल-चावल को सूँघकर थूथुन सिकोड़ता हुआ आगे बढ़ जाता है !

यों चाहे मालती का ध्यान उसकी ओर न जाता, किन्तु ढेर-भर पके दाल-चावल को त्यागकर जब वह चल देता है, तब केवल उस थूथुन को ही न देखकर वह उसके सम्पूर्ण शरीर और उसके मदान्ध कलेवर को भी देख लेती है। इसी क्रम में, मकान—नहीं हवेली—और दाल-चावल की श्रेणी आदि पर भी उसका ध्यान जाता है। सोचती है—ऐसा हो सकता है। यही सर्वथा स्वाभाविक है। दाल-चावल जान पड़ता है, बुस गया है। सड़ांध उसमें आती होगी।

बात आयी-गयी हो गयी। मालती भी आगे बढ़ गयी। विपिन से वार्तालाप करने में आध घंटा के लगभग लग गया। लौटी तो गाड़ी तक आने में उसी मकान के पास से फिर गुजरना पड़ा।—लेकिन ऐं ! यह बात क्या है ?—सात-आठ वर्ष की एक काली-काली लड़की; शरीर में केवल एक लंगोटी पहने हुए; अंगुलियों से पोंछ-पोंछकर दाल चाट रही है !

मालती से रहा नहीं गया। उसने पूछा—यह तू ने क्या किया ? यह तो

बासी अन्न था, सड़ा, बदबूदार !

किन्तु उसके इस कथन का उस लड़की पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह सहज शान्तभाव से बोली—यह भी दो दिन भूखी रहने पर नसीब हुआ है सरकार !

मालती कुछ लिखने बैठी थी। वह यों ही ऊज-जलूल थोड़े ही बकेगी। एक सम्बद्ध और सुसंगत भाषण उसे देना है। कलम उसकी चल रही है और चल रही है। भाषण लिखकर वह उसे अपनी स्मृति पर उतारेगी। एक बार, दो बार, दस बार। उसे भाषण देना है—भाषण। उसे अपना निर्माण करना है।

घड़ी ने बजाये बारह। एक साथ पूर्णिमा, तारिणी और माँ उसके पास जा पहुँची। पीछे-पीछे अमिया।

एकाएक दरवाजा खुला; मालती की दृष्टि उधर जा पहुँची।

"क्यों री, क्या आज कुछ भी नहीं खाना है तुझे ?" माँ ने आते ही कहा।

मालती कलम को जरा भी रोके बिना बोली—फ़ुरसत नहीं है माँ।

और माँ खड़ी सामने देख रही हैं कि मालती वास्तव में कुछ लिख रही है। तारिणी और पूर्णिमा भी दोनों ओर खड़ी हो गयीं और झुककर देखने लगीं कि क्या वास्तव में कोई ज़रूरी चीज़ है।

तारिणी बोली—यह तो लेख है माँ।

पूर्णिमा ने कहा—लेकिन इस कार्य में ऐसी जल्दी क्या है कि खाना-पीना भी त्याग दिया जाय ?

और अमिया धीरे से बोली—मैं अगर चाय बना लाऊँ, तो बीबी रानी इन्कार तो कर न सकेंगी !···लेकिन अकेली चाय से भी क्या होगा ?

पूर्णिमा बोली—बिस्कुट तो ले आ सकती है।

अमिया झट दौड़ती हुई चल दी।

मालती किसी से बोली नहीं; वह बराबर लिखती रही।

पूर्णिमा कहने लगी—आज सभा भी तो है शहर में। ले नहीं चलोगी माँ ?

विरक्ति के साथ माँ ने कहा—सभाओं में हम लोगों का क्या काम ? यह

तो उन निकम्मे लोगों का काम है, जिनके पास खाने तक को नहीं रहता, भले आदमियों को नित्य ठगते रहना जिनका पेशा है !

मालती ने लिखना बन्द कर दिया। विष का-सा घूंट निगलते हुए वह बोली—एक बात मैं कह दूँ माँ ?

माँ चुप रही। उनकी दृष्टि मालती के मुख पर थी।

मालती बोली—हमारे देश में मरने पर दाह-संस्कार के बाद चिता-भूमि को साफ करके उस पर कुछ लिखने की प्रथा है। मेरे मरने पर यही शब्द वहाँ लिखा देना। भला !

माँ बड़बड़ाती हुई चल दीं—मरें तेरे दुश्मन।

तेरा क्यों बाल बाँका हो !—मेरा बोलना भी अगर तुझे जहर सा लगता है, तो मैं चली जाती हूँ।

वे इतना कह कर चल दी।

मालती फिर लिखने लगी।

आठ घंटे बाद :

"आप हैं कामरेड अमृतवर्षण त्रिवेदी, स्थानीय एक्ज़ीक्यूटिव आफ़िसर के छोटे भाई। आप दुर्दर्पसिंह, स्थानीय सेवा-दल के आरगनाइजिंग सेक्रटरी और आप मौलवी लियाकतहुसेन मोहानी।"

क्रमशः आवाजें—"मैं आपको बहुत-बहुत बधाइयाँ देता हूँ कामरेड मालती।···आपको हार्दिक बधाई है।·· आपने तो एक ही व्याख्यान से हमारे नगर में जान डाल दी।···मैं आपको तहे दिल से मुबारकबाद देता हूँ।··· हमारे लेबर-यूनियन में तो आपने एक नई रूह फूँक दी।"

"मैं तो आपका एक अरसे से एडमायरर हूँ। म्यूजिक-कान्फरेंस में आपने ही तो हमारे शहर की इज्जत अफज़ाई की थी। मगर आज तो आपने कमाल ही कर दिया।"

"आप तो—मेरा खयाल है—एक अच्छा खासा उनका नाम है—प्ररदये-विमेनकशोर (प्रद्युम्नकिशोर) लेट रायबहादुर साहब की डॉटर है न?···जी हाँ, यही तो···वही तो···मैं सोच रहा था; मेरे फ़ादर उनके यहाँ मुहर्रिर

यम थे।...जी हाँ। एक-आध बार मैं आपकी कोठी पर गया भी था। गर वाह! आपकी तक़रीर क्या हुई, गोया सल्तनते-बरतानियाँ के लिए आपने एक नहीं ज़हमत बरपा कर दी। मेरा अपना ख़याल तो यह है कि पिछले दस साल के अन्दर ऐसी पुरजोश तक़रीर हुई ही नहीं। हज़ार-हज़ार मुबारकबाद!"

मालती अपने कमरे में एक पलँग पर लेटी है। रात है और एक बज गया है। उड़ते बादलों में बीच से कभी-कभी चन्द्रमा झाँक उठता है। खिड़की खुली है और फर-फर करता शीतल पवन का झकोरा आ जाता है। कल्पना के निर्मल पट पर अनेक प्रकार के चित्र आते और चले जाते हैं। आज श्रद्धानन्द पार्क में उसका जो व्याख्यान हुआ, उस पर लोगों ने उसे कितनी बधाइयाँ दीं! जहाँ वह खड़ी हुई, वहीं एक-न-एक दल ने उसे घेर लिया। लो। अपनी-अपनी शैली में अपने उद्‌गार प्रकट करने लगे।...

यह अमृतवर्षण भी खूब है। कितना सुन्दर व्यक्तित्व है! ऐसा जान पड़ता है, मानों प्रत्येक क्षण गुञ्जन करता रहता है! किन्तु व्याख्यान उसका अत्यंत साधारण रहा। यह आदमी जहाँ आज है, सदा वहीं रहेगा।...और सरदार दुद्धर्पसिंह की दाढ़ी क्या खुशनुमा बनी है! हर बाल जैसे छल्ले बना रहा हो! मगर आप दहाड़ते खूब हैं। लेकिन कहने के लिए आपके पास क्या है? एकदम से मत्था पकड़ लेते हैं!.. और मौलाना लियाक़तहुसेन भी खूब रहे। पैजामा आपका यह बतलाता है कि आप अपनी बीबी को कितना खुश रखते होंगे। लेकिन पिताजी के मुहर्रिर दोयम के वह बरखुरदार खूब हैं। 'जी हाँ वही तो—वही तो—मैं सोच रही थी'—और अपनी झब्बेदार टर्किश टोपी उतारकर आप बाक़ायदे सिर भी खुजलाने लगे। फिर नाम को याद रखने का तरीका—'परदयेविमेनकशोर!' अजीब खोपड़ियाँ हैं इन लोगों की!

लेकिन शर्म्माजी का चित्र सामने आते ही करवट बदल लेती है।—'अ तक मैं इनको क्यों भूली रही? कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचती! इन चार दि में ही मैं क्या-से-क्या हो गयी हूँ! देखूँ, कल के पत्रों में क्या निकल है।...आज तो शर्म्माजी खुद मुझे यहाँ तक भेजने आये।...माताजी भी कित

प्रसन्न हुई ! आज अगर पिताजी जीवित होते, तो मेरा यह विकास देखकर उन्हें कितनी खुशी होती !···हाँ, बड़े भैया का रुख मेरी ओर से अच्छा नहीं रहता। किन्तु आज उन्होंने भी कहा—'तुमसे कई मित्रों ने तुम्हारे व्याख्यान की प्रशंसा की।'—फिर बड़े प्यार से कहने लगे—'कहीं जेल की हवा न खानी पड़े। लेकिन तू भी कम चालाक नहीं है। जेल हो जाने पर फिर कौंसिल में आते क्या देर लगेगी तुझे !'···आज कहने का अवसर नहीं था। दो-चार दिन बाद रुपये के लिए फिर कहूँगी। सन्यासीजी मेरे लिए क्या नहीं कर रहे हैं ! जिस आदमी का सारा जीवन सार्वजनिक सेवाओं के लिए निरन्तर इतना तत्पर, इतना समर्पित रहता हो, उनकी यह स्थिति कि वह कार या गाड़ी के बजाय इक्के में जाता हो !—जिसके घर पर बिजली का पंखा न हो ! खादी के एक कुरते को दो-दो, तीन-तीन दिनों बाद बदल पाता हो !—विद्या-बुद्धि, विवेक और प्रतिभा में जो अद्वितीय हो। साधु, तपस्वी और निर्मम। एक धुन उन्हें सवार रहती है, एक व्यापक और विस्तृत कार्यक्षेत्र उनके सामने है और जीवन की आहुति जारी है। फिर यह व्यक्ति कर्मठ कितना है ! कितना बड़ा नगर और उनका कार्य-क्षेत्र कितना विस्तृत ! आज सर्वत्र उनके नाम की तूती बोलती है।'

फिर सोचती है—'पर मैं अब तक इनसे मिली क्यों नहीं ?'···इस आदमी में यौन-लिप्सा जैसे मर गई हो ! महात्माजी का यह कथन—पुरुष और स्त्री का कामजन्य आकर्षण स्वाभाविक नहीं—इसी श्रेणी के व्यक्तियों में पूर्ण चरितार्थ होता है। मैंने भी सोच लिया है कि मैं—अब तक जो कुछ हुआ सो हुआ—अपना भावी जीवन देश के काम में लगा दूँगी। मैं जल रही हूँ और जलती रहूँगी। मैं अपनी यौन-सम्बन्धी आवश्यकताओं को मिटा दूँगी—दब कर डालूँगी उनको। मेरा जीवन एक महान् उद्देश्य रखता है और मैं महान् बनकर रहूँगी।

अब सब कुछ शून्य में समा गया है। मालती की आँख लग गई है। एक मधुर स्वप्न लेकर वह सो गई है। चन्द्रमा अस्त हो गया है और चतुर्दिक अन्धकार-ही-अन्धकार छाया हुआ है। झींगुरों का स्वर गुंजन कर रहा है।

"ऐसी ही बात है शर्म्माजी" विपिन ने कहा और उसने चाहा कि वह इस बात को अब भी गुप्त ही रहने दे।

किन्तु शर्म्माजी बोले—बतलाओ न, ऐसी क्या बात है ? आखिर मैं भी तो जानूं। तुम सोचते हो कि सुनकर मैं उसका अवांछनीय ढंग से प्रचार करने का साहस करूँगा।

"नहीं-नहीं, यह बात नहीं है शर्म्माजी" विपिन ने अस्थिर होकर कहा—बात यह है कि सुनकर आपको कष्ट ही होगा।

"किन्तु अब, इतनी दूर आकर वापस जाने में तो वह कष्ट और भी बढ़ जायगा।"

"तो फिर सुनिये" कहते हुए विपिन ने जेब से बीड़ी-बंडल निकालकर सामने रख लिया। दियासलाई से एक बीड़ी जलाने और उससे एक-दो कश लेने के बाद वह कहने लगा—"वास्तव में मेरी शादी बचपन में ही हो चुकी है। उस समय मेरी अवस्था केवल पन्द्रह वर्ष की थी। मामा ने विवाह किया था। पिता थे नहीं। लड़की—छोटी होने के कारण—ससुराल-वालों ने विवाह के अवसर पर भेजी नहीं। बाद में पाँच वर्ष के बाद गौने में भेजा था। परन्तु बीच ही में चेचक से उसका रूप नष्ट हो चुका था। मुँह पर बड़े-बड़े दाग़ों के सिवा एक आँख भी जाती रही थी। उस अवसर पर मैंने केवल एक बार उसे देख पाया था। दुबारा देखने का साहस नहीं हुआ। रूप इतना अस्थिर है, इतना क्षणिक, उसी दिन जान सका। और तब से उसके प्रति मुझे कोई मोह नहीं रह गया।······बहुत बुलाने पर एक बार साहस करके उसे ले आने को जो गया भी, तो ससुर महोदय ने यह कह कर टाल दिया कि जिसे अपने खाने तक का सुभीता नहीं, वह स्त्री को क्या खिलायेगा ?

विपिन फिर कहने लगा—आप कहना चाहें, तो कह सकते हैं कि कुछ हो, उस लड़की का क्या दोष है ?—उसकी हत्या क्यों हो ? किन्तु तब मैं पूछूंगा, मेरा दोष क्या है ? इधर पन्द्रह वर्षों का उसका जीवन मैं नहीं जानता, कैसा है। जीवन की प्रत्यक्ष भूख पर विश्वास रखने वाला मैं यह स्वीकार नहीं कर

सकता कि मेरी जरूरत उसे नहीं है। रूप की अस्थिरता को बहुत पहले जान लेने वाला मैं, आज उसका लोभी रह भी नहीं गया। किन्तु आप जानते हैं, क्या मेरी इतनी सामर्थ्य है कि मैं उसको लाने के लिये फौजदारी करूँ, या अभियोग चलाऊँ? जीवन जैसा है, चल रहा है। जो कुछ होना है, होता रहेगा। मैं क्या कर सकता हूँ! मैं नहीं जानता कि मुझे कुछ करना है मैं उत्तरदायी नहीं हूँ।"

सुनकर शर्माजी स्तब्ध हो उठे। अन्त में बोले—सचमुच तुम्हारी समस्या सुनकर मुझे दुःख हुआ। फिर भी मैं सोचूँगा।

धूप ज्यादा चढ़ आने पर दोनों अपने-अपने घर चल दिये।

घर की ओर चलते हुए गिरधारी विपिन की इस समस्या पर विचार करने लगा। वह अभी अपने मकान पर पहुँचा ही था कि उसे ख्याल हो आया विनायक के लिए जल्दी कुछ करना है। वह सोचने लगा—मालती के साथ, अधिक समय व्यतीत करना ठीक नहीं हुआ। समय पर उसे अधिकार और नियन्त्रण रखना चाहिये था। उसके रूप के आकर्षण में पड़कर अपने निर्दिष्ट पथ का त्याग उसने क्यों किया? क्या उसके निकट रहकर वह अपने कार्यक्रम से बहक नहीं जाता? क्या उसको देखकर, उससे वार्तालाप करके, वह अपने भीतर किसी प्रकार की क्षिप्तता का अनुभव नहीं करता? उसकी सुवासित कुन्तलराशि को छूता और लपेटता हुआ वायु का झकोरा, उसके धुले और नये वस्त्रों की सरसराहट, उसकी मन्थर मादक पगध्वनि और उसके सुमन दुर्लभ हास-परिहास का सान्निध्य क्या कभी-कभी उसे विमुग्ध नहीं करता?

रेणु सामने थी। उसके केश बिखरे हुए थे। साड़ी भी वह ऐसी पहने हुई थी, जिसे अब धुलने जाना चाहिए था। एक बार उसकी ओर देखकर उसने पूछा—रज्जन ने दूध पिया?

"बहुत थोड़ा?"

"क्यों?"

"क्या बताऊँ, क्यों नहीं पीता? मैंने बहुत कुछ कहा, तो भी उसने कटोरा

र लिए पर तुमको आया है कि तुम उनकी माँ हो !"
माँ नहीं हूँ । मैं कोई नहीं हूँ । उनसे मेरा कोई नाता नहीं । पहले
। यहाँ आये और चले गये, उन्हीं में से यह भी है । मैं किसी से कुछ
नहीं चाहती । जीना है, इसलिए जी रही हूँ ।"

यह है हमारा गार्हस्थ्य जीवन !—एक झटके के साथ गिरधारी सोचने
। साथ का प्रबन्ध न हो सकने पर प्रेम की जमीन के आधार पर
उसने एक महाजन रामलाल से पाँच सौ रुपये ऋण स्वरूप लिये हैं।
का विश्वास है कि कैसे भी हो, वह अपने कर्तव्य क्षेत्र में अग्रसर बना है।
उस का जीवन में शक्ति है, वह रुकेगा नहीं, बढ़ता ही जायगा । परिणाम की
उसे चिन्ता नहीं है । किन्तु हमारे दाम्पत्य जीवन में वह जो विकृति देख
रहा है, वह उसे कैसे दूर करे ? कैसे वह उसे अपने लिये अनुकूल बनाये ?

रेणु नहाकर आयी थी और अपनी गीली धोती सुखाने के लिए अरगनी
पर टाँग रही थी—कि क्षुब्ध गिरधारी बोला—तो क्या इसका मतलब यह है
कि तुम मुझसे ऊब गयी हो ?—हमारे जीवन के साथ अब तुमको कोई
आकर्षण नहीं रह गया ? रञ्जन और मैं, यह मकान और इसकी चीजें—
यहाँ का कुछ भी तुमको किसी तरह की मिठास, आशा, संतोष और तृप्ति
नहीं देता ? अच्छा तो अब तुम्हीं बताओ रेणु, तुम मुझसे चाहती क्या
हो ?—तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ ? सच जानो, प्राण-पण से मैं उसे
करने की चेष्टा करूँगा । मैं साफ़ तौर से यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी
आकांक्षा क्या है ?—तुम मुझसे अब ऐसा विशेष क्या चाहती हो, जो
पास है, पर मैं तुमको दे नहीं रहा ?

रेणु ने एक बार गिरधारी के इस कथन को सुनकर उसके गु
म्लान मुख, शिथिल शरीर और उसकी आर्द्र वाणी को लक्ष किया ।
चुप हो रही । एक बार तो वह मन-ही-मन सोचने लगी—क्यों मैं
छेड़ दिया, क्यों मैंने इसका जी दुखाया ? ऐसा आदर्श पति जिसने
यह नारी भी अपने को दुखी समझे, मानवता का यह सरासर अ
मन में आया कि वह माफ़ी माँग ले और साफ़तौर से क

यह सब यों ही कह डाला, एक झोंक में आकर।—मुझे माफ कर दो।

वह सोचती रही, मन-ही-मन। कोई उत्तर उसने नहीं दिया।

धोती टाँगकर, बाल झाड़ती हुई, वह रज्जन के पासवाली कोठरी मे खड़ी थी। एक बड़ा दर्पण उसके सामने था। उसमें अपने मुख, उसकी नष्टकांति को, शिथिल यौवन और दुर्बल जंघाओ को देख-देख कर बार-बार अपने आपसे ही उलझ रही थी।

—क्यों मैं ऐसा करूँ?—क्यो मैं उनसे माफ़ी माँगू? क्या यह सच नहीं है कि मेरे हृदय के भीतर एक भट्टी सुलग रही है? क्या इसमें कोई सदेह है कि मैंने इनके पीछे अपनी समस्त महत्वाकांक्षाओ को मिट्टी में मिला दिया है? कुछ-न-कुछ तो मैं हो ही सकती थी। मैं कविता नही लिख सकती थी? कहानी-लेखिका होना मेरे लिए कौन मुश्किल था! आज जो यश मालती पा रही है, क्या मैं उसकी अधिकारिणी नही हो सकती थी? वय में वह मुझसे सिर्फ दो वर्ष छोटी है। किन्तु मेरे और उसके बीच खाई कितनी गहरी है! वह पास आ जाती है, तो उसे छाती से लगा लेने को जी आतुर हो उठता है। अपनी एक-एक भाव-भंगिमा से वह कितना आकृष्ट करती है! मेरा निर्माण—क्या ये—ऐसे उत्तम ढग से नही कर सकते थे कि घर की इस चाहरदीवारी के बाहर भी मैं आ-जा सकती? इन्ही दीवालो के भीतर निरन्तर बन्द रखकर इन्होंने मुझे क्या दिया? और अब, जब मैं उत्तरोत्तर मरण की ओर जा रही हूँ, ये पूछते है—मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ!

गिरधारी देर तक रज्जन के पास बैठा रहा। उसने उसे थोड़ा-सा दूध भी पिलाया, उसके सिर पर हाथ फेरा। उसे खुश करने के लिए चिबिल्लेपन से भरी बातें भी कीं। किन्तु आज इन सब बातो में उसका जी लग नही रहा था। वह बार-बार सोचता रहा, आज रेणु उदास है। उसने उससे पूछा भी कि वह उसके लिए क्या करें; किन्तु वह कुछ बोली नही।

इसी समय आ गया लोचन, तो गिरधारी ने कहा—"अब तुम यहाँ बैठो लोचन, तो मैं अपना काम देखूँ" और वहाँ से उठकर वह पहले अपनी बैठक में आया; फिर रसोईखाने मे, जहाँ रेणु बैठी शाक छौंक रही थी। वही द्वार

"और तिस पर तुमको दावा है कि तुम उसकी माँ हो!"

"मैं माँ नहीं हूँ। मैं कोई नहीं हूँ। उससे मेरा कोई नाता नहीं। पहले वाले जो बच्चे आये और चले गये, उन्हीं में से यह भी है। मैं किसी से कुछ आशा नहीं करती। जीना है, इसलिए जी रही हूँ।"

यह है हमारा गार्हस्थ्य जीवन!—एक झटके के साथ गिरधारी सोचने लगा। रुपये का प्रबन्ध न हो सकने पर प्रेस की मशीन के आधार पर कल उसने एक महाजन रामलाल से पाँच सो रुपये ऋण स्वरूप लिये हैं। उसको सन्तोष है कि कैसे भी हो, वह अपने कर्तव्य क्षेत्र में अग्रसर बना है। जब तक जीवन में गति है, वह रुकेगा नहीं, बढ़ता ही जायेगा। परिणाम की उसे चिन्ता नहीं है। किन्तु हमारे दाम्पत्य जीवन में वह जो विकृति देख पड़ती है, वह उसे कैसे दूर करे? कैसे वह उसे अपने लिये अनुकूल बनाये?

रेणु नहाकर आयी थी और अपनी गीली धोती सुखाने के लिए अरगनी में टाँग रही थी—कि क्षुब्ध गिरधारी बोला—तो क्या इसका मतलब यह है कि तुम मुझसे ऊब गयी हो?—हमारे जीवन के साथ अब तुमको कोई आकर्षण नहीं रह गया? रज्जन और मैं, यह मकान और इसकी चीजें—यहाँ का कुछ भी तुमको किसी तरह की मिठास, आशा, संतोष और तृप्ति नहीं देता? अच्छा तो अब तुम्हीं बताओ रेणु, तुम मुझसे चाहती क्या हो?—तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ? सच जानो, प्राण-पण से मैं उसे पूर्ण करने की चेष्टा करूँगा। मैं साफ़ तौर से यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी आकांक्षा क्या हैं?—तुम मुझसे अब ऐसा विशेष क्या चाहती हो, जो मेरे पास है, पर मैं तुमको दे नहीं रहा?

रेणु ने एक बार गिरधारी के इस कथन को सुनकर उसके गुरुगम्भीर म्लान मुख, शिथिल शरीर और उसकी आर्द्र वाणी को लक्ष किया और वह चुप हो रही। एक बार तो वह मन-ही-मन सोचने लगी—क्यों मैंने इसको छेड़ दिया, क्यों मैंने इसका जी दुखाया? ऐसा आदर्श पति जिसने पाया हो, वह नारी भी अपने को दुखी समझे, मानवता का यह सरासर अपमान है। उसके मन में आया कि वह माफ़ी माँग ले और साफ़तौर से कह दे कि मैंने

यह सच यों ही कह डाला, एक झोंक में आकर।—मुझे माफ़ कर दो।

वह सोचती रही, मन-ही-मन। कोई उत्तर उसने नहीं दिया।

धोती टाँगकर, बाल झाड़ती हुई, वह रज्जन के पासवाली कोठरी में खड़ी थी। एक बड़ा दर्पण उसके सामने था। उसमें अपने मुख, उसकी नष्टकांति को, शिथिल यौवन और दुर्बल जंघाओं को देख-देख कर बार-बार अपने आपसे ही उलझ रही थी।

—क्यों मैं ऐसा कहूँ?—क्यों मैं उनसे माफी माँगू? क्या यह सच नहीं है कि मेरे हृदय के भीतर एक भट्टी सुलग रही है? क्या इसमें कोई संदेह है कि मैंने इनके पीछे अपनी समस्त महत्वाकाक्षाओं को मिट्टी में मिला दिया है? कुछ-न-कुछ तो मैं हो ही सकती थी। मैं कविता नहीं लिख सकती थी? कहानी-लेखिका होना मेरे लिए कौन मुश्किल था! आज जो यश मालती पा रही है, क्या मैं उसकी अधिकारिणी नहीं हो सकती थी? वय में वह मुझसे सिर्फ दो वर्ष छोटी है। किन्तु मेरे और उसके बीच खाई कितनी गहरी है! वह पास आ जाती है, तो उसे छाती से लगा लेने को जी आतुर हो उठता है। अपनी एक-एक भाव-भंगिमा से वह कितना आकृष्ट करती है! मेरा निर्माण—क्या ये—ऐसे उत्तम ढग से नहीं कर सकते थे कि घर की इस चाहरदीवारी के बाहर भी मैं आ-जा सकती? इन्हीं दीवालों के भीतर निरन्तर बन्द रखकर इन्होंने मुझे क्या दिया? और अब, जब मैं उत्तरोत्तर मरण की ओर जा रही हूँ, ये पूछते हैं—मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ!

गिरधारी देर तक रज्जन के पास बैठा रहा। उसने उसे थोड़ा-सा दूध भी पिलाया, उसके सिर पर हाथ फेरा। उसे खुश करने के लिए विविल्ले-पन से भरी बातें भी कीं। किन्तु आज इन सब बातों में उसका जी लग नहीं रहा था। वह बार-बार सोचता रहा, आज रेणु उदास है। उसने उससे पूछा भी कि वह उनके लिए क्या करें; किन्तु वह कुछ बोली नहीं।

इसी समय आ गया लोचन, तो गिरधारी ने कहा—"अब तुम यहाँ बैठो लोचन, तो मैं अपना काम देखूँ" और वहाँ से उठकर वह पहले अपनी बैठक में आया; फिर रसोईखाने में, जहाँ रेणु बैठी शाक छौंक रही थी। वहीं द्वार

पर वह खड़ा हो गया। रेणु ने एक वार उसकी ओर देखा भी, किन्तु वह वोली नहीं। पसीने की बूंदें उसके मुख पर जमी हुई थीं। चूल्हा फूंकते हुए उसकी आँखें लाल हो आयी थीं।

गिरधारी सोचने लगा—अगर वह एक रसोइया रख सकता, तो रेणु को थोड़ा आराम मिल सकता था। लोचन अटके पर जलपान-भर के लिए एक-आध चीज बना लेता है। लेकिन खाना तो वह बना नहीं सकता।

तब और कुछ न कहकर उसने कह दिया—कितनी वार कह चुका हूँ, लोचन से खाना वनवा लिया करो। शुरू-शुरू में कुछ दिनों तक उसको बताना पड़ेगा। उसके वाद वह काम लायक वनाने लगेगा। तव इस तरह की तकलीफ़ तो न होगी।

म्लानमुख रेणु वोली—अपना काम क्यों नहीं देखते जाकर ? मेरी तकलीफ़ की ऐसी वहुत परवा न है तुमको !

इस कथन में एक तीखापन है, एक चोट; गिरधारी ने अनुभव तो किया; फिर भी पहले वह चुप बना रहा। लेकिन फिर उसका जी न माना। वह वदन पर कमीज डाले हुए था। उन्हीं पैरों चौके के भीतर चला गया। रेणु के पास जाकर उसने लोटे में भरा पानी उठाया और जलते चूल्हे में उंडेलते हुए कह दिया—खाने की ऐसी वहुत परवा मैं नहीं करता रेणु। समझती हो न ? मैं भूखा रह सकता हूँ। मैं मर भी सकता हूँ। भोग से मुझे इतना अधिक मोह नहीं है। तुमने समझ क्या रक्खा है ?

रेणु ने कातर दृष्टि से गिरधारी की ओर देखा, तो वह सहम गयी। वह उठ खड़ी हुई। उसके पैर कांप उठे। वह कुछ कहना चाहती थी; तो भी उसने कुछ कहा नहीं।

गिरधारी यथास्थान खड़ा रहा। किन्तु तव रेणु रसोई के वाहर जाती हुई कहने लगी—तुम क्यों मरोगे ? मैं जो मरने को तैयार हूँ।

वात पूरी करती और आंसू पोंछती हुई रेणु रज्जन की ओर चल दी।

अव गिरधारी की वारी थी। वह सोचने लगा—क्या सचमुच दोष मेरा है ? उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था। भृकुटियां और होंठ फड़क उठते थे।

किन्तु वहाँ और कितनी देर तक वह खड़ा रहता ? फिर वह ऐसा स्थान भी न था। अतएव चप्पल पहनकर वह वहाँ से चल दिया। लेकिन अन्दर अपने कमरे की ओर नहीं, बाहर। इस बार उसके पैर काँप रहे थे, जब वह घर के बाहर निकल रहा था।

ग्यारह

जीवन में मनुष्य को शान्ति नहीं है। उसके चारों ओर दुर्निवार दुस्संयोगों, दुर्वृत्तियों और दुर्घटनाओं का जाल बिछा हुआ है। कहीं आगे पैर रखने के लिए जगह नहीं है। अगर वह उनका रोना रोने बैठे, तो चाहे उसका जीवन ही क्यों न समाप्त हो जाय, किन्तु उलहनों, शिकायतों और अभावों का अन्त होना असम्भव है।

लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य के जीवन में शान्ति और सुख नाम की चीज है ही नहीं। है अवश्य, किन्तु हमारे समक्ष वह उसी रूप में आती है, जैसे जुगनू पेड़-पौधों और झाड़ियों में छिपी रहती है और कभी-कभी चमक उठती है। अचेतन, भाव-प्रवण, भ्रान्त मनुष्य प्राय. उनके भुलावे में आकर कर्तव्य-कर्म से च्युत हो-होकर अपनी गति खो बैठता है। वीर वह है जो इन भ्रान्तियों और विकृतियों से अपने को ऊपर रखकर चले और आगे बढ़ता चला जाय। दुस्संयोगों और दुर्घटनाओं के जाल में पड़कर जो अपना व्यक्तित्व खो न दे, विवेक के कठोर अवलम्ब से जो अपने को इतना दृढ़ और कर्तव्य-रत बनाये रक्खे कि जीवन की मोहाच्छन्न विवशताएँ उसके पास फटकने तक न पायें।

किन्तु इसके लिए उसमें होना चाहिए सन्तुलन।

शर्माजी ने कार्यालय में पैर रक्खा ही था कि देखते क्या है विज्ञापन-विभाग के क्लर्क महाशय टेबिल पर पैर फैलाये कुरसी की पीठ के सहारे

क़राव-क़रीव लेटे हुए हैं। आँखें झपक गयी हैं और वे इतमीनान के साथ खर्राटे भर रहे हैं! फिर भी चुपचाप शर्म्माजी अपने कमरे में चले गये। टेविल पर डाक पड़ी हुई थी। एक-एक करके वे सारी चिट्ठियाँ देखने लगे। एक ग्राहक ने लिखा था—

"प्रिय महाशय, मैंने आपको सूचित किया था कि पत्र आप मेरे यहाँ के पते से न भेजकर मेरे गाँव की लाइब्रेरी में भेजें। वहाँ गाँव के लोग उसे पढ़कर लाभ उठायेंगे। यहाँ मुझे उतनी आवश्यकता नहीं है। लेकिन देखता हूँ, आपने मेरे निवेदन पर ध्यान नहीं दिया।"

एक विज्ञापन-दाता लिखते हैं—

"महाशय जी" उस दिन घर पर आपसे जो बातचीत हुई थी, उसके अनुसार आपने बिल नहीं बनवाया। जो कुछ सेवा मैं आपकी कर सकता था सो मैंने कर ही दी थी। आप जानते हैं, आजकल हमारी आमदनी घट गयी है। अन्यथा जैसा आप चाहते थे, वैसा भी हो जाता। लेकिन आप रिया-यत करवा दीजिये, तो बाद में हम आपकी कुछ सेवा और कर देंगे।

"माफ़ कीजियेगा; घर का पता मैं भूल गया। इसलिए विवश होकर आपको आफ़िस के पते से पत्र लिखना पड़ा।"

और शर्म्माजी ने लिफ़ाफे पर लिखा जो पता देखा, वह व्यक्तिगत नाम से था। इसके सिवा कार्यालय का C/o. भी उसमें स्पष्ट रूप से लिखा था। तब उन्हें मालूम हुआ कि भूल से ही उन्होंने उसे खोल डाला है। वास्तव में वह व्यक्तिगत पत्र है; यद्यपि उसका विषय कार्यालय के प्रवन्ध से विशेष सम्वन्ध रखता है।

एक देवीजी ने लिखा था—

"श्रीसम्पादक जी,

आप तो अपने पत्र में राजनीति विषय के ही लेख देते हैं, कुछ हम लोगों के वारे में भी लिखा कीजिए। आजकल लल्ला के बावूजी घर पर सिर्फ खाना-खाने आते हैं। रात को गोदाम में ही सो रहते हैं। मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिससे उनको नाराज़ होने का अवसर मिलता। पंडितजी—मैं आप-

को क्या लिखूँ—बतलाइये, मेरा क्या दोष है ? मैंने महात्मा गांधी को भी पत्र भेजा है। मेरा तो यही निवेदन है कि मेरा दोष हो तो आप मुझे समझाइये। मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। अगर उन्होंने मेरी ओर ध्यान न दिया, तो मैं प्राण त्याग दूँगी।…मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा में रहूँगी…।"

अन्त में चिट्ठियाँ छांटने लगे। किस-किस को पढ़ा जाय ! फिर भी ऐसा एक पत्र उनके हाथ में पड़ ही गया, जिसे बिना पढ़े वे रह न सके। यह पत्र एक माँ का था। उसके शब्द इस प्रकार थे—

"श्रीमान् पंडितजी,

मुझे दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अब आप अपना पत्र मेरे यहाँ भेजना बन्द कर दीजिए। उसे मेरा पुत्र निरंजन पढ़ा करता था।"

उसकी कथा मैं आपको क्या बताऊँ ! जब वह तीन वर्ष का था, तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। घर पर सिलाई का काम करके मैंने उसका पालन-पोषण किया और बड़ी कठिनाइयों से उसे पढ़ाया। यहाँ तक कि मैंने अपने बदन पर आभूषण के नाम पर एक छल्ला तक नहीं रक्खा ! जब वह इस योग्य हुआ कि कुछ पैदा करे, कहीं किसी शहर में जाकर नौकरी करे या किसी धन्धे में लगे, तो नातेदारों ने घेर-घारकर उसका ब्याह करवा दिया। बहू घर में आ गयी। सुन्दर और सुशील। मैंने सोचा था, नयी उम्र है, अभी समझ कम है। गृहस्थी का बोझ सर पर आते ही, अपने आप, कुछ-न-कुछ करेगा ही। पर मेरा यह सोचना व्यर्थ हो गया। दिन भर वह पड़ा-पड़ा सोया करता। हर समय आलस्य उसे घेरे रहता। पंडितजी, आप जानते हैं, माँ का हृदय कैसा ममतामय होता है। फिर उन दिनों बहू नयी-नयी आयी हुई थी, मैं कुछ बोली नहीं। मैंने सोचा, जब घर में खाने को न रहेगा, तब तो उसकी आँखें खुलेंगी। अन्त में वह दिन भी आ गया। तब मैंने खुलकर कह डाला, जो कुछ भी मैं कह सकती थी। मैंने कहा—अगर मैं ऐसा जानती कि तू इतना निकम्मा, विषयी और बेशर्म निकलेगा कि मेरी इस अवस्था में भी—जब मुझे आराम से भगवत्-भजन करना चाहिए—मेरी मेहनत-मजदूरी का भरोसा करेगा, उसी पर आश्रित रहकर दिन काटेगा, तो

क़रीब-क़रीब लेटे हुए हैं। आँखें झपक गयी हैं और वे इतमीनान के साथ खर्राटे भर रहे हैं! फिर भी चुपचाप शर्म्माजी अपने कमरे में चले गये। टेबिल पर डाक पड़ी हुई थी। एक-एक करके वे सारी चिट्ठियाँ देखने लगे। एक ग्राहक ने लिखा था—

"प्रिय महाशय, मैंने आपको सूचित किया था कि पत्र आप मेरे यहाँ के पते से न भेजकर मेरे गाँव की लाइब्रेरी में भेजें। वहां गाँव के लोग उसे पढ़कर लाभ उठायेंगे। यहां मुझे उतनी आवश्यकता नहीं है। लेकिन देखता हूँ, आपने मेरे निवेदन पर ध्यान नहीं दिया।"

एक विज्ञापन-दाता लिखते हैं—

"महाशय जी" उस दिन घर पर आपसे जो बातचीत हुई थी, उसके अनुसार आपने बिल नहीं बनवाया। जो कुछ सेवा मैं आपकी कर सकता था सो मैंने कर ही दी थी। आप जानते हैं, आजकल हमारी आमदनी घट गयी है। अन्यथा जैसा आप चाहते थे, वैसा भी हो जाता। लेकिन आप रियायत करवा दीजिये, तो बाद में हम आपकी कुछ सेवा और कर देंगे।

"माफ़ कीजियेगा; घर का पता मैं भूल गया। इसलिए विवश होकर आपको आफ़िस के पते से पत्र लिखना पड़ा।"

और शर्म्माजी ने लिफ़ाफे पर लिखा जो पता देखा, वह व्यक्तिगत नाम से था। इसके सिवा कार्यालय का C/o. भी उसमें स्पष्ट रूप से लिखा था। तब उन्हें मालूम हुआ कि भूल से ही उन्होंने उसे खोल डाला है। वास्तव में वह व्यक्तिगत पत्र है; यद्यपि उसका विषय कार्यालय के प्रबन्ध से विशेष सम्बन्ध रखता है।

एक देवीजी ने लिखा था—

"श्रीसम्पादक जी,

आप तो अपने पत्र में राजनीति विषय के ही लेख देते हैं, कुछ हम लोगों के बारे में भी लिखा कीजिए। आजकल लल्ला के बाबूजी घर पर सिर्फ खाना-खाने आते हैं। रात को गोदाम में ही सो रहते हैं। मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिससे उनको नाराज होने का अवसर मिलता। पंडितजी—मैं आप-

को क्या लिखूं—बतलाइये, मेरा क्या दोष है ? मैंने महात्मा गाँधी को भी पत्र भेजा है। मेरा तो यही निवेदन है कि मेरा दोष हो तो आप मुझे समझाइये। मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। अगर उन्होंने मेरी ओर ध्यान न दिया, तो मैं प्राण त्याग दूंगी।...मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा में रहूँगी...।"

अन्त में चिट्ठियाँ छाँटने लगे। किस-किस को पढ़ा जाय ! फिर भी ऐसा एक पत्र उनके हाथ में पड़ ही गया, जिसे बिना पढ़े वे रह न सके। वह पत्र एक माँ का था। उसके शब्द इस प्रकार थे—

"श्रीमान् पंडितजी,

मुझे दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अब आप अपना पत्र मेरे यहाँ भेजना बन्द कर दीजिए। उसे मेरा पुत्र निरंजन पढ़ा करता था।"

उसकी कथा मैं आपको क्या बताऊँ ! जब वह तीन वर्ष का था, तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। घर पर सिलाई का काम करके मैंने उसका पालन-पोषण किया और बड़ी कठिनाइयों से उसे पढ़ाया। यहाँ तक कि मैंने अपने बदन पर आभूषण के नाम पर एक छल्ला तक नहीं रक्खा ! जब वह इस योग्य हुआ कि कुछ पैदा करे, कहीं किसी शहर में जाकर नौकरी करे या किसी धन्धे में लगे, तो नातेदारों ने घेर-घारकर उसका ब्याह करवा दिया। बहू घर में आ गयी। सुन्दर और सुशील। मैंने सोचा था, नयी उम्र है, अभी समझ कम है। गृहस्थी का बोझ सर पर आते ही, अपने आप, कुछ-न-कुछ करेगा ही। पर मेरा यह सोचना व्यर्थ हो गया। दिन भर वह पड़ा-पड़ा सोया करता। हर समय आलस्य उसे घेरे रहता। पंडितजी, आप जानते हैं, माँ का हृदय कैसा ममतामय होता है। फिर उन दिनों बहू नयी-नयी आयी हुई थी, मैं कुछ बोली नहीं। मैंने सोचा, जब घर में खाने को न रहेगा, तब तो उसकी आँखें खुलेंगी। अन्त में वह दिन भी आ गया। तब मैंने खुलकर कह डाला, जो कुछ भी मैं कह सकती थी। मैंने कहा—अगर मैं ऐसा जानती कि तू इतना निकम्मा, विषयी और बेशर्म निकलेगा कि मेरी इस अवस्था में भी—जब मुझे आराम से भगवत्-भजन करना चाहिए—मेरी मेहनत-मज़दूरी का भरोसा करेगा, उसी पर आश्रित रहकर दिन काटेगा, तो

क़रीब-क़रीब लेटे हुए हैं। आँखें झपक गयी हैं और वे इतमीनान के साथ खर्राटे भर रहे हैं! फिर भी चुपचाप शर्म्माजी अपने कमरे में चले गये। टेबिल पर डाक पड़ी हुई थी। एक-एक करके वे सारी चिट्ठियाँ देखने लगे। एक ग्राहक ने लिखा था—

"प्रिय महाशय, मैंने आपको सूचित किया था कि पत्र आप मेरे यहाँ के पते से न भेजकर मेरे गाँव की लाइब्रेरी में भेजें। वहाँ गाँव के लोग उसे पढ़कर लाभ उठायेंगे। यहाँ मुझे उतनी आवश्यकता नहीं है। लेकिन देखता हूँ, आपने मेरे निवेदन पर ध्यान नहीं दिया।"

एक विज्ञापन-दाता लिखते हैं—

"महाशय जी" उस दिन घर पर आपसे जो बातचीत हुई थी, उसके अनुसार आपने बिल नहीं बनवाया। जो कुछ सेवा मैं आपकी कर सकता था सो मैंने कर ही दी थी। आप जानते हैं, आजकल हमारी आमदनी घट गयी है। अन्यथा जैसा आप चाहते थे, वैसा भी हो जाता। लेकिन आप रियायत करवा दीजिये, तो बाद में हम आपकी कुछ सेवा और कर देंगे।

"माफ़ कीजियेगा; घर का पता मैं भूल गया। इसलिए विवश होकर आपको आफ़िस के पते से पत्र लिखना पड़ा।"

और शर्म्माजी ने लिफ़ाफ़े पर लिखा जो पता देखा, वह व्यक्तिगत नाम से था। इसके सिवा कार्यालय का C/o. भी उसमें स्पष्ट रूप से लिखा था। तब उन्हें मालूम हुआ कि भूल से ही उन्होंने उसे खोल डाला है। वास्तव में वह व्यक्तिगत पत्र है; यद्यपि उसका विषय कार्यालय के प्रबन्ध से विशेष सम्बन्ध रखता है।

एक देवीजी ने लिखा था—

"श्रीसम्पादक जी,

आप तो अपने पत्र में राजनीति विषय के ही लेख देते हैं, कुछ हम लोगों के बारे में भी लिखा कीजिए। आजकल लल्ला के बाबूजी घर पर सिर्फ खाना-खाने आते हैं। रात को गोदाम में ही सो रहते हैं। मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिससे उनको नाराज़ होने का अवसर मिलता। पंडितजी—मैं आप-

को क्या लिखूं—बतलाइये, मेरा क्या दोष है ? मैंने महात्मा गाँधी को भी पत्र भेजा है। मेरा तो यही निवेदन है कि मेरा दोष हो तो आप मुझे समझाइये। मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। अगर उन्होंने मेरी ओर ध्यान न दिया, तो मैं प्राण त्याग दूँगी।···मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा में रहूँगी···।"

अन्त में चिट्ठियाँ छाँटने लगे। किस-किस को पढ़ा जाय ! फिर भी ऐसा एक पत्र उनके हाथ में पड़ ही गया, जिसे बिना पढ़े वे रह न सके। वह पत्र एक माँ का था। उसके शब्द इस प्रकार थे—

"श्रीमान् पंडितजी,

मुझे दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अब आप अपना पत्र मेरे यहाँ भेजना बन्द कर दीजिए। उसे मेरा पुत्र निरंजन पढ़ा करता था।"

उसकी कथा मैं आपको क्या बताऊँ ! जब वह तीन वर्ष का था, तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। घर पर सिलाई का काम करके मैंने उसका पालन-पोषण किया और बड़ी कठिनाइयों से उसे पढ़ाया। यहाँ तक कि मैंने अपने बदन पर आभूषण के नाम पर एक छल्ला तक नहीं रक्खा ! जब वह इस योग्य हुआ कि कुछ पैदा करे, कहीं किसी शहर में जाकर नौकरी करे या किसी धन्धे में लगे, तो नातेदारों ने घेर-घारकर उसका ब्याह करवा दिया। बहू घर में आ गयी। सुन्दर और सुशील। मैंने सोचा था, नयी उम्र है, अभी समझ कम है। गृहस्थी का बोझ सर पर आते ही, अपने आप, कुछ-न-कुछ करेगा ही। पर मेरा यह सोचना व्यर्थ हो गया। दिन भर वह पड़ा-पड़ा सोया करता। हर समय आलस्य उसे घेरे रहता। पंडितजी, आप जानते हैं, माँ का हृदय कैसा ममतामय होता है। फिर उन दिनों बहू नयी-नयी आयी हुई थी, मैं कुछ बोली नहीं। मैंने सोचा, जब घर में खाने को न रहेगा, तब तो उसकी आँखें खुलेंगी। अन्त में वह दिन भी आ गया। तब मैंने खुलकर कह डाला, जो कुछ भी मैं कह सकती थी। मैंने कहा—अगर मैं ऐसा जानती कि तू इतना निकम्मा, विषयी और बेशर्म निकलेगा कि मेरी इस अवस्था में भी—जब मुझे आराम से भगवत्-भजन करना चाहिए—मेरी मेहनत-मजदूरी का भरोसा करेगा, उसी पर आश्रित रहकर दिन काटेगा तो

त्र जब मैं पढ़ने को कहती हूँ, तो वह रो देती है! प्रश्न है कि कोरे उप-देशों के द्वारा क्या मैं उसको संतोष दे सकती हूँ? पंडितजी, नग्न यथार्थ-ताओं के सम्मुख कोरी बातें कैसे टिकेंगी? कितने दिन टिक सकती हैं? फिर देहात में!"

"क्या आप को पता है कि देहात में तथाकथित नीति, धर्म और संस्कृति का विरोध लेकर, नवयुग का हिमायती व्यक्ति, न तो सुख संतोष की नींद सं सकता है, न मानवोचित सम्मान का अधिकारी ही बन सकता है। तब पंडितजी, इस देहात में भी एक बार क्रांति की आग लगवा दीजिए। यहाँ की सारी सत्ता—चाहे वह नैतिक हो अथवा आर्थिक—उन्हीं लोगों के हाथ में हैं, जो पैसे वाले, महाजन अथवा ज़मींदार हैं।—नित्य जन-साधारण का शोषण करना जिनका पेशा है। मनुष्यता की रक्षा कीजिये पंडितजी! जीवन के सत्य और मांगलिक स्वरूप को तो न भूलिये!"

"और मैं आपको क्या लिखूं? मेरा निरंजन कहाँ है, मुझे बताइये। मैं आपका अखबार अब सीधे उसी के पास भेजना चाहती हूँ। यहाँ कौन उसे पढ़ेगा!"

यह पत्र अधूरा है। इसके नीचे हस्ताक्षर उस माँ के नहीं हैं। हैं उ गाँव की पाठशाला के एक शिक्षक के, जिसने मक्खियाँ भिनकती हुई उस की लाश को देखा है; जिसने अफ़ीम खाकर इसलिए आत्मघात कर लि कि उसकी वह नववधू एक दिन रात को सोते समय चारपाई-सहित उठवा गायब कर दी गयी! शान्ति और व्यवस्था के इस महाराज्य में!!

शिक्षक ने ही अन्त में इतना संवाद उसमें और जोड़ दिया है!

बारह

विवेकशील, चिन्तक, विचारक और जीवन-संघर्ष से घिरे हुए व्यक्ति साधारण जीवन-क्रम में ही नहीं, कार्यक्षेत्र में भी प्रायः असफल रहते हैं

लिए नहीं कि, वे कार्य की व्यवस्था करना नहीं जानते। इसलिए भी नहीं कि वे सब के सब कायर और-कभी-कभी महाक्रोधी होते हैं। वरन् इसलिए कि विचारों के मन्थन और निष्कर्ष-चिन्तन को वे वास्तविक कार्य की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं। वे व्यवहारिक नहीं होते और दूसरों से प्रायः अधिक आशा कर लेते हैं। विश्वास के क्षेत्र में वे बच्चे, आशा की दृष्टि से नारी और भविष्य-निर्माण की दृष्टि से वृद्धवणिक होते हैं।

'संजीवन' कार्यालय के और तो सब कर्मचारी चले गये हैं, केवल एक बुड्ढा चपरासी रामदीन हॉल में दीवार से पीठ सटाये उस कमरे के प्रवेशद्वार पर बैठा ऊँघ रहा है, जिसके अन्दर गिरधारी विराजमान है। हॉल में बिजली की एक बत्ती जल रही है। बाहर से आने के लिए जो द्वार पड़ता है उनके किवाड़ लगे हुए है। केवल भीतर ओर वाली खिड़की खुली हुई है। एक चूहा कभी-कभी अपने बिल से निकलकर पहले इधर-उधर कुछ देखता और फिर चट एक ओर भागता हुआ देख पड़ता है।

शर्म्माजी सम्पादकीय विभाग में अकेले चुपचाप एक आराम-कुर्सी पर लेटे हुए हैं। उनके हाथ में जो पुस्तक हैं उसे पढ़ने की वे व्यर्थ चेष्टा कर रहे हैं। कुछ आँधियाँ उनके भीतर आ जा रही हैं। अतः वे पढ़ते हुए भी वास्तव में कुछ पढ़ नहीं पाते। कभी पुस्तक आराम-कुर्सी की पटिया पर रखकर उठते और कमरे में टहलने लगते हैं, कभी खुली खिडकी से प्रकाश की ओर देखते हैं और फिर पुस्तक पढ़ने में लग जाते हैं।

इसी समय विनायक के साथ आ गयी मालती। अभिवादन के पश्चात् दोनों कुरसियों पर बैठ गये। विनायक ने देखा, शर्म्माजी की मुद्रा अत्यधिक गम्भीर है। उधर मालती ने लक्ष्य किया, आज शर्म्माजी ने उत्साह के साथ यह नहीं कहा कि आओ, बैठो। वह रेणु से मिलकर आयी थी। उसे पता था कि आज ये महाशय उससे लड़कर आये हैं। तब उसी ने मौन भंग करते हुए कहा—क्या हाल-चाल है?

विनायक की दृष्टि इस समय मालती पर थी। उसके मस्तक, होठों और कपोलो पर छाये-छितराये पसीने की बूँदों को, जो पंखे की हवा पाकर सूखते

जा रहे थे, वह मनोयोग से देख रहा था।

शर्म्माजी जैसे खड़े थे, वैसे ही खड़े रहे। चश्मे के लैंसों को रूमाल से साफ़ करके उसे कानों पर चढ़ाते हुए वे बोले—हाल-चाल यह है कि पूंजी के अभाव में कार्यालय की व्यवस्था इतनी अधिक बिगड़ गयी है कि निकट भविष्य में किसी भी दिन 'संजीवन' का निकलना असम्भव हो जायगा।

"माफ़ कीजियेगा, जो लोग व्यवस्था नहीं कर सकते, वे अपने जीवन में" गम्भीरतापूर्वक विनायक बोला—कभी सफल हो नहीं सकते। उनकी आशाएँ कभी पूरी नहीं होतीं ; संसार के लिए वे एक उलाहना मात्र छोड़ जाते हैं—उस मरीज़ का-सा, जिसका बदन सड़ गया होता है, किन्तु जो अन्तिम साँस तक यही चिल्लाता रहता है कि इन मक्खियों ने तो मुझको खा डाला !

सुनकर शर्म्माजी पुनः आराम कुरसी पर पूर्ववत् बैठ गये। कुछ बोले ।

विनायक के इस कथन को सुनकर मालती कुछ अस्तव्यस्त हुई। वह जानती थी कि वे आजकल बेकार हैं। वह यह भी जानती थी कि अपने स्वभाव की उग्रता और स्पष्टवादिता के कारण कहीं उनका टिकना भी दुष्कर ही है। अतएव वह बोल उठी—यह तो उसी तरह की बात हुई, जैसे कोई तन्दुरुस्त भिखारी यह कहे कि जो लोग चन्दा माँगते हैं, वे उन अपाहिजों के समान हैं, जो अपने पुराने पापों के कारण कोढ़ी, लूले और लंगड़े हो गये हैं और जिन्हें संसार में रहने का कोई अधिकार नहीं है।

पर एक निर्विकार शान्ति थी, उनकी वाणी में चेतना का सौष्ठव।—"अपनी गम्भीर आलोचनाओं को सुनकर शान्त रहना ही श्रेयस्कर है मालती। मुझे विनायकजी के कथन के प्रकार से अप्रीति हो सकती है, किन्तु उनके आधार-भूत विचारों का मैं आदर करता हूँ।"

शर्म्माजी की बात सुनकर विनायक फिर मालती की ओर देखने लगा। मालती बोली—

"किन्तु सिद्धान्तों के प्रतिपादन में व्यक्तिगत आक्षेप तो सदा असंगति और तर्क-हीनता ही प्रकट करते हैं।"

"किन्तु उत्तरों के आधार प्रकट रूप में व्यक्ति को समेटते हुए भी मूलतः उन प्रवृत्तियों का ही स्पष्टीकरण करते हैं, जिन्हें अपरिपक्व मस्तिष्कों की विकृतियाँ जन्म देती हैं।"

"आप तो सदा किताबी भाषा में उत्तर देते हैं।"

"क्योंकि आप उन्हें साधारण रूप से समझ पाने में अटकती हैं।"

वार्तालाप के स्तर को इस तल पर आया जान मन्द और शान्त मुसकराहट के साथ शर्म्माजी इसी क्षण बोल उठे—अच्छा हां, आप लोग मूल विषय पर आ जायँ।

"लेकिन उससे भी पूर्व मेरी प्रार्थना है कि आप घर चलें। भाभी ने अभी तक खाना नहीं खाया।" मालती बोली।

आश्चर्य के साथ विनायक ने पूछा—क्यों ? ऐसी क्या बात है ?

मालती मुसकराने लगी। शर्म्माजी भी थोड़े अस्त-व्यस्त हुए। बोले—कोई ऐसी विशेष बात नहीं है, जिस पर यहाँ बहस करने की आवश्यकता हो।

मालती यों चाहे कुछ कहती भी, पर अब उसने इस विषय में चुप रहना ही उचित समझा।

इसी समय शर्म्माजी बोले—आज मुझे दो कर्मचारियों को निकाल देना पड़ा।

"क्यों ?" विनायक ने पूछा।

शर्म्माजी ने कहा—

एक का अपराध यह था कि वह आये हुए अनेक पत्रों में से छाँटकर दो ार रख लेता और शेष पत्रों को,बिना उन पर किसी तरह की कारंवाई किये ुपचाप फाड़कर फेंक देता। पहले तो उसने अपराध स्वीकार ही नहीं किया। ाद में जाँच करने पर जब उस पर अपराध साबित हो गया, तो जानते हैं ासने क्या उत्तर दिया ?

मालती और विनायक उत्सुकता से गिरधारी की ओर देखते रहे।

तब शर्म्माजी बोले—उसने कहा, ये लोग यों ही शिकायत किया करते हैं। ऐसे साधारण पत्रों पर ध्यान देना व्यर्थ है। फिर जब काम अधिक बढ़ गया और मैंने देखा कि किसी तरह मैं इसे निपटा न पाऊँगा, तो इन पत्रों को फाड़ डालने के सिवा और मैं करता भी क्या ?

मैनेजर ने पूछा—तो आपने इसकी रिपोर्ट क्यों नहीं की ?

उसने उत्तर दिया—रिपोर्ट करने पर आप मुझे कोई नया सहायक तो दे न देते ? हम लोगों का वेतन ही प्रायः दस-दस पाँच-पाँच रुपये करके कई बार में मिल पाता है। ऐसी दशा में और एक नया आदमी आप कहाँ से रखते ?

विनायक बोल उठा—स्थिति वास्तव में शोचनीय है।

शर्म्माजी उठ खड़े हुए। ऐसा प्रतीत हुआ कि वे कुछ कहेंगे। किन्तु वे खिड़की से शून्य आकाश की ओर देखने लगे।

मालती बोली—ऐसे व्यक्ति को निकाल देना ही उचित था।

शर्म्माजी खिड़की से हटकर बोले—मुख्य प्रश्न पूंजी का है। हमारे पास इतनी भी पूंजी नहीं कि हम अपने कर्मचारियों को समय पर वेतन दे सकें। इसी का यह फल है कि ये लोग कार्य में शिथिलता, असावधानी और स्वेच्छाचारिता दिखलाते हैं। जिन लोगों के पास पूंजी है, वे ऐसे व्यवसायों की ओर ध्यान नहीं देते और जो ध्यान दे सकते हैं, जिनमें देश और समाज के लिए कुछ करने का अनुराग है, वे निर्धन और दरिद्र हैं।

"यही तो हमारी विवशता है।"—विनायक बोल उठा।

शर्म्माजी ने कहा—गुलाम देश, अधिकांश जनता अशिक्षित, शिक्षित

जनता बेकार या पथभ्रष्ट ! पूँजी उन लोगों के हाथों मे, जो अधिकतर मूर्ख, लम्पट, स्वार्थी, दुर्व्यसनी, अंधविश्वासी और जड़ हैं !—किया क्या जाय ?

मालती शर्म्माजी के हृदय-मथन को बराबर देख रही थी। प्रकट में वह यह भी देखती थी कि उनके मस्तक पर बल पड़ते हैं, भृकुटियाँ तनती और फैलती हैं, मुट्ठियाँ बँधती और खुलती हैं।

इसी समय विनायक ने पूछा—अच्छा हाँ, और दूसरा कर्मचारी ? उसने क्या किया ?

शर्म्माजी बोले—दूसरा कर्मचारी था अवधविहारी, विज्ञापन-क्लर्क। उसने कम रुपये का बिल बनाने का आश्वासन देकर विज्ञापनदाता से घूस ले ली। यों चाहे मामला छिपा भी रहता; पर गलती से उसका पत्र बजाय उसके घर के पते से पहुँचने के, पहुँच गया हमारे यहाँ और मैंने उसे भूल से खोल भी डाला।······मैनेजर ने समझाया—माफी माँग लो, तो मामला आगे नहीं बढ़ाया जायगा। किन्तु न उसने माफी माँगी, न यही स्वीकार किया कि उसने विज्ञापनदाता से कुछ पाया है। उसे इस बात पर विशेष आपत्ति थी कि उसका पत्र खोला ही क्यों गया, जब कि वह प्राइवेट था। मैनेजर की राय थी कि इस केस को पुलिस में दे दिया जाय। किन्तु मैंने यह सोचकर उसे छोड़ देना ही उचित समझा कि नौकरी से अलग कर देना कम कठोर दण्ड नहीं है।

विनायक बोल उठा—अपराधियों के साथ दया दिखलाना अपराधवृत्तियों को प्रोत्साहन देना है। जो लोग न्याय की कठोरता का निर्वाह नहीं कर सकते, उनको व्यवस्था के कार्य से अलग रहना चाहिये।

शर्म्माजी को विनायक का यह कथन कुछ अधिक प्रियकर नहीं हुआ। चश्मे को उतारकर वे उसके लेंस साफ करने लगे। वे सोच रहे थे—बेचारे को आज ही चिन्ता हो गयी होगी कि कहीं काम तलाश करना है और आज-कल बेकारी इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि एक बार नौकरी छूट जाने पर फिर काम मिलना दुर्लभ हो जाता है। अतएव उन्होंने कहा—मूलतः कोई आदमी दोषी नहीं होता। प्रायः जीवन की मजबूरियाँ और कभी-कभी मान-

"जी", कहकर मालती रुक गयी। वह कहने जा रही थी कि आप कभी-कभी बिलकुल ठीक सोच लेते हैं।

गिरधारी ने अपने आप ही कल के स्थगित विषय को उपस्थित करते हुए कहा—आज दोनों क्लर्क प्रातःकाल क्रम-क्रम से क्षमा-याचना करने आये थे। मैंने उन्हें—

विनायक ने उनके अधूरे वाक्य को पूरा करते हुए कह दिया—फिर रख लिया है।

गिरधारी चुप ही रहा।

मालती भी मौन रही। किन्तु विनायक पुनः बोला—और यही लोग एक दिन प्रेस को इतनी अधिक हानि पहुँचायेंगे कि आप उसे सहन न करके दीवालों पर अपना सिर पटकेंगे, सिर के बाल नोचेंगे और जो मिलने वाले आयेंगे, उनको काटने दौड़ेंगे !

गिरधारी ने ज़रा भी अशान्त और अस्थिर न होकर सरल स्वाभाविक स्वर में कहा—किन्तु मैंने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया। इतना ही कहा कि मैं विचार करूँगा। इतना बेवकूफ़ मैं नहीं हूँ विनायक बाबू, जितना आप मुझे समझ बैठे हैं। इन कर्मचारियों की क्या स्थिति है, आप नहीं जानते। मुझे थोड़ा-सा अनुभव है और उसके आधार पर उनके सम्बन्ध में अपने विचार मैं अभी आपके सामने रखने की चेष्टा करूँगा। कल आपने ऐसी इच्छा भी प्रकट की थी।

होंठ बिचकाकर विनायक मुसकराने लगा। बोला—यह भी खूब रहा कि आप अपने को थोड़ा-बहुत बेवकूफ़ समझ लेते हैं !

मालती रूमाल मुँह से लगाती हुई बोली—साथ निभाने के लिए कभी-कभी सबको ऐसा करना पड़ता है। नहीं तो कुछ लोग तो वास्तव में न केवल बकरी का दूध पीना शुरू कर दें, वरन् आशंका तो पूरी इस बात की भी है कि आगे के दाँत तक निकलवा डालें !

विनायक बोल उठा—और जार्जेट का स्थान खादी ग्रहण कर ले।

"मेरी प्रार्थना है कि आप लोग" शर्माजी कुछ अटकते हुए से बोले—

अब...।

'विनायक ने कह दिया—उठकर खड़े हो जायें। कुश्ती हो चुकी।

क्षण भर रुककर गम्भीर होती हुई मालती बोली—कहिये न आप? मैं सुन रही हूँ। विनायक बाबू कृपा करके आप भी चुपचाप सुनें।

शर्माजी बोले—प्रेस में अनेक प्रकार के कर्मचारी हैं। एक तो वे, जो यहाँ इस भाव से काम करते हैं कि वे राष्ट्र के सेवक हैं और उदर-पोषण भर के लिए उन्हें मिलता रहे, इतना ही वे चाहते हैं।

"पर ऐसे लोग मिलते कहाँ हैं?" मालती बोली—यदि आपके यहाँ हैं, तो यह आपका बहुत बड़ा सौभाग्य है।

शर्माजी बोले—हमारे यहाँ भी ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं है और जहाँ तक कारखाने का सम्बन्ध है, हम कर्मचारियों से निस्वार्थसेवा की आशा भी नहीं करते। दूसरी श्रेणी उन लोगों की है, जो सेवा-भाव पर विश्वास नहीं करते। वे यह मानते हैं कि हम मेहनत करते हैं और मेहनत की उजरत हमें मिलनी चाहिये। हमें इस बात से कोई बहस नहीं कि पत्र की स्थिति कैसी है!

विनायक ने कदाचित् अपने आपको तौलते हुए कहा—आजकल प्रत्येक कर्मचारी का यही दृष्टिकोण होता है।

"यहाँ तक कि अगर मैं आपके यहाँ नौकरी करूँ, तो मैं भी यही सोचने के लिए मजबूर होऊँगी"—मालती मुसकराती हुई बोली।

तरंगित मुद्रा में गिरधारी कहने लगा—यह अपनी नौकरी की बात तुमने खूब कही। जो हो, मुझे भी भौतिक दृष्टिकोण ही देखना है। इसलिए ये लोग प्रतिवर्ष वेतन-वृद्धि कराने की चेष्टा करते हैं। ये बाल-बच्चे वाले हैं और इन की आवश्यकताएँ बढ़ती रहती हैं। ये इस बात पर विश्वास नहीं करते कि जब कभी पत्र में लाभ होगा, तब बिना माँगे वेतन-वृद्धि यथेष्ट मात्रा में हो ही जायगी। ये लोग नगर के कर्मचारी-मंडल के सदस्य भी हैं।

मालती बोली—इस मंडल की चर्चा मैंने भी सुनी है। लेकिन सुनती हूँ, आपस के मतभेदों के कारण यह मंडल ठीक ढंग से काम नहीं कर रहा।

इसी क्षण विनायक बोल उठा—आपस का मतभेद और वैमनस्य तो हमारे देश का सनातनधर्म है।

"लेकिन तुमको यह सुनकर आश्चर्य होगा" शर्म्माजी ने जैसे कोई नयी बात सोचते हुए कहा—इस तरह के कर्मचारियों के अन्दर एक तीसरी श्रेणी भी है। कार्यशैली, क्षमता और योग्यता की दृष्टि से देखा जाय, तो इस श्रेणी के लोग यथेष्ठ परिष्कृत हैं। किन्तु साधारण जनता के आन्दोलनों के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। समय पर वेतन लेना और कार्यालय में इस ढंग से काम करना कि काम की कमी कभी न होने पाये, उनका मुख्य उद्देश्य रहता है। वे केवल घंटे पूरे करने के लिये आते हैं। घर-गृहस्थी के उत्तर-दायित्व का भी वे विशेष खयाल नहीं करते। साधारण व्यवहार में वे बड़े सभ्य और शिष्ट जान पड़ते हैं। पर भीतर से बड़े मक्कार, अवसरवादी और धूर्त होते हैं। वे सदा दवकर खेलते हैं और सदा इसी बात की परवा करते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन निकाल दिये जायें तो कहीं के न रहें।

विनायक कहने लगा—उच्चकोटि की सरकारी नौकरियों को छोड़कर शेष सभी नौकरियों का निर्वाह लोग इसी तरह करते हैं। फैक्टरियों, कारखानों और मिलों की बात दूसरी है, जहाँ आदमी मशीन के पुर्जे की भाँति जड़ और निष्प्राण रहता है

गिरधारी ने कहा—किन्तु उच्च श्रेणी की सरकारी नौकरियों में भी कर्त्तव्य, न्याय और सत्य पर दृष्टि रखने वाले कुछ इनेगिने व्यक्ति अपवाद रूप में ही मिलेंगे। और निम्न मध्यश्रेणी के लोगों में भी अधिकांश न कर्मठ होते हैं, न ईमानदार। रात उनकी होटलों, जलपानगृहों, पिक्चरहाऊसों, चकले-खानों तथा प्रेयसियों के यहाँ कटती है। नशेबाज़ भी वे कम नहीं होते। सड़क पर चलते हुए पास से गुज़रनेवाली स्त्रियों और युवतियों की ओर कुदृष्टि से देखे बिना उनकी तबियत नहीं मानती। उनमें अधिकांश या तो अविवाहित होते हैं, या नौकरी के नगर में अकेले। स्त्रियों को वे लोग मायकों या देहात के घरों में डाल रखते हैं। अधेड़ अथवा कुरूप होने के कारण पत्नी का संबंध उनके साथ बनाये रखना उन्हें स्वीकार नहीं होता। महीने में गिने रुपये उन

अबलाओं के पास मनीआर्डर से आ जाते हैं और उन्हीं के आधार पर वे अत्यन्त हीन और दयनीय जीवन व्यतीत करती हैं। उनके बच्चे नीरोग नहीं रहते। शिक्षा भी उन्हें ठीक ढंग से नहीं मिल पाती और उनके पिता और संरक्षक—बाबू लोग—निश्चित रहते हैं और जीवन उनका जैसा चलता है, बराबर चलता रहता है।

मालती बोली—पर यह जड़ता तो समाज में सर्वत्र है।

"सर्वत्र ऐसा नहीं है"—तुरन्त विनायक ने कह दिया।

मालती ने उग्र होकर पूछा—मैं जानना चाहती हूँ कि स्थिति देखकर क्या ऐसा नहीं जान पड़ता कि वे जीवन से हार मान बैठे हैं?

तब विनायक प्रश्न की भाँति बोला—क्या हमारे ही देश में साधारण जनता का मानसिक स्तर इतना हीन है? सदियों की गुलामी में जकड़ी अशिक्षित, असभ्य और रूढ़ियों से घिरी जनता के लिए इतना अनैतिक होना क्या कोई ऐसी अनहोनी बात है कि···?

शर्माजी एकाएक जैसे चौंक पड़े हों। उसी क्षण कुछ सोचते हुए बीच में ही बोल उठे—महामति गोर्की तो ऐसा ही मानते थे। विचारक रोम्याँ रोलाँ को सन् २२ के लिखे एक पत्र में वह लिखते हैं—रूसी क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों से ही मैं यह बात बराबर कहता आया हूँ कि हमारी जनता में संघर्ष-काल में नैतिकता की बड़ी आवश्यकता है।

इस पर मालती कुछ क्षणों तक मौन रही। अन्त में बोली—चाहे जो हो, हमारे देश की जैसी स्थिति इस समय है, उसको देखते हुए नैतिकता का परि-पालन और प्रतिपादन सम्भव नहीं है।

शर्माजी पुनः उत्तप्त हो उठे। बोले—नैतिकता-विहीन मनुष्य और हिंसक पशु में मैं कोई अन्तर नहीं मानता।

अस्थिर और क्षुब्ध विनायक ने कहा—किन्तु हिंसक मनुष्य की अपेक्षा हिंसक पशु फिर भी अच्छा है। नैतिकता की दुहाई देकर जो लोग संसार में नंगों, भूखों और पागलों की संख्या बढ़ा रहे हैं, कौन कह सकता है कि वे हिंसक नहीं हैं? और अहिंसक होने पर भी मनुष्य अपना पशुत्व तो कभी

याग नहीं सकता।

मालती इस वार आश्चर्य से विनायक को देखती रह गयी।

गम्भीरतापूर्वक शर्म्माजी फिर कहने लगे—वह पहलू दूसरा है। इन लोगों की स्थिति तो यह है कि जीवन में सत्य क्या चीज है; यह भी ये नहीं जानते।—जानते चाहे हों, पर उसको कोई महत्व नहीं देते। दुनिया की आँखों में धूल झोंककर स्वयं मौज उड़ाना ही उनका एक मात्र उद्देश्य रहता है।

"प्रत्येक जड़वादी आज जीवन का निर्माण इसी रूप में करना चाहता है।"—विनायक कहने लगा।

किन्तु शर्म्माजी ज़रा भी रुके विना वरावर वोलते ही रहे—ये लोग नगर के छटे हुए गुंडों और वदमाशों से मिले रहते हैं। किसी भी भले आदमी को वेइज़्ज़त करा देना इनके लिए वायें हाथ का खेल होता है। ऊँचे-से-ऊँचे दरजे का आदमी इनके लिए तभी तक सह्य होता है, जव तक उनके निहित स्वार्थों को कोई क्षति नहीं पहुँचती। उनके द्वारा एक वार भी अपमानित होना वे कभी सहन नहीं करते, चाहे वह कितना ही न्यायोचित क्यों न हो और एक वार किसी सम्वन्ध से मतभेद अथवा विरोध हो जाने पर उसका वदला वे अपने जीवन-भर के विरोध और वैमनस्य से चुकाते हैं। उचित-अनुचित का उनके सामने कोई प्रश्न नहीं होता। विरोधी को अपदस्थ करते रहना उनका एकमात्र लक्ष्य रहता है। ये लोग प्रायः उच्चवर्ग के लोगों तथा राजा-रईसों की खुशामद में रहा करते हैं। राष्ट्र अथवा समाज का हिताहित उनके समक्ष कोई मूल्य नहीं रखता। कौंसिलों और वोर्डों के चुनाव के अवसर पर ऐसे लोग पक्ष उसी व्यक्ति का लेते हैं, जो रुपया अधिक खर्च करता है। ऐसे अवसरों पर निजी वैठकों और गोष्ठियों में ही नहीं, सार्वजनिक सभाओं तक में ये लोग राष्ट्र-कर्मियों को खुले तौर पर गाली देते हैं और मारपीट करने के लिए तो सदा जैसे उधार खाये वैठे रहते हैं।

विनायक वोला—नौकरी पेशा के ही लोग क्यों, साधारण जनता भी इन दुर्गुणों की कम शिकार नहीं है।

भाव-दृप्त गिरधारी कहता गया—देखिये न, कितनी दयनीय स्थिति है कि हड़तालें होती हैं, तो ये लोग पक्ष लेते हैं मिल-मालिकों का। मुक़दमे-बाज़ी होती है, तो अदालतों में झूठी गवाहियाँ देना इनके लिए एक मामूली बात है। अपने सगे सम्बन्धियों और आत्मीय स्वजनों, माताओं और बहनों तक का अपमान करने और सहने में उन्हें कोई असुविधा अथवा आपत्ति नहीं होती। वे मूलतः पूँजीजीवी न होते हुए भी समर्थक उसी वर्ग के होते हैं। जीवन से निरन्तर लड़ते-लड़ते वे अब उससे हार मान बैठे हैं। तभी उन्होंने उस पूँजीजीवी वर्ग की सत्ता, परिपाटी और नीति के आगे घुटने टेक दिये हैं, जो हमारे न केवल सामूहिक स्वार्थों वरन् व्यक्तिगत जीवन के भी शत्रु हैं। इतनी विकृतियाँ उनके अन्दर पनप रही हैं कि वे निरन्तर अपने विनाश की ओर बढ़ते जा रहे हैं।

इतना कहकर शर्म्माजी चुप हो रहे। पर थोड़ी देर ही कुरसी पर बैठे; फिर टहलने लगे।

श्रद्धा और भक्ति से ओत-प्रोत होकर मालती अनुभव कर रही थी—इस समय इनके हृदय में कितना तूफान उठ रहा है! क्या इस तपस्वी को संघर्ष से कभी छुट्टी न मिलेगी? क्या इसका जीवन सदा ऐसा ही अशान्त बीतेगा?

तेरह

चरित्र का मूल्यांकन करते समय हम प्रायः शरीर-धर्म की ओर ही अपनी दृष्टि रखते हैं। किन्तु पुरुष और स्त्री के मिलन को, जहाँ तक वह शरीर-धर्म से सम्बद्ध है, चरित्र के मूल्यांकन में अधिक महत्व देने का अर्थ है—छल, कपट, अविश्वास, कृतघ्नता, दम्भ तथा आडम्बर आदि उन वृत्तियों की उपेक्षा करना, जिनका नियन्त्रण मानवता के विकास के लिए आवश्यक है।

खाना-पीना, उठना-बैठना और सोना आदि शरीर के धर्म हैं। चरित्र के साथ वे वहीं तक संग्लन हैं, जहाँ तक वे समाज के मानसिक सदाचार की सीमाओं को भंग नहीं करते। आकर्षण का भी—शरीर-धर्म की अपेक्षा—मानसिक स्वास्थ्य के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। उसकी उत्पत्ति का हेतु है सौंदर्य्य-लिप्सा और समाज की मान्यताएँ मर्यादा चाहे जैसी हों, संस्कृति और धर्म की सीमा-रेखाएँ भी चाहे जैसी स्पष्ट, दृढ़ और चिरस्थिर बनी रहें, मनुष्य की सौन्दर्यलिप्सा कभी मिट नहीं सकती; वह चिरन्तन है। चरित्र के मान उसके नाम पर सदा विवश रहेंगे।

रेणु उस दिन कई बार रोयी। वह यह मानती थी कि शुरू में बदला हुआ रुख मेरा ही था। मैंने ही रज्जन की माता होने से इन्कार किया और बात बढ़ायी। और अन्त में मैंने ही उलाहना दिया कि 'मेरी तकलीफ की ऐसी बहुत परवाह न है तुमको।' किन्तु क्या उनको यही उचित था? इतना क्रोध तो वे पहले कभी मुझ पर करते न थे।···तो असल बात यह है कि अब मैं उन्हें अच्छी नहीं लगती। मेरे प्रति वह प्रेम ही अब उनमें नहीं रह गया है। बात-बात में झिड़क उठते हैं। मेरी बात सहन नहीं कर पाते। सेर का सवा सेर, बल्कि ढाई सेर जवाब देते हैं। पहले तो ऐसा कभी होता न था। कम-से-कम इतना तो खयाल करते कि आजकल रज्जन बीमार है। ऐसे समय इस तरह का उपद्रव रचना परिवार की शान्ति-रक्षा के लिए कितना भयानक हो सकता है!

रेणु को आज मालती की भी कई बार याद आयी। वह सोचती रही कि जब से इनके साथ उसका मिलना-जुलना आरम्भ हुआ, मेरे प्रति इनके भावों में परिवर्तन बस तभी से उत्पन्न हुआ है। मैं उनके चरित्र पर सन्देह नहीं करती। पर आदमी के लिए असम्भव कुछ नहीं है अधिक न सही, तबीयत में एक स्निग्धता तो आ ही जाती है। उसी दिन कैसे हँस-हँसकर बातें कर रहे थे! आपस में घनिष्टता हुए बिना ऐसा कभी सम्भव नहीं है। फिर, परिचय भी कुछ नया नहीं है। उस समय छोटी थी; पर अब तो काफ़ी खेलीखायी प्रतीत होती है। उससे बच क्या सकता है!

रज्जन की तबियत अब अच्छी हो रही है, सन्देह नहीं—वह सोचने लगी—किन्तु इनको इससे क्या ? अगर वह…गया होता, तो भी इनको कतई रंज न होता। ऐसा निर्मम आदमी तो दुनियाँ में कहीं खोजने पर भी न मिलेगा। कभी-कभी कैसी माया दिखलाते हैं ! ऐसा प्रतीत होता है, मानो सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर हो। किन्तु इतना भी नहीं होता कि दो-चार घंटे लगकर उसके पास ही बैठते।

तो सारा दिन, सारी रात जलने-भुनने और मरने-खपने के लिए मैं हूँ, केवल मैं ! लेकिन मैं—केवल मैं—इसके लिए नहीं हूँ। मैं अब इस जाल में न रहूँगी। मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं यहाँ से चली जाऊँगी।

लोचन से कोई बात छिपी न थी। जब बारह बज गये, तो उसने निकट आकर कहा—बहूजी, मैं चूल्हा जला आया हूँ। बटलोई में पानी खौल रहा है। चलो दाल छोड़ दो न चल के। बाबू सबेरे के निकले हुए हैं। कौन जाने आते ही हों।

रेणु ने कोई उत्तर नहीं दिया।

लोचन कब तक उत्तर की प्रतीक्षा करे ? बोला—बहूजी, मैं बूढ़ा आदमी हूँ। मैंने बहुत दुनियाँ देखी है। पति के आगे स्त्री को ही सदा झुकना पड़ता है। फिर बाबूजी जैसा आदमी इस धरती पर किसको नसीब हो सकता है ! बहूजी, आदमी नहीं देवता हैं वे। उठो बहूजी, उनके कहने का बुरा नहीं मानना चाहिये आपको।

रेणु बोली—तुम मेरे मुँह मत लगो लोचन। चुपचाप चले जाओ और अपना काम देखो। मुझे तुम्हारी नसीहत की जरूरत नहीं है। मैं अपना भला-बुरा तुमसे ज्यादा समझती हूँ। समझते हो न ?

उदास लोचन के मुँह से निकल गया—जी।

रेणु ने उसी तीव्रता के साथ उत्तर दिया—तो फिर जाओ, अपना काम देखो।

रेणु रज्जन के पास ही जमीन पर शीतलपाटी बिछाये हुए दिन भर लेटी रही। एक-आध बार लेटे-लेटे नींद का झोंका भी आ गया। एक-आध बार

उसने लोचन की बात पर भी ध्यान देने की चेष्टा की। वह उठी और छज्जे पर खड़ी-खड़ी सड़क पर किसी को देखती हुई उसकी प्रतीक्षा करती रही। उसने दरवाज़े की ओर भी कई बार दृष्टि डाली। कई बार उसे यह भी मालूम हुआ कि शर्माजी अपने कमरे में आ गये हैं। पर अपनी प्रत्येक कल्पना में ज्यों-ज्यों वह निराश होती गयी, त्यों-त्यों उसका यह निश्चय और भी दृढ़ होता गया कि उसे निराहार रहना है, वह निराहार रहेगी।

ज्यों-त्यों करके पाँच बजे। फिर लेटे-लेटे उसे ऐसा भान हुआ कि कोई आ रहा है। चट्टियों का शब्द हो रहा है। परन्तु फिर उस पगध्वनि से कुछ ऐसा भी प्रतीत हुआ कि वह कुछ अपरिचित है। जो भी हो, कोई-न-कोई तो आ ही रहा है। वह उठ बैठी। रज्जन ने इसी समय पानी माँगा। तब वह खड़ी हो गयी। अब उसको कमज़ोरी का अनुभव हुआ। कुछ ऐसा भी जान पड़ा, जैसे उसका सिर दर्द कर रहा है। किन्तु रज्जन को पानी पिलाने के बाद जो उसकी आँख एक ओर गयी, तो देखती क्या है—मालती मुसकराती हुई सामने खड़ी नमस्ते कर रही है।

रज्जन की चारपाई के पास कुरसी पड़ी थी। रेणु बोली—नमस्ते। आओ, बैठो।

मालती ने पूछा—रज्जन की तबियत कैसी है?

रेणु बोली—अब तो अच्छी है। डाक्टर का कहना है कि एक-आध दिन में पथ्य देंगे।

मालती ने कुरसी रज्जन के पास खसका ली। बोली—कैसा जी है रज्जन?

रज्जन चकित था। उसने कभी मालती को देखा तो था नहीं।

रेणु कहने लगी—ये तुम्हारी बुआ हैं रज्जन।

मालती संकोच में पड़ कर। एकटक रेणु के मुख की ओर देखती रह गयी।

फिर बोली—बुआ कहलाओगी?

"क्यों?" रेणु ने विस्मय से कहा—मैं तुम्हारी भाभी हूँ न!

मालती हँसने लगी।

रेणु ने फिर पूछा—बुआ कहलाना तुमको अच्छा नहीं लगता ?

मालती बोली—अच्छा लगने-न-लगने का कोई प्रश्न नहीं है। लेकिन बुआ कहने से क्या मैं बुआ हो जाऊँगी ?

रेणु ने इस बार मालती को ध्यान से देखा, तो उसके मुख पर मुसकराहट के स्थान पर कुछ और अनुभव किया। सोचा यह और चाहे जो हो, बुआ कहलाने की स्पष्ट स्वीकृति तो है नहीं। फिर इस भाव को लेकर वह कुछ उद्विग्न हो गयी। कुछ बोली नहीं।

मालती भी मौन बैठी रही।

रञ्जन ने कहा—"अम्मो!" उसकी दृष्टि रेणु पर अटक रही थी।

रेणु उसके निकट आकर धीरे-धीरे उस पर पंखा झलने और सिर तथा माथे पर हाथ फेरने लगी। मालती चारपाई के दूसरी ओर बैठी थी।

क्या करे कि बात आगे बढ़े, मालती जैसे इसी टोह में थी। एकाएक उसकी दृष्टि रेणु की उदास मुद्रा की ओर जा पड़ी वह कहने लगी—अन्य दिनों की अपेक्षा आज कुछ अधिक गम्भीर देख पड़ती हो भाभी। बात क्या है ? भाईजी तो दफ्तर में होंगे। कई दिनों से भेंट नहीं हुई।

रेणु ने लक्ष्य किया—यह मालती है। अभी उस दिन से बराबर उन्हें 'शर्म्माजी' कहती थी। जैसे मित्रता उसमें भीगी और बसी हो और सुवास उससे निस्सृत होता हो। किन्तु अभी जब मैंने रञ्जन की बुआ होने का नाता निकाला, तो आपत्ति कर बैठी। उसे आपत्ति का अर्थ व्यर्थ जब नहीं गया और प्रश्न उपस्थित हुआ कि फिर तुम हो कौन सकती हो ?—क्या होने की इच्छा है तुम्हारी ; तो अभी तत्काल उनके लिए यह 'भाई' शब्द आ रहा है। शब्द बुरा नहीं है। 'शर्म्माजी' की अपेक्षा एक तरह से सुन्दर भी यथेष्ठ है। ऊँचा तो है ही। किन्तु प्रश्न है कि उसमें सत्य कितना है ? यह तो सरासर अपने को धोखा देना है।" किन्तु इन तितलियों से और आशा भी क्या की जाय ? दुनिया को ठगने की जितनी भी रीतियाँ हैं, सब-की-सब इनमें ओत-प्रोत हो रही हैं। प्रकट हास में कितना छल, कितना प्रपंच ये

च्छन्न रखती हैं ! हृदय का अन्तर्द्वार इन लोगों का सदा अवरुद्ध रहता। वार्तालाप में बनावट, वेशभूषा में बनावट, आचार-व्यहवहार में बनावट। ही आज की सभ्यता का मुख्य स्वरूप है।

और तब मालती के लिए एक कुत्सा, एक कालिमा और वितृष्ण उसके भीतर फैल गयी। वह कुछ बोली नहीं। मालती ने भी कोई प्रश्न नहीं किया।

रेणु की ओर देखकर रज्जन ने मालती की ओर देखा। जैसे वह पूछ रही हो कि ये कैसी बुआ हैं, जो कहती हैं बुआ कहलाओगी ? हफ्तों के निराहार और भयानक ज्वर के कारण रज्जन अत्यधिक दुर्बल हो गया था। स्वर भी उसका पहले की अपेक्षा कुछ मन्द पड़ गया था।

रेणु बोली—ये कौन हैं रज्जन ?

रज्जन ने जरासा सिर हिला दिया।

रेणु कहने लगी—ये तुम्हारे बाबू के साथ-साथ जहाँ-तहाँ लेक्चर देती घूमती हैं। नेता बनने जा रही हैं। लेकिन नेत्री कहना ठीक होगा; क्यों ? फिर मालती की ओर देखती हुई थोड़ी मुसकराहट झलकाकर बोली—इनके पास मोटर है। मोटर पर ही ये यहाँ आयी हैं।

उसके कथन में अरुचि स्पष्ट थी।

मालती मौन न रह सकी। बोली—भाभी, तुम यह सब क्या कर रही हो।

रेणु ने कहा—मुझको भाभी ही कहोगी मालती ? भाभी कहने की जो एक गुरुता होती है, क्या तुम उसको निभाने को तत्पर हो ? अभी तुमने कहा था—रज्जन से मुझे बुआ कहलाओगी ? जानती हो, इस प्रश्न के द्वारा तुमने अपनी भाभी को कहाँ ले जाकर पटक दिया है !

मालती ने देखा, रेणु का वह मुख, जो सदा विकसित रहा करता था, आज कुछ विकृत-सा हो रहा है। जैसे चिनगारियाँ उससे निकल रही हों। कपोल तो एक दम से लाल हो गये हैं। पर इस तरह भौंहें चढ़ा लेने का अर्थ क्या है ?···किन्तु उसके मन में आया, उसे इस तरह सोचने और उत्तर देने

को विवश तो उसी ने किया है। अपने मन का पाप तो वह स्वयं सहज-स्वभाव से, बिना कुछ सोचे-समझे, अपनी बातचीत से व्यक्त कर चुकी है। उसके मन में जो विकार की लहरें—आड़ी और तिरछी—फैली हुई हैं, उनको वह मिटा कहाँ सकी है! सारा दोष तो उसी का है।

वह बोली—इस समय तुम कुछ अस्थिर हो भाभी। जान पड़ता है, भाईजी से कुछ कहा-सुनी हो गयी है। खाना तो खाया है न?

किन्तु रेणु उपस्थित विषय से टस-से-मस नहीं हुई। बोली—विषयान्तर मत करो और इस तरह भागो भी मत। पहले यह तै कर लो कि आज से मेरे साथ तुम्हारा क्या नाता चलेगा।

रेणु की बात सुनकर पहले तो मालती कुछ अस्तव्यस्त हो उठी; किन्तु फिर सजग होकर बोली—मैं इन रिश्तों की सीमाओं से परिचित नहीं हूँ भाभी। मेरी इन पर कोई विशेष आस्था भी नहीं है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ, एक साथी का ही सम्बन्ध मेरी समझ में आता है। साथी उमर में छोटा-बड़ा भी हो सकता है और अवस्था को लेकर उसके सम्बन्ध भी उसी के अनुरूप अलग-अलग हो सकते हैं।—अलग होकर भी वे अपने आप में पूर्ण बन सकते हैं। किन्तु समाज का निर्माण हमारे यहाँ जिस ढंग पर हुआ है, उसमें रिश्ते भी अपनी-अपनी जगह सार्थक हैं। समाज के साथ रहकर उन्हें अस्वीकार कोई कैसे करेगा? रह गयी 'बुआ' शब्द पर आपत्ति करने की बात। सो यह मेरी एक सनक ही कह लीजिए जो मुझे ऐसा जान पड़ा कि बुआ तो बुड्ढी होती है!। जो बुड्ढी नहीं वह कैसी बुआ! और जब मेरे भीतर इस शब्द के प्रति ऐसी मान्यता छिपी थी—तब मेरा अनायास उस पर आपत्ति कर बैठना कोई अनुचित तो था नहीं। मैं नहीं जानती कि तुम इसका ऐसा विद्रूप खड़ा करोगी। मुझे यह भी गुमान नहीं था कि निष्कर्ष में तुम मुझे अपने लिए भाभी कहने के अधिकार से भी च्युत कर बैठोगी। लेकिन इस शब्द के प्रति मेरी जो भावना है, वह मेरी अपनी है। जहाँ तक रिश्ते का सम्बन्ध है, मैं उससे कैसे इन्कार कर सकती हूँ। भूल मुझसे हुई है और मुझे उसके लिए खेद है।

रेणु का भ्रम दूर हो गया। वह बोली—तब मैं माफ़ी चाहती हूँ व्यर्थ ही मैंने तुम्हारा जी दुखाया।···किन्तु इस शब्द में वृद्धता का भाव जो तुम मानती हो, वह भी खूब है !

अब उसके मुख पर मन्द मुसकराहट आ गयी। बोली—रज्जन, यह तेरी बुढ़िया बुआ है।

रज्जन ने कहा—हूँ···। और उसने ऐसा मुँह बनाया कि मालती मुग्ध हो उठी। बोली—वाह !

क्षण भर बाद—

"अच्छा, अब बोलो भाभी" उत्सुकता से मालती ने पूछा—आज तुम इतनी गम्भीर क्यों थीं उस समय ? और उस समय ही क्यों, इस समय भी तुम्हारी यह हँसी कृत्रिम-सी ही जान पड़ती है; क्योंकि मुसकान अधरों पर टिक नहीं पाती। आज मैं यह सब क्यों देख रही हूँ !

रेणु बोली—मैं क्या बतलाऊँ; अपने भाईजी से ही क्यों नहीं पूछ लिया ?

"क्यों, उनसे क्यों पूछूँ ? उनको तो मैंने इतना उदास कभी पाया नहीं।"

"आफ़िस में होंगे। देख न आओ। कई दिनों से मिली भी नहीं हो।"

"मुझसे नाराज़ तो नहीं हो न ?"

"नाराज़ मैं किसी से नहीं होती। अपनी बात दूसरी है। अपने से नाराज़ होने में मुझे अच्छा भी बहुत लगता है।"

"यह अपने से नाराज़ होना भी तुम्हारा खूब है !···अच्छा, तो यही बतलाओ कि अपने से क्यों नाराज़ हो ?"

"पूछकर क्या करोगी ?"

"बतलाने में कोई संकोच है क्या ?"

"पूछने और जान लेने में कोई बड़ी खुशी होने की सम्भावना है क्या ?"

"जाने दो। तुम तो पंजे लड़ा रही हो।"

"और तुम मेरी अँगुलियाँ मरोड़ देना चाहती हो। फिर हाथ ध

लोगी। नरम कलाई मेरी; कहीं टूट जाय तो!"

"बड़ी नटखट हो। मैं तो तुम्हें बहुत भोली समझती थी।"

"अब?"

"अब देखती हूँ, तुम्हारे अन्दर तीव्रता और संघर्ष भी यथेष्ट मात्रा में है।"

"जो भोले होते हैं, क्या वे जीना नहीं जानते? और संघर्ष भी क्या अकारण होते हैं?"

"प्रेम में संघर्ष के लिए जगह नहीं है। प्रेम तो त्याग चाहता है। संघर्ष त्याग के प्रति चुनौती है।"

"भूलती हो मानती! संघर्ष-प्रेम की एक गली है। परन्तु गली न कहकर उसे सड़क कहना ही ठीक होगा। उस रास्ते से गुजरना अपने आपको कसना है। जो कसा नहीं गया, उसकी क़ीमत क्या?"

क़ीमत तो अपने मन के अन्दर रहती है। वही असली मूल्यांकन है। संघर्ष उसको छू तो पाता नहीं, कसेगा क्या?"

"तुम्हारे भाईजी आज मुझको अपमानित करके गये हैं। मैं साग छौंक रही थी। चूल्हा जल नहीं रहा था। मुझे तकलीफ़ में देखकर बोले—लोचन को सिखा लो न। इस तरह तकलीफ़ क्यों उठाती हो? वे जानते हैं, मैं लोचन के हाथ का बना खाना नहीं खा सकती। इस विषय में काफ़ी बहस हो चुकी है। मैं कह चुकी हूँ, तुम बाहर रहकर चाहे जो करो और खाओ। पर यह अन्तःपुर है। इसकी एक मर्यादा है। उसका पालन यहाँ तुमको भी करना होगा। मैं किसी कहार की बनायी रोटी नहीं खा सकती। भीतर और बाहर के सम्बन्धों में तुम भेद मानते हो, मानकर चलते भी हो। मैं नहीं मानती। मायके जाऊँगी, तो मुझसे झूठ न बोला जायगा। मैं जब कहूँगी कि हम लोग तो कहार की बनायी रोटी खा लेते हैं, तो माँ और भाभियाँ मुझे चौके के अन्दर भी न आने देंगी। बोलो, मैं क्या करूँ? मुझे झुँझलाहट हुई। मैं कह बैठी—जाओ, अपना काम देखो। मेरी तकलीफ़ों की ऐसी बहुत चिन्ता न है तुम्हें. जो इस तरह की बातें करते हो। बस इस पर बिगड़

उठे। पानी भरा लोटा चूल्हे में उडेल दिया और मालूम नहीं क्या-क्या बकते रहे। अपने को कोसा भी। मैं तुमसे पूछती हूँ, मेरे ऊपर जो इतना क्रोध दिखा गये हैं, इसे मैं क्या समझूं? क्या इतने से मैं मान लूं कि छुट्टी हो गयी? क्या मैं इतना भी नहीं जानती कि अब तक पान भी उन्होंने न खाया होगा! मैं भी निर्जल बैठी हूँ। इस तनाव में कहीं कोई ढील तुम्हें देख पड़ती है? कहीं इसमें सिकुड़न भी है क्या? तो भी क्या मैं भूल जाऊँ कि यह है सब मेरे प्यार के नाम पर ही। उन्हें गवारा नहीं हुआ, मेरा इतना कहना भी कि मेरी तकलीफ़ों की ऐसी बहुत परवा न है तुम्हें!

मालती ने सब सुना। एक-एक शब्द वह जैसे पीती चली गयी। उसे पता चला कि पहली भेंट में इन लोगों के परस्पर व्यवहारों के सम्बन्ध में उसने जो राय क़ायम की थी, वह कितनी ग़लत थी। उसे बोध हुआ कि शर्म्माजी भी कभी-कभी कितने क्रुद्ध हो जाते और सन्तुलन खो बैठते हैं। और उसे यह भी प्रतीत हुआ कि इन लोगों में प्रेम की वह ऊँचाई नहीं है, जहाँ एक सदा दूसरे के आगे समर्पित रहता है। ये आपस में लड़ते हैं, क्योंकि मिल नहीं पाते, गुथ नहीं पाते! और ये फिर जुड़ते भी हैं; क्योंकि और चारा नहीं है।—क्योंकि समाज और उसके संगठन को तोड़ नहीं सकते।—क्योंकि विवाहित हैं और विच्छेद में समाज के आगे कटु आलोचना के पात्र बनने में डरते हैं। मानो इनके आगे आलोचना के पात्र बनने का जो भय है, जैसे वह जीवन का नव-निर्माण, नवप्रयोग और उसकी नवदृष्टि की अपेक्षा कहीं गुरुतर है। उनके अन्दर एक कायरता भरी हुई है। वे उसी सड़क पर चले जा रहे हैं, जिसमें काँटे बिछ गये हैं, कंकड़-पत्थर और खड्ड जहाँ-तहाँ पड़ गये हैं, जिसके इर्द-गिर्द इतने सघन वन हैं कि हिंसक जन्तुओं का शिकार बन जाना एक साधारण बात है। वे न स्वयं नवपथ खोजने को तैयार हैं, न मालूम हो जाने पर उसे अपनाने को तत्पर।

उसके मन में आया कि वह कह दे, यह प्रेम नहीं है। प्रेम में शतरंज की सी चालें नहीं चलनी पड़तीं। उसकी सभी गोटें एक-सी होती हैं। छोटी गोट भी वहाँ उससे अलग नहीं है, जो बड़ी है। हार वहाँ जीत की बहन है। दोनों

एक साथ बैठकर एक दूसरे को छेड़ती, गुदगुदाती, मुसकराती और कौर मिटाती हुई खाना खाती हैं। वहाँ ऐसा नहीं होता कि समझौता करने की वहाँ गुंजाइश ही नहीं है, तो भी कर रहे हैं। यह चलना नहीं, घिसटना है। गति नहीं, स्पष्ट दुर्गति है।

किन्तु वह इस विषय में कुछ बोली नहीं, वरन् इसके विपरीत जा पड़ी। बोली—मैं खाना बनाऊँ भाभी, तुम खाओगी ?

रेणु स्तम्भित हो उठी। उसे विश्वास नहीं हुआ कि मालती यह प्रस्ताव सच्चे हृदय से कर रही है।

मालती ने फिर पूछा—बोलो भाभी।

रेणु बोली—मुझे लज्जित मत करो मालती।

और मालती ने देखा, रेणु की आँखों से आँसू ढुलक रहे हैं।

तब मालती रेणु के पास जाकर अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछने लगी। बोली—रोओ मत भाभी।

रेणु की सिसकियाँ भरने लगीं।

इस क्षण मालती को अनुभव हुआ, रेणु का मस्तक उत्तप्त हो रहा है। यकायक वह चौंक पड़ी। बोली—अरे, तुमको तो ज्वर आ गया है।

इसी समय लोचन ने आकर कहा—बाबूजी ने कहा है, इस समय वह आ नहीं सकते। बड़े आवश्यक काम में लगे हैं। और कहा है कि बहूजी से कहना, खाना खा लें। मैं आज ज़रा देर से आऊँगा। मेरे आने तक अगर वह इन्तज़ार करेंगी और खाना नहीं खायेंगी, तो मुझे बड़ा दुःख होगा।

चौदह

जो लोग विचारों की दृढ़ता और कट्टरता के कारण भिन्न मत के साथी और प्रेमी के समक्ष समझौता करने के लिए कभी झुकते नहीं, वे अपने कार्य-

क्षेत्र में चाहे जितने सफल हों और यश भी उन्हें चाहे जितना मिल जाय, किन्तु हृदयदान की दृष्टि से वे अत्यन्त कठोर और निर्मम होते हैं। यही कारण है कि आँधियों और संकटों से खेलने वाले वीर पुरुष सुन्दरियों की श्रद्धा-भक्ति प्रेम की अपेक्षा अधिक पाते हैं। क्योंकि प्रेम तो त्याग और बलिदान चाहता है। किन्तु अपने सिद्धान्तों पर अचल और दृढ़ रहने के कारण वे प्रेम न पाकर पाते हैं उनका स्वप्न। इसीलिए वे बहुधा आदर्श पत्नी प्राप्त करके भी हृदयदान की दिशा से विमुख रहकर अपने गार्हस्थ्य जीवन के स्वर्गीय शान्ति सुख से वंचित रह जाते हैं।

हमारे देश में स्त्री का संसार प्रायः पुरुष से भिन्न होता है। व्यस्तता और खीझ के कारण प्रायः पुरुष स्त्री को अपनी उलझनों, ग्रंथियों और असुविधाओं का परिचय तक नहीं देते। इसका परिणाम यह होता है कि स्त्री उनसे दूर हो जाती है।

कमरे में बिजली का प्रकाश फैला हुआ था। खिड़की का एक किवाड़ खुला था, दूसरा बन्द। एक काली बिल्ली चारपाई के नीचे दूध की कटोरी में मुंह डाले हुए, उसकी तलछट को बड़े इतमीनान से चाट रही थी। प्रायः उसकी लपकती जीभ होठों और मूंछों पर आ जाती और वह अपनी चमकती आँखों से कभी-कभी इधर-उधर देखने लगती। वहीं पास ही, शीतलपाटी बिछाये हुए, रेणु चुपचाप लेटी हुई थी। ऊपर से उसने चद्दर डाल ली थी, तकिये पर हाथ के सहारे उसका सिरमात्र टिका हुआ था। रज्जन उसी ओर करवट लिये चुपचाप लेटा हुआ था। उसकी दृष्टि माँ की ओर थी।

गिरधारी घर पहुँचते ही घड़घड़ाता हुआ रेणु के पास जा रहा था।

अपने कमरे के निकट आते ही उसने कहा—आप लोग यहाँ बैठिये। मैं अभी आया। फिर रेणु के पास पहुँचते ही गिरधारी ने उसका हाथ थाम लिया। देखा, वास्तव में उसको ज्वर आ गया है।

स्वामी के कर-स्पर्श के साथ ही रेणु उठ बैठी। गिरधारी बोला—मुझे माफ़ कर दो रेणु। आज यह ज्वर तुमको मेरे ही कारण आया है। तुम्हें पता है, हमारा जीवन आज कितने संघर्षों के बीच से गुज़र रहा है। नगर के

सार्वजनिक जीवन को जाग्रत, उन्नत और गतिशील रखने का उत्तरदायित्व बहुत अंशों में हमारे ऊपर रहता है। हम लोग एक आदर्श को लेकर चल रहे हैं। सच पूछो तो हम व्यक्ति नहीं हैं, समाज हैं; क्योंकि उसका प्रतिनिधित्व वहन करते हैं। हमारा प्रत्येक क्षण उसी उद्देश्य की पूर्ति में व्यतीत होना चाहिये। ऐसी दशा में अगर हमीं अपने निजी अभावों का रोना रोयें, तो उन लोगों की क्या अवस्था होगी, जिनके लिए हम आदर्श बने हैं! हमको देखकर वे क्या सीखेंगे? हम अपने जीवन से उन्हें क्या सिखला सकेंगे?—उनके लिए हमारा क्या सन्देश होगा? रज्जन बीमार था, वह अच्छा हो रहा है। उसे अच्छा होना ही चाहिये। किन्तु क्या तुम सोचती हो कि एक रज्जन ही तुम्हारा बच्चा है! यह विनायक कौन है? और भी हजारों विनायक हैं, हमें उनकी ओर भी देखना पड़ता है। वे सब हमसे ऐसी आशा रखते हैं। हम उनकी आशा को पूर्ण न करें, तो मुंह दिखलाने को कहीं कोई स्थान हमारे लिए बचेगा?

गिरधारी पास खड़ा था और रेणु की आँखों से आँसुओं का झरना झर रहा था। तब उसने कहा—"रोओ मत रेणु। इस तरह रोना तुम्हारे लिए शोभन नहीं है। उधर विनायक और मालती आये हुए हैं। दो-तीन दिनों के अन्दर मिलों में हड़ताल होने की सम्भावना है। पता नहीं, क्या हो! पत्र और प्रेस किस तरह चल रहे है, तुम्हें मालूम ही है। रज्जन अच्छा हो नहीं पाया था कि तुम भी बीमार हो बैठीं। ऐसे समय हमें सोच-समझकर चलना है। अगर हम घबड़ा गये और कहीं कोई गलती कर बैठे, तो हम कहीं के न रहेंगे। दोष न तुम्हारा है, न मेरा। शताब्दियों से हम परम्पराओं, रूढ़ियों और संस्कृति के नाम पर अनेक प्रकार की अबौद्धिक मान्यताओं के शिकार होते आ रहे हैं। हमारे संस्कारों में इतनी अधिक जड़ता भिद गई है कि जीवन को पूर्ण बनाने के सम्बन्ध में कोई भी नवप्रयोग करते हुए हम झिझकते और डरते हैं। नवजीवन, नवनिर्माण और नवचेतना के जो भी मार्ग हमें देख पड़ते है, केवल इस विचार से हम उन्हें नहीं अपनाते कि हमसे सम्बन्ध रखनेवाला समाज क्या जाने उन्हें स्वीकार

के किनारे किवाड़ों की ओट में आकर खड़े हो गये। ज्यों ही गिरधारी ने अपना कथन समाप्त किया, त्यों ही मालती हँसती हुई भीतर आ गयी। बोली—नमस्ते भाभी।

चद्दर लपेटे हुए रेणु उठ खड़ी हुई। बोली—नमस्ते और फिर शर्माजी की ओर देखती हुई कहने लगी—चलो, खाना खा लो। तुम भी चलो मालती।

किन्तु शर्माजी ने कहा—लेकिन विनायक से भी पूछ लेना होगा। सम्भव है, वह भी खाये। उस दशा में बाजार से कुछ मँगा लेना होगा।

मालती झट से उछलकर विनायक के पास दौड़ गयी और क्षण भर में लौट आयी। रेणु अभी रसोईघर में पहुँची ही थी। मालती बोली—वे खाना खाकर आये हैं। लेकिन भाभी, तुम्हारी तबियत जब ठीक नहीं, तब तुम आराम क्यों नहीं करतीं? मैं भाईजी को परोसकर खिला दूँगी। फिर लोचन से बोली—जाओ आसन बिछाओ और पानी रखो चलकर।

रेणु ने मालती का प्रस्ताव सुना, तो वह एकाएक भीतर-ही-भीतर तिलमिला उठी। सोचने लगी—आज जरा-सा ज्वर हो आने पर उनको खाना परोसने का अधिकार यह अपने हाथ में ले रही है। कल कौन जाने आगे बढ़कर वह मेरे सौभाग्य का सारा गौरव ही हस्तगत कर ले! किन्तु मालती के प्रति उत्पन्न हुई कुत्सा की जरा-भी झलक उसने अपनी चेष्टा में नहीं आने दी। क्योंकि साथ-ही-साथ वह सोचने लगी—क्या हुआ, यदि वह अपना उत्साह प्रकट करती है। फिर उसकी हर बात में मेरे सौभाग्य के लिए स्पर्धा ही सन्निहित है, यह सोचना भी एक बहुत तुच्छ वृत्ति का द्योतक है।

वह बोली—"अच्छा हाँ, ठीक है। आज उन्हें तुम्हीं खाना परोसकर खिला दो। मैं पास बैठी-बैठी देखूँगी। सचमुच, मुझे बड़ा अच्छा लगेगा।' अपने इस कथन के साथ उसके शुष्क और म्लान अधरों पर मन्द हास झलक आया।

रेणु खड़ी-खड़ी सब बतलाती रही। बोली—तबियत ठीक थी नहीं। इसलिए मैंने पूरियाँ ही बना लीं। जल्दी-जल्दी में बहुत साधारण-सा खाना बना है। तुमको भला काहे को पसन्द आयेगा।

मालती हर एक चीज को थालियों में लगाने लगी।

रेणु बोली—अगर मुझे मालूम होता कि तुम फिर आओगी, तो मैं कुछ और बना लेती।

मालती ने कहा—यों चाहे न आती, पर ऐसी परिस्थिति में आये बिना मेरा जी नहीं माना।

रेणु को मालती की यह बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कृतज्ञता से वह बोली—मैं इसके लिए तुम्हारी बहुत ऋणी हूँ।

मालती खाना परोस चुकी थी।

रेणु बोली—बस, अब ठीक है। लेकिन तुमने अपने लिए तो कुछ परोसा ही नहीं। नहीं-नहीं, यह ठीक नहीं है। दो पूरी और रखलो। तुम्हें मेरी कसम। मेरे ऐसे सौभाग्य कहाँ जो तुमको खिलाने का अवसर पाऊँ।

लोचन इसी समय आ गया। रेणु बोली—खाना ले जाओ और देखो, झट से बाजार से पावभर मिठाई ले आओ। अच्छा! ये पैसे लो—और जाकेट की जेब से पैसे निकालकर उसने दे दिये।

लोचन ने पैसे जेब में डाल लिये। दोनों थालियाँ उठाकर आहिस्ता-आहिस्ता वह शर्माजी के कमरे में ले गया।

रेणु बोली—अब चलो, मैं भी चलकर वहीं बैठूँगी।

वह अभी दस कदम चली होगी कि बोल उठी—उस समय मैंने अगर तुमसे कोई अशिष्ट या कटु बात कह दी हो, तो मुझे क्षमा कर देना। कभी-कभी मैं बहुत ऊटपटाँग बोल जाती हूँ।

मालती अनुभव कर रही थी—कैसा निष्कपट स्वभाव है! क्षण में रुष्ट, क्षण में तुष्ट, और इस समय तो इनके व्यवहार की मृदुलता वास्तव में प्रशंसनीय है। मुसकराती हुई बोली—मैं भी तो तुम्हें अक्सर तंग किया करती हूँ भाभी। मुझे अपनी छोटी बहन समझकर इसी तरह क्षमा कर दिया करो—मैं चाहे जो अपराध करूँ!

के किनारे किवाड़ों की ओट में आकर खड़े हो गये। ज्यों ही गिरधारी ने अपना कथन समाप्त किया, त्यों ही मालती हँसती हुई भीतर आ गयी। बोली—नमस्ते भाभी।

चद्दर लपेटे हुए रेणु उठ खड़ी हुई। बोली—नमस्ते और फिर शर्म्माजी की ओर देखती हुई कहने लगी—चलो, खाना खा लो। तुम भी चलो मालती।

किन्तु शर्म्माजी ने कहा—लेकिन विनायक से भी पूछ लेना होगा। सम्भव है, वह भी खाये। उस दशा में बाजर से कुछ मँगा लेना होगा।

मालती झट से उछलकर विनायक के पास दौड़ गयी और क्षण भर में लौट आयी। रेणु अभी रसोईघर में पहुँची ही थी। मालती बोली—वे खाना खाकर आये हैं। लेकिन भाभी, तुम्हारी तबियत जब ठीक नहीं, तब तुम आराम क्यों नहीं करतीं? मैं भाईजी को परोसकर खिला दूंगी। फिर लोचन से बोली—जाओ आसन बिछाओ और पानी रक्खो चलकर।

रेणु ने मालती का प्रस्ताव सुना, तो वह एकाएक भीतर-ही-भीतर तिलमिला उठी। सोचने लगी—आज ज़रा-सा ज्वर हो आने पर उनको खाना परोसने का अधिकार यह अपने हाथ में ले रही है। कल कौन जाने आगे बढ़कर वह मेरे सौभाग्य का सारा गौरव ही हस्तगत कर ले! किन्तु मालती के प्रति उत्पन्न हुई कुत्सा की जरा-भी झलक उसने अपनी चेष्टा में नहीं आने दी। क्योंकि साथ-ही-साथ वह सोचने लगी—क्या हुआ, यदि वह अपना उत्साह प्रकट करती है। फिर उसकी हर बात में मेरे सौभाग्य के लिए स्पर्द्धा ही सन्निहित है, यह सोचना भी एक बहुत तुच्छ वृत्ति का द्योतक है।

वह बोली—"अच्छा हाँ, ठीक है। आज उन्हें तुम्हीं खाना परोसकर खिला दो। मैं पास बैठी-बैठी देखूंगी। सचमुच, मुझे बड़ा अच्छा लगेगा।" अपने इस कथन के साथ उसके शुष्क और म्लान अधरों पर मन्द हास झलक आया।

रेणु खड़ी-खड़ी सब बतलाती रही। बोली—तबियत ठीक थी नहीं। इसलिए मैंने पूरियाँ ही बना लीं। जल्दी-जल्दी में बहुत साधारण-सा खाना बना है। तुमको भला काहे को पसन्द आयेगा!

मालती हर एक चीज को थालियों में लगाने लगी।

रेणु बोली—अगर मुझे मालूम होता कि तुम फिर आओगी, तो मैं कुछ और बना लेती।

मालती ने कहा—यों चाहे न आती, पर ऐसी परिस्थिति में आये बिना मेरा जी नहीं माना।

रेणु को मालती की यह बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कृतज्ञता से वह बोली—मैं इसके लिए तुम्हारी बहुत ऋणी हूँ।

मालती खाना परोस चुकी थी।

रेणु बोली—बस, अब ठीक है। लेकिन तुमने अपने लिए तो कुछ परोसा ही नहीं। नहीं-नहीं, यह ठीक नहीं है। दो पूरी और रखो। तुम्हें मेरी क़सम। मेरे ऐसे सौभाग्य कहाँ जो तुमको खिलाने का अवसर पाऊँ।

लोचन इसी समय आ गया। रेणु बोली—खाना ले जाओ और देखो, झट से बाज़ार से भाजकर मिठाई ले आओ। अच्छा! ये पैसे लो—और जाकेट की जेब से पैसे निकालकर उसने दे दिये।

लोचन ने पैसे जेब में डाल लिये। दोनों थालियाँ उठाकर आहिस्ता-आहिस्ता वह शर्माजी के कमरे में ले गया।

रेणु बोली—अब चलो, मैं भी चलकर वहीं बैठूँगी।

वह अभी दस कदम चली होगी कि बोल उठी—उस समय मैंने अगर तुमसे कोई अशिष्ट या कटु बात कह दी हो, तो मुझे क्षमा कर देना। कभी-कभी मैं बहुत ऊटपटाँग बोल जाती हूँ।

मालती अनुभव कर रही थी—कैसा निष्कपट स्वभाव है! क्षण में रुष्ट, क्षण में तुष्ट, और इस समय तो इनके व्यवहार की मृदुलता वास्तव में प्रशंसनीय है। मुसकराती हुई बोली—मैं भी तो तुम्हें अवसर तंग किया करती हूँ भाभी। मुझे अपनी छोटी बहन समझकर इसी तरह क्षमा कर दिया करो—मैं चाहे जो अपराध करूँ!

पंद्रह

हिंसा एक पशु-वृत्ति है। मनुष्य में हम कभी उसे वांछनीय नहीं मान सकते। स्वाभाविक होकर भी है वह एक प्रमादजन्य वृत्ति ही। किन्तु प्रति-हिंसा उससे भी भयावह वस्तु है। हिंसा क्षणिक विस्फोट है, तो प्रतिहिंसा उसकी अपेक्षा कहीं अधिक स्थायी। हिंसा जल्दी-से-जल्दी उस पार पहुँचा देती है। किन्तु प्रतिहिंसा का ज्वलन बराबर चलता रहता है। वह ऐसा क्रम है, जो कभी भंग ही नहीं होता। भाव-प्रवण व्यक्ति इसके शिकार अधिक होते हैं। वे ऐसी प्रतिज्ञाएँ, आश्वासन और संकल्प प्रकट कर देते हैं, जिनका वे जीवन में कभी निर्वाह कर नहीं पाते। इसका परिणाम यह होता है कि सम्बधि लोग छल, प्रवंचना और कपट की काल्पनिक विभीषिकाओं से अक्रान्त हो होकर क्षोभ, द्वेष और प्रतिहिंसा का अवलम्ब ग्रहण कर लेते हैं। ऐसी प स्थिति में दुर्बल, भीरु और कायर व्यक्ति अपने को छिपाने का जितना अधि प्रयत्न करते हैं, उतना ही अधिक वे प्रकट और विज्ञापित हो-होकर अपकी के भागी बन जाते हैं।

इस स्थिति से मुक्ति प्राप्त करने का एक ही मार्ग है। सत्य और स का अवलम्ब।

घर में पहुँचते ही डॉ० ललित का ध्यान सबसे पहले मालती की गया। बोले—हल्लो कामरेड मालती, हाऊ डू-यू-डू ?

मालती ने तुरन्त साड़ी ठीक करते हुए उत्तर दिया—"हाऊ डाक्टर ललित ?"—किन्तु उसके स्वर की अपरूपता में उत्तर देने की और विवशता अप्रकट न रह सकी। वह तुरन्त उठकर आचमन करने

ललित ने आगे बढ़कर रेणु की ओर देखा। बोले—तबियत आपने भारी कर ही ली। कई दिन तक आपको बराबर जगना भी त

आज खाया क्या था ?

इतना कहकर उन्होंने थर्मामीटर का पारा नीचे उतारकर मुँह में लगाने के लिए रेणु को दे दिया।

मालती चुपचाप सुनती रही।

शर्माजी बोले—आज इसने खाया कुछ नहीं, उपवास किया है। मेरा खयाल है डाक्टर, अब इसकी तबियत उस समय से अच्छी होगी, जब मुझे सूचना मिली थी। क्यों मालती ?

मालती जैसे चौंक पड़ी। बोली—ऐं।...क्या पूछा आपने ?...तबियत तो मेरा खयाल है वैसी ही होगी।

ललित ने कहा—जो हो, लेकिन अच्छा होता, ये आराम करतीं।

वह बोला—इस समय तो दवा कहीं मिलेगी नहीं; क्योंकि समय बहुत हो गया। सवेरे मँगा लीजिएगा। नुस्खा मैं अभी दिए देता हूँ।

और कोई होता तो मालती इस समय कहे बिना कदापि न चूकती कि दिन-भर इन्होंने इतना आराम किया है, इतना अधिक कि...। लेकिन ललित के वार्तालाप में किसी प्रकार का योग देना उस समय उसकी रुचि के प्रतिकूल हो रहा था।

ललित की दृष्टि बराबर घड़ी की ओर लगी थी। उसने पूछा—रञ्जन तो सो रहा है न ?

शर्माजी ने आचमन करने के बाद कहा—चलिये उनको भी देख लीजिये।

ललित ने रेणु के हाथ से थर्मामीटर लेकर देखा और बतलाया—एक-सौ-एक है शर्माजी। चिन्ता की कोई बात नहीं है। फिर भी ज़रा प्रसन्न रखने की चेष्टा कीजिये। अधिक गम्भीरता संकट का कारण बन सकती है।

ललित को लेकर रेणु रञ्जन के पास जा पहुँची। पीछे-पीछे शर्माजी और मालती। ललित एक मिनट तक दूर से ही खड़ा देखता रहा। बोला—"बिल्कुल स्वाभाविक नींद है।"

फिर हाथ देखकर उसने कहा—"नो टेम्परेचर ऐटाल।"

बाद ललित बाहर जाने लगा तो चलते समय बोला—उस दिन की
ीच बहुत सुन्दर थी, मिस मालती।
मनस्क भाव से मालती ने उत्तर दिया—खयाल है आपका।
लत बाबू थोड़ा ठिठके और कुंठित भाव से कहने लगे—खयाल तो
ी है मिस मालती। खयाल से आदमी को मुक्ति कहाँ मिलती है।
लती ने कुटिल हास के साथ उत्तर दिया—अच्छा तो यह मुक्ति के
ी खोज आपका नवीन प्रयोग है। 'आई-सी। दी अटेम्ट इज ग्रेट।'
ललित कुछ अप्रतिभ-सा हो गया। फिर उसने कोई उत्तर नहीं दिया।
ाजी उसे द्वार तक भेजने चले आये। ललित जब चलने लगा तो बोला—
ाजी एक बात कहूँ, अगर आप बुरा न मानें।
शर्म्माजी ने आश्चर्य्य के साथ पूछा—कहिये! बुरा मानने की ऐसी क्या
त है?
ललित ने कहा—इधर कुछ दिनों से मिस मालती के साथ आपकी जो
ात्मीयता स्थापित हो रही है, उस पर शहर में बड़ी चर्चा है। आपकी प्रतिष्ठा
ो इससे धक्का पहुँच सकता है।
घर के अन्दर मालती के साथ ललित बाबू की जो बातचीत हुई, वही
शर्म्माजी के लिए यथेष्ट चिन्त्य हो रही थी। उस पर ललित ने एक तह
और जमा दी। अतएव इस समय उनका यह कथन शर्म्माजी को सर्वथा असह्य
हो उठा। इसका एक कारण यह भी था कि वे और सब प्रकार की बातें
सुनने को तत्पर थे, किन्तु अपने चरित्र के सम्बन्ध में किसी प्रकार का दोषा-
रोप वे कभी सहन नहीं कर सकते थे। अतएव अपने स्वाभाविक क्षोभ को वे
दबा नहीं सके। बोले—जो लोग मुझसे परिचित हैं ललित बाबू, वे मुझ पर
कभी हँस नहीं सकते। इस कारण नहीं कि मैं आदमी नहीं, देवता हूँ। वरन्
इस कारण कि स्वतः उनका मुँह इतना उज्ज्वल नहीं है जो मेरे उपहास से
खिल उठेगा और जो लोग मुझ से अपरिचित है, उनकी टीका-टिप्पणी की
मुझे रत्ती-भर भी परवा नहीं है। सूखी हड्डी चबाने की वृत्ति कभी श्वा
त्याग नहीं सकता। फिर आपको इस तरह की बात करना शोभा भी नह

देता, ललित बाबू। आपने मनोविज्ञान पढ़ा ही होगा। किन्तु, मैं उसे पढ़ाता रहा हूँ। समझ में आया कि नहीं ?

"मैं इस विषय में आपसे फिर कभी बातें करूँगा।"—ललित ने ऐसे भाव से कहा, जैसे उसने शर्म्माजी की बातें सुनी हो न हो। फिर वह बोला—इस समय आपका चित्त ठिकाने नहीं है।

शर्म्माजी ने कह दिया—हो भी तो क्षमा कीजियेगा, मुझे इस तरह की बातें सुनने का ज़रा भी अवकाश नहीं है।

ललित बोला—आप बुरा मान गये। आप पर जो कुछ अधिक श्रद्धा रखता हूँ उसी से प्रेरित होकर मैंने आपको यह सूचना दे देना उचित समझा। मैं अगर ऐसा जानता कि…।

शर्म्माजी बात काटकर बीच में ही बोल उठे—आपको शायद पता नहीं है, मैं उसका शिक्षक रहा हूँ। इसके सिवा वह मुझे भाईजी कहती है।

ललित ने कहा—मैं माफी चाहता हूँ।

और इतना कहकर वह चलने लगा।

शर्म्माजी ने कह दिया—'ज़रा ठहरिये। मैं मालती से कहता हूँ, वह आपको घर पहुँचाती हुई चली जायगी।'—और वे मकान के ऊपर आकर बोले—मालती, अब तो यहाँ तुम्हारा कोई काम है नहीं। न हो ललित बाबू को उनके मकान पर छोड़ती हुई चली जाओ।

मालती असमंजस में पड़ गयी। वह स्पष्ट रूप से यही कहना चाहती थी कि ललित के साथ उसकी किसी प्रकार की अनबन है। अनबन की बात कह देना यों साधारणतया बड़ा सरल है, किन्तु वे कारण क्या हैं, जिनसे ऐसी अनबन हुई, मालती इस विषय में मौन रहना ही अधिक आवश्यक समझती थी। किन्तु शर्म्माजी का प्रस्ताव सुनकर वह एकाएक जैसे सन्न रह गयी। सोचने लगी—आखिर इनको हो क्या गया। ललित को साथ लेकर मैं उसे उनके घर छोड़ती जाऊँ,—इसका अभिप्राय क्या है ? जब कि अभी इसी समय की बातचीत में उसके मनोभाव मेरे प्रति बहुत अच्छे नहीं प्रकट हुए। बल्कि यही अधिकाधिक स्पष्ट हुआ है कि इन दोनों के बीच वहीं कोई एक

इसके वाद ललित वाहर जाने लगा तो चलते समय वोला—उस दिन की तुम्हारी स्पीच वहुत सुन्दर थी, मिस मालती।

अन्यमनस्क भाव से मालती ने उत्तर दिया—खयाल है आपका।

ललित वावू थोड़ा ठिठके और कुंठित भाव से कहने लगे—खयाल तो रहता ही है मिस मालती। खयाल से आदमी को मुक्ति कहाँ मिलती है।

मालती ने कुटिल हास के साथ उत्तर दिया—अच्छा तो यह मुक्ति के मार्ग की खोज आपका नवीन प्रयोग है। 'आई-सी। दी अटेम्ट इज़ ग्रेट।'

ललित कुछ अप्रतिभ-सा हो गया। फिर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। शर्म्माजी उसे द्वार तक भेजने चले आये। ललित जव चलने लगा तो वोला—शर्म्माजी एक वात कहूँ, अगर आप वुरा न मानें।

शर्म्माजी ने आश्चर्य्य के साथ पूछा—कहिये! वुरा मानने की ऐसी क्या वात है?

ललित ने कहा—इधर कुछ दिनों से मिस मालती के साथ आपकी जो आत्मीयता स्थापित हो रही है, उस पर शहर में वड़ी चर्चा है। आपकी प्रतिष्ठा को इससे धक्का पहुँच सकता है।

घर के अन्दर मालती के साथ ललित वावू की जो वातचीत हुई, वही शर्म्माजी के लिए यथेष्ट चिन्त्य हो रही थी। उस पर ललित ने एक तह और जमा दी। अतएव इस समय उनका यह कथन शर्म्माजी को सर्वथा असह्य हो उठा। इसका एक कारण यह भी था कि वे और सव प्रकार की वातें सुनने को तत्पर थे, किन्तु अपने चरित्र के सम्वन्ध में किसी प्रकार का दोषा-रोप वे कभी सहन नहीं कर सकते थे। अतएव अपने स्वाभाविक क्षोभ को वे दवा नहीं सके। वोले—जो लोग मुझसे परिचित हैं ललित वावू, वे मुझ पर कभी हँस नहीं सकते। इस कारण नहीं कि मैं आदमी नहीं, देवता हूँ। वरन् इस कारण कि स्वतः उनका मुँह इतना उज्ज्वल नहीं है जो मेरे उपहास से खिल उठेगा और जो लोग मुझ से अपरिचित है, उनकी टीका-टिप्पणी की मुझे रत्ती-भर भी परवा नहीं है। सूखी हड्डी चवाने की वृत्ति कभी श्वान त्याग नहीं सकता। फिर आपको इस तरह की वात करना शोभा भी नहीं

देता, ललित बाबू। आपने मनोविज्ञान पढ़ा ही होगा। किन्तु, मैं उसे पढ़ाता रहा हूँ। समझ में आया कि नहीं?

"मैं इस विषय में आपसे फिर कभी बातें करूँगा।"—ललित ने ऐसे भाव से कहा, जैसे उसने शर्माजी की बातें सुनी ही न हो। फिर वह बोला—इस समय आपका चित्त ठिकाने नहीं है।

शर्माजी ने कह दिया—हो भी तो क्षमा कीजियेगा, मुझे इस तरह की बातें सुनने का जरा भी अवकाश नहीं है।

ललित बोला—आप बुरा मान गये। आप पर जो कुछ अधिक श्रद्धा रखता हूँ उसी से प्रेरित होकर मैंने आपको यह सूचना दे देना उचित समझा। मैं अगर ऐसा जानता कि···।

शर्माजी बात काटकर बीच में ही बोल उठे—आपको शायद पता नहीं है, मैं उसका शिक्षक रहा हूँ। इसके सिवा वह मुझे भाईजी कहती है।

ललित ने कहा—मैं माफी चाहता हूँ।

और इतना कहकर वह चलने लगा।

शर्माजी ने कह दिया—'जरा ठहरिये। मैं मालती से कहता हूँ, वह आपको घर पहुँचाती हुई चली जायगी।'—और वे मकान के ऊपर आकर बोले—मालती, अब तो यहाँ तुम्हारा कोई काम है नहीं। न हो ललित बाबू को उनके मकान पर छोड़ती हुई चली जाओ।

मालती असमंजस में पड़ गयी। वह स्पष्ट रूप से यही कहना चाहती थी कि ललित के साथ उसकी किसी प्रकार की अनबन है। अनबन की बात कह देना यों साधारणतया बड़ा सरल है, किन्तु वे कारण क्या हैं, जिनसे ऐसी अनबन हुई, मालती इस विषय में मौन रहना ही अधिक आवश्यक समझती थी। किन्तु शर्माजी का प्रस्ताव सुनकर वह एकाएक जैसे सन्न रह गयी। सोचने लगी—आखिर इनको हो क्या गया। ललित को साथ लेकर मैं उसे उनके घर छोड़ती जाऊँ,—इसका अभिप्राय क्या है? जब कि अभी इसी समय की बातचीत में उसके मनोभाव मेरे प्रति बहुत अच्छे नहीं प्रकट हुए। बल्कि यही अधिकाधिक स्पष्ट हुआ है कि इन दोनों के बीच कहीं कोई एक

बड़ी खाई है, जो पट नहीं सकती. पूरी नहीं की जा सकती।

किन्तु शर्म्माजी का मन्तव्य यह था कि इन दोनों के सम्बन्धों को इतना कटु न होना चाहिये। हार्दिक एकता अगर दोनों न रख सकें, तो प्रत्यक्ष की यह पृथक्ता ही जितनी जल्दी दूर हो जाय, उतना अच्छा। पारस्परिक वैमनस्य सार्वजनिक क्षेत्र में जब साकार हो उठते हैं, तब वे उसके वातावरण को पूर्ववत् शान्त, स्थिर न रखकर उसे अधिकाधिक दूषित और पंकिल बना डालते हैं।

किन्तु इसी क्षण रेण ने कह दिया—

आज की रात वह यहीं रहेगी। मेरी तबियत ठीक नहीं है। समय भी बहुत हो गया। खन्नाजी के यहाँ जाकर फोन से कोठी में माँ जी को इसकी सूचना दे दो 'और मत्तु से कह दो, गाड़ी ले जाय!

रेणु की बात सुनकर शर्म्माजी को विस्मय हुआ, किन्तु उन्होंने फिर इस पर न किसी तरह की टीका-टिप्पणी करना उचित समझा, न किसी प्रकार का असमंजस ही प्रकट किया।

वे विनायक बाबू से कहने लगे—मैंने आपका बहुत समय ले लिया।

विनायक ने सहास उत्तर दिया—आप ऐसा न कहें।

तब डाक्टर ने आश्चर्य से सिर उठाकर कह दिया—'आई-सी।' उसने धीरे-से एक निःश्वास लिया, फिर कहा—'अच्छा, गुड नाइट।

शर्म्माजी ने नमस्कार किया।

उधर मालती लोचन से कह रही थी—देखो लोचन, यहाँ भाभी की चारपाई पड़ेगी और यहाँ मेरी।

जीवन में पहली बार आज उसके शरीर का लोम-लोम जैसे सिहर रहा था। फ़र्श पर उसके पैर रह-रहकर थिरक उठते थे।

रेणु इसी समय रज्जन की चारपाई पर एक ओर बैठती हुई कहने लगी—तुमको असुविधा तो यहाँ अवश्य होगी। लेकिन जाने क्या बात है, आज तुमको छोड़ने को मेरा जी किसी तरह राजी नहीं हुआ। माँ जी को तो कोई आपत्ति नहीं होगी?

मालती ने उत्तर दिया—वे इतने संकुचित विचार नहीं रखतीं मामी। तुम कभी मिलोगी, तो उनकी सरलता देखकर चकित हो उठोगी। फिर जब से मैं इस क्षेत्र में आयी हूँ तब से बड़े भैया का भाव मेरे प्रति बहुत उदार हो गया है। वे प्रायः कहा करते हैं—हम लोग तो कीड़े के कीड़े ही रहे। पर मुझे इस बात का अभिमान है कि हम सात भाई-बहनों में मालती इस योग्य तो हुई कि मेरे वंश का गौरव बढ़ा।

रेणु ने आश्चर्य से कह दिया—अच्छा!

मालती कहने लगी—लेकिन कितना अच्छा होता कि आज मैं तुमको वायोलिन बजाकर सुनाती।""मैं अभी आयी।

फिर वह दौड़ी-दौड़ी शर्म्माजी के पास जा पहुँची, बोली—मलू से कह दीजिये, मेरा वायोलिन भी लेता आवे।

शर्म्माजी उठे। बोले—लो, तुमने फिर तंग करना शुरू कर दिया। फिर कुछ ठहरकर बोले—जाओ न, खन्नाजी के यहाँ खुद चली जाओ। माँ जी से दो बातें कर लोगी, तो उन्हें इतमीनान भी हो जायगा।""और वायोलिन ही क्यों, घुँघरू भी क्यों न मँगवा लो!

हाथ जोड़ती हुई जरा-सी मुसकराहट होठों पर लाकर मालती बोली—"आप भी खूब हैं।" फिर वह गम्भीर हो गयी और क्षणभर रुककर दरवाजे तक आकर बोली—विनायक बाबू, जरा आप मेरे साथ चले चलें। दो मिनट में आपको रिक्त कर दूँगी। फिर आप गाड़ी पर चले जाइयेगा।

विनायक जैसे नींद से चौंक पड़ा। सम्हलता हुआ बोला—अच्छा, चलिये।

विनायक और मालती जब बाहर चल दिये, तो शर्म्माजी कमरे में इधर से उधर टहल रहे थे। एक बार खुली खिड़की से उन्होंने आकाश की ओर देखा, एक बार अपने दस वर्ष के एंलार्जमेंट को और फिर वे टहलने लगे।

सोलह

आनन्द भोग की भावात्मक अनुभूति है । किन्तु भोग इन्द्रिय जन्य है । उसकी भावना, हो सकता है कि स्थूल अर्थों में इन्द्रियजन्य ही सिद्ध हो जाती हो, किन्तु उसका एक पहलू कल्पनात्मक भी है । जब तक कोई वस्तु प्राप्य नहीं होती तब तक उसके अभाव में उसकी मोहकता एक विराट आकर्षण ज्योतित रखती है । किन्तु जो प्राप्त तो नहीं हुआ, पर हो सकने से सर्वथा निकट है, उसके त्याग का भी एक आनन्द होता है । अगम और असीम ।

मनस्तत्ववेत्ता फ्रायड के अनुयायी मानते हैं कि आकर्षण का विस्फोट भी अतृप्ति से ही होता है । किन्तु यह एकांगी दृष्टिकोण है । एक ओर सौन्दर्य्य जब असीम हो जाता है और दूसरी ओर वासना की भूख भी मर नहीं जाती, तब भी मन में एक अहंकार शेष रह ही जाता है । वह है त्याग । उसमें आनन्द की चरम अनुभूति होती है । कविता की भाषा में कहना चाहें तो कह सकते हैं—त्याग भोग की असीम सीमा है ।

घोर अँधेरी रात है । पानी बरसना अभी-अभी बन्द हुआ है । सड़क व कोलाहल शान्त है । मनुष्य की सारी व्यस्तता क्षुण्ण हो गयी है । मिलों औ फ़ैक्टरियों की क्रियाशीलता विश्राम का अवकाश ग्रहण कर चुकी है । रेल सीटी का स्वर जब कभी रात्रि की नीरवता भंग कर देता है, तो प्रतीत हो है, मानो और तो सब कुछ सो गया है, केवल मनुष्य का—आगे बढ़ते का—प्रयत्न जाग्रत है ।

विनायक को गये देर हुई । रसोई-घर के निकट की दालान में चा डाले लोचन अभी सोया है । शर्म्माजी अभी तक मार्क्स की 'डास कैपि नामक पुस्तक पढ़ रहे थे । अब उसे पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखें कभी-कभी जाती हैं । रेणु को शपथ देकर बड़ी कठिनता से मालती ने गिलास-भर

गुना दूध पिलाया है। उसने आज बड़ी हौंस से उसे वायोलिन सुनाया था। रेणु ने उसकी अँगुलियाँ चूम ली थी। पर वह रज्जन के ऊपर पंखा झलती हुई मालती से आन्तरिक जीवन-चर्चा कर रही है।

"क्यों मालती ?" उसने सहज भाव से पूछा—जब ये तुमको पढ़ाने आते थे, तब भी तुम इनके साथ कभी-कभी कोठी से बाहर जाती थी ?

"कहाँ ?" मालती ने जैसे सारे अतीत को स्मृति-पट पर लाकर उत्तर दिया—सिनेमा देखने के लिए मैं जो कभी निमंत्रित भी करती थी तो सदा टाल देते थे। एक ही निश्चित उत्तर रहा करता था—मुझे अवकाश नहीं है।

रेणु को खयाल आ गया, एक बार उन्होंने बतलाया था—मालती बैड-मिंटन के खेल में बहुत दिलचस्पी रखती है। तब एक कल्पना, एक अनुमान, उसके अन्तर को प्रेरित करने लगा। आज उस कल्पना के प्रति उसके मन में किसी प्रकार का अनुताप नहीं, विकार नहीं; यहाँ तक कि दुर्निवार क्षोभ भी नहीं।

धीरे से उसने पूछा—बैडमिंटन तो शायद कभी-कभी साथ-साथ खेलते थे।

मालती सुनकर जैसे सन्न रह गयी। एक बार उसके मन में आया—साफ इनकार क्यों न कर दे ? किन्तु इस क्षण रेणु से कुछ भी छिपाना उसे स्वीकार नहीं हुआ। बोली—हाँ, शायद एक-आध बार मेरे ज़िद करने पर खेले थे। किन्तु वह स्मृति भी बड़ी अजीब है भाभी याद आने पर दुःख होता है।

उत्सुकता और आश्चर्य के साथ रेणु ने पूछा—दुःख की भला क्या बात हो सकती है इसमें ?

"बिलकुल तुम्हारे ही जैसे मृदुल और निष्कपट स्वभाव की मेरी एक भाभी थीं। बड़ी हँसोड़, बड़ी जिन्दादिल। वे अक्सर कहा करती थी—तुम्हारे मास्टर साहब बड़े विचित्र हैं। संकोच त्यागकर बातें करना तो दूर, मेरी बात का उत्तर देने में भी शरमाते हैं। बिलकुल लड़की हैं वे।

एक दिन उन्होंने कहा—बाबूजी (मेरे पिता) आज घर नहीं हैं। फाटक पर माली बिठा दो, जिसमें कोई बाहरी आदमी अन्दर आ न सके। बहुत दिनों से बैडमिंटन नहीं खेला है। आज मास्टर साहब के साथ खेलना चाहती हैं।

सोलह

आनन्द भोग की भावात्मक अनुभूति है। किन्तु भोग इन्द्रिय जन्य है। उसकी भावना, हो सकता है कि स्थूल अर्थों में इन्द्रियजन्य ही सिद्ध हो जाती हो, किन्तु उसका एक पहलू कल्पनात्मक भी है। जब तक कोई वस्तु प्राप्य नहीं होती तब तक उसके अभाव में उसकी मोहकता एक विराट आकर्षण ज्योतित रखती है। किन्तु जो प्राप्त तो नहीं हुआ, पर हो सकने से सर्वथा निकट है, उसके त्याग का भी एक आनन्द होता है। अगम और असीम।

मनस्तत्ववेत्ता फ्रायड के अनुयायी मानते हैं कि आकर्षण का विस्फोट भी अतृप्ति से ही होता है। किन्तु यह एकांगी दृष्टिकोण है। एक ओर सौन्दर्य्य जब असीम हो जाता है और दूसरी ओर वासना की भूख भी मर नहीं जाती, तब भी मन में एक अहंकार शेष रह ही जाता है। वह है त्याग। उसमें आनन्द की चरम अनुभूति होती है। कविता की भाषा में कहना चाहें तो कह सकते हैं—त्याग भोग की असीम सीमा है।

घोर अँधेरी रात है। पानी बरसना अभी-अभी बन्द हुआ है। सड़क का कोलाहल शान्त है। मनुष्य की सारी व्यस्तता क्षुण्ण हो गयी है। मिलों और फ़ैक्टरियों की क्रियाशीलता विश्राम का अवकाश ग्रहण कर चुकी है। रेल की सीटी का स्वर जब कभी रात्रि की नीरवता भंग कर देता है, तो प्रतीत होता है, मानो और तो सब कुछ सो गया है, केवल मनुष्य का—आगे बढ़ते जाने का—प्रयत्न जाग्रत है।

विनायक को गये देर हुई। रसोई-घर के निकट की दालान में चारपाई डाले लोचन अभी सोया है। शर्म्माजी अभी तक मार्क्स की 'डास कैपिटल' नामक पुस्तक पढ़ रहे थे। अब उसे पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखें कभी-कभी झपक जाती हैं। रेणु को शपथ देकर बड़ी कठिनता से मालती ने गिलास-भर गुन-

गुना दूध पिलाया है। उसने आज बड़ी हौंस से उसे वायोलिन सुनाया था रेणु ने उसकी अँगुलियाँ चूम ली थी। पर वह रज्जन के ऊपर पंखा झलती हुई मालती से आन्तरिक जीवन-चर्चा कर रही है।

"क्यों मालती ?" उसने सहज भाव से पूछा—जब ये तुमको पढ़ाने आते थे, तब भी तुम इनके साथ कभी-कभी कोठी से बाहर जाती थीं ?

"कहाँ ?" मालती ने जैसे सारे अतीत को स्मृति-पट पर लाकर उत्तर दिया—सिनेमा देखने के लिए मैं जो कभी निमंत्रित भी करती थी तो सदा टाल देते थे। एक ही निश्चित उत्तर रहा करता था—मुझे अवकाश नहीं है।

रेणु को ख़याल आ गया, एक बार उन्होंने बतलाया था—मालती बैड-मिंटन के खेल में बहुत दिलचस्पी रखती है। तब एक कल्पना, एक अनुमान, उसके अन्तर को प्रेरित करने लगा। आज उस कल्पना के प्रति उसके मन में किसी प्रकार का अनुताप नहीं, विकार नहीं; यहाँ तक कि दुर्निवार क्षोभ भी नहीं।

धीरे से उसने पूछा—बैडमिंटन तो शायद कभी-कभी साथ-साथ खेलते थे।

मालती सुनकर जैसे मग्न रह गयी। एक बार उसके मन में आया—साफ़ इनकार क्यों न कर दे ? किन्तु इस समय रेणु से कुछ भी छिपाना उसे स्वीकार नहीं हुआ। बोली—हाँ, शायद एक-आध बार मेरे ज़िद करने पर खेले थे। किन्तु वह स्मृति भी बड़ी अजीब है जिसकी याद आने पर दुःख होता है।

उत्सुकता और आश्चर्य के साथ रेणु ने पूछा—दुःख की भला क्या बात हो सकती है इसमें ?

"बिलकुल तुम्हारे ही जैसे मृदुल और निष्कपट स्वभाव की मेरी एक भाभी थीं। बड़ी हँसोड़, बड़ी ज़िन्दादिल। वे अक्सर कहा करती थीं—तुम्हारे मास्टर साहब बड़े विचित्र हैं। नज़दीक लाकर बातें करना तो दूर, मेरी बात का उत्तर देने में भी शरमाते हैं। बिलकुल लड़की हैं वे।

एक दिन उन्होंने कहा—बाबूजी (मेरे पिता) आज घर नहीं हैं। फाटक पर माली बिठा दो, जिसमें कोई बाहरी आदमी अन्दर आ न सके। बहुत दिनों से बैडमिंटन नहीं खेला है। आज मास्टर साहब के साथ खेलना चाहती हूँ।

मैंने भाईजी को वहुत समझाया कि इसमें आपत्ति होने का पक्ष तो हमारा है। आपको क्यों हो ? पर वे वरावर इनकार ही करते रहे। इस पर भाभी को जिद हो गयी। वोलीं—तव फिर मैं ही जाकर कहती हूँ। देखें, कैसे नहीं मानते हैं। उछलती हुई गयीं, मैं भी खड़ी रही। उन्होंने कहा—मास्टर साहव, वुरा न मानें तो एक वात कहूँ।

भाईजी वोले—कहिये।

उन्होंने कहा—आप लड़की होते, तो ज्यादा अच्छा होता।

भाईजी ने उत्तर दिया—तो भी मैं आपकी वड़ी वहिन होना स्वीकार करता ! आप अगर मेरे सामने ढिठाई से पेश आतीं, तो मैं आपको डाँट देता। तव भी आप दुरुस्त न होती, तो फिर कोई और उपाय काम में लाता।

मुसकराते हुए उन्होंने पूछा—कौन-सा उपाय ? भला मैं भी सुनूँ।

भाईजी ने उत्तर दिया—भाईजी को एक चिट्ठी लिख देता कि आजकल तुम्हारी उर्वशी को रात में नींद नहीं आती है। आ न सको, तो कोई दवा ही दो।

भाभी उनकी इस वात पर निरुत्तर हो गयीं। निराश होकर लौट आयीं। वोलीं—मैं उनसे पार नहीं पा सकती।

अन्त में माँ वीच में जा पड़ीं। वोलीं—अच्छा गिरधारी वेटा, मैं पास वैठी देखूँगी। अव मेरे कहने से वहू की वात रख लो—तव कहीं राजी हुए। हम दोनों ने जी भर प्रयत्न किया ; पर वे उत्तरोत्तर हमको स्तब्ध, पराजित और अभिभूत ही करते गये। भाभी इनके वाद केवल तीन वर्ष और जीवित रहीं। प्रायः भाईजी की प्रशंसा करती हुई कहा करती थीं—ऐसा चरित्रवान व्यक्ति मैंने कहीं नहीं देखा।"

रात भीग रही है। इसलिये नहीं कि वूंदावांदी हो रही है। इसलिए भी नहीं कि भूमि, वायु और आकाश सव कुछ गीला है ; वरन् इसलिए कि वह गहरी हो रही है और इसलिए भी कि वह अपने आप में समा नहीं रही है। वह यौवन की धार पर खड़ी-खड़ी वह रही है। सिर भर उसका सतह के ऊपर है। वह मौन है कंधा लपक उठता है तो उसकी अलकों से टपकते वूंद

धमक उठते हैं।

रेणु देर तक मौन रही। मालती ने पूछा—सो रही हो भाभी ?

रेणु बोली—नहीं तो। नींद आज मुझे आ नहीं रही। लेकिन तुम सो जाओ। कहीं तुम्हारी तबियत न खराब हो जाय।

मालती ने कहा—मेरी तबियत ही ऐसी है कि खराब नहीं होती।

रेणु ने पूछा—अच्छा मालती, मैंने सुना है, तुमने अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है।

मालती जैसे निःश्वास दबा लेना चाहती है। वह अपने आप से पूछती है, क्या यह अन्तिम निश्चय है ? वह जानती है, उसने प्रायः इस बात का प्रचार तक किया है। कामना पर उसने आवरण डाला है, महत्वाकांक्षा के पर उसने रेशम के डोरों से बाँध रक्खे हैं। ग्रन्थियों को वह खोलना नहीं चाहती। उसका जीवन-विहग पंजों के बल चल रहा है। अपने आप से वह पूछती है—क्या वह कभी उड़ेगी ? क्या कभी उसके पर निष्कृति पायेंगे ? निरभ्र अम्बर में क्या वह कभी बह सकेगी ? जगत में फँसे जीवन को क्या यह कभी देखेगी ? उसकी आँखों पर यह पट्टी कैसी बँधी है ? यह कैसा अँधेरा है कि कुछ भी दृष्टिगत नहीं होता ! कौन है जो पट्टी खोलकर कहेगा कि देखो, यह जगत है, यह जीवन है ! किसकी अँगुलियाँ ऐसी सदय और अन्तर्यामी हैं !

मालती बोली—हाँ भाभी, विवाह के प्रति मेरी आस्था नहीं है।

"क्यों ?"

"क्योंकि विवाह जीवन के स्वतंत्र प्रवाह में एक अवरोध है।"

"विराम को तुम गति में कहीं जगह नहीं देना चाहतीं ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि जीवन स्थिर नहीं है। वह बह रहा है। जीवन का नाम है बहना। विवाह उसे एक जगह रोक रखता है। मैं रुकना नहीं चाहती। रोक का अर्थ है मृत्यु।"

"तो इसका मतलब यह है कि" रेणु वितृष्ण होकर पूछ बैठी

तुम एक प्रयोगशाला मानती हो। लेकिन तुम्हें पता है कि कितने आविष्कारकों ने आँखे खो दी हैं, जीवन खो दिया है, प्रकृति के आगे बुद्धि और विवेक ने अपने को शून्य—खोखला—पाया है।

"पता है भाभी, सब कुछ पता है।" मालती कहती ही चली गयी—किन्तु शून्य का भी अर्थ है, रिक्तता भी जीवन में सन्निहित एक तत्व है। उसने आगे चलकर अपने को पूर्ण किया है। आविष्कारकों ने अपनी दृष्टि को खो कर भी जनता को नवदृष्टि दी है। मृत्यु को आलिंगन करके भी उन्होंने जीवन की अमरता प्राप्त की है। उनकी साधना और संलग्नता व्यर्थ नहीं गयी। संसार और समाज के नीति-विधायकों ने उनके जीवन-काल में भले ही तिरस्कार की निधियाँ लुटायी हों, किन्तु काल के अनन्त पथ में, आगे चलकर, न ज्ञान की सीमाएँ स्थिर रहीं, न मनुष्य के स्वतन्त्र प्रयोगों ने घुटने टेके। विवाह ने मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाया है, उसने परिवार की सृष्टि की है। किन्तु फिर कुटुम्ब ने क्या किया है ?

मालती रुकी ही थी कि रेणु बोली—रुको नहीं, कहती जाओ। मैं बड़े ध्यान से सुन रही हूँ। मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है।

मालती उत्साहित हो उठी बोली—कुटुम्ब ने मनुष्य को खरीद लिया। उसने उसे पूँजी का संचय सिखाया। फिर आगे चलकर उसी पूँजी ने आज एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के आगे विवश, पंगु, हीन, दयनीय और पथ का भिक्षुक बनाकर छोड़ दिया है !

रेणु अवसन्न हो उठी। क्षणभर मौन रहकर फिर उसने पूछा—तब तो यह एक पत्नीव्रत धर्म वास्तव में तुमको बिलकुल व्यर्थ जान पड़ता होगा।

"विशेष अवस्था और अपवादों को छोड़कर—" मालती ने पलँग पर लेटे रहने की दशा से उठकर कहा—वास्तव में यह एक पत्नीव्रत और पातिव्रत धर्म भी एक प्रकार की कट्टरता ही है। इसमें जीवन ने अपने को रास्ते में लाकर एक जगह छोड़ दिया है। कल्पना और बुद्धि का स्वतन्त्र चिंतन और पदक्षेप उसने अवरुद्ध कर रक्खा है। केवल अपनी ही सन्तान को मनुष्य ने त्याग, प्रेम और समर्पण की केन्द्र-भूमि मान लिया है। मनुष्य के बीच भेदाभेद

की बीभत्स क्षुद्रता इसी की देन है।

अब रात बिलकुल भीग गयी है। केवल झिल्ली का स्वर सुनाई देता है। आकाश मूक है, वायु भी मूक है। चेतना के पलक मूक हैं। मनुष्य का अज्ञात मन भी मूक है। लेकिन गति मूक नहीं है। उपचेतना के पंख खुले हैं। मनुष्य का अन्तर्मुख खुला हुआ है। कल्पनाएँ कल्लोल कर रही हैं। मनुष्य की वासना अब बन्दिनी नहीं रह गयी। समाज के बन्धन टूट गये हैं। नीति का आतंक छिन्न-भिन्न हो गया है। मनुष्य ने त्राण पाया है।

रेणु की आँख झपकी ले रही है। मालती अपनी बात कह चुकी, पर किसी ने हाँ-ना-ना नहीं की। कोई प्रश्न अब नहीं उठा। जीवन की स्वच्छन्द गति में मानो, जिज्ञासा, कुतूहल, उत्सुकता और नाना प्रश्न समाहित हो गये हैं।

मालती बोली—भाभी!

लो, उत्तर की सत्ता भी निष्पन्न हो चली। मालती का मन स्थिर नहीं है। वह उठना चाहती है। उसके भीतर एक कोलाहल उठ रहा। क्या वह भी अब सो जाय? आज की यह भीगी रात उसके लिए सोने की है। सोने की होकर भी, है जगने की ही। तो सोना यहाँ जगना है।

मालती धीरे से उठी। चारपायी का शब्द कहीं कुछ कह न उठे। धीरे—और धीरे। चुपचाप। लो, चारपायी भी चुप ही रही। मालती खड़ी हो गई। पैरों में शब्दों के रंग—झंकार—वाली चीज कहाँ से आयी! तलवे हैं कि पल्लव?—न, एक शब्द तक यहाँ मृत्यु है। चोरी, छल, कपट, प्रवंचना?—न, जहाँ राग है, वहाँ द्वेष कहाँ?—कैसी प्रवंचना? यहाँ सब अपना है।

'सपना?"

"नहीं प्रत्यक्ष।"

"आगे बढ़ना?"

"प्रमाद है।"

"प्रमाद भी जीवन में एक स्थान पर गति है।"

तुम एक प्रयोगशाला मानती हो। लेकिन तुम्हें पता है कि कितने आविष्कारकों ने आँखे खो दी हैं, जीवन खो दिया है, प्रकृति के आगे बुद्धि और विवेक ने अपने को शून्य—खोखला—पाया है।

"पता है भाभी, सब कुछ पता है।" मालती कहती ही चली गयी—किन्तु शून्य का भी अर्थ है, रिक्तता भी जीवन में सन्निहित एक तत्व है। उसने आगे चलकर अपने को पूर्ण किया है। आविष्कारकों ने अपनी दृष्टि को खो कर भी जनता को नवदृष्टि दी है। मृत्यु को आलिंगन करके भी उन्होंने जीवन की अमरता प्राप्त की है। उनकी साधना और संलग्नता व्यर्थ नहीं गयी। संसार और समाज के नीति-विधायकों ने उनके जीवन-काल में भले ही तिरस्कार की निधियाँ लुटायी हों, किन्तु काल के अनन्त पथ में, आगे चलकर, न ज्ञान की सीमाएँ स्थिर रहीं, न मनुष्य के स्वतन्त्र प्रयोगों ने घुटने टेके। विवाह ने मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाया है, उसने परिवार की सृष्टि की है। किन्तु फिर कुटुम्ब ने क्या किया है ?

मालती रुकी ही थी कि रेणु बोली—रुको नहीं, कहती जाओ। मैं बड़े ध्यान से सुन रही हूँ। मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है।

मालती उत्साहित हो उठी बोली—कुटुम्ब ने मनुष्य को खरीद लिया। उसने उसे पूँजी का संचय सिखाया। फिर आगे चलकर उसी पूँजी ने आज एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के आगे विवश, पंगु, हीन, दयनीय और पथ का भिक्षुक बनाकर छोड़ दिया है!

रेणु अवसन्न हो उठी। क्षणभर मौन रहकर फिर उसने पूछा—तब तो यह एक पत्नीव्रत धर्म वास्तव में तुमको बिलकुल व्यर्थ जान पड़ता होगा।

"विशेष अवस्था और अपवादों को छोड़कर—" मालती ने पलँग पर लेटे रहने की दशा से उठकर कहा—वास्तव में यह एक पत्नीव्रत और पातिव्रत धर्म भी एक प्रकार की कट्टरता ही है। इसमें जीवन ने अपने को रास्ते में लाकर एक जगह छोड़ दिया है। कल्पना और बुद्धि का स्वतन्त्र चिंतन और पदक्षेप उसने अवरुद्ध कर रक्खा है। केवल अपनी ही सन्तान को मनुष्य ने त्याग, प्रेम और समर्पण की केन्द्र-भूमि मान लिया है। मनुष्य के बीच भेदा

की बीभत्स क्षुद्रता इसी की देन है।

अब रात बिलकुल भीग गयी है। केवल झिल्ली का स्वर सुनाई देता है। आकाश मूक है, वायु भी मूक है। चेतना के पलक मूक हैं। मनुष्य का अन्तःमन भी मूक है। लेकिन गति मूक नहीं है। उद्वेलना के पंख खुले हैं। मनुष्य का अन्तर्मुख खुला हुआ है। कल्पनाएँ कल्लोल कर रही हैं। मनुष्य की कांक्षा अब बन्दिनी नहीं रह गयी। समाज के बन्धन टूट गये हैं। नीति का आतंक छिन्न-भिन्न हो गया है। मनुष्य ने त्राण पाया है।

रेणु की आँखें झपकी ले रही हैं। मालती अपनी बात कह चुकी, पर किसी ने हाँ-या-ना नहीं की। कोई प्रश्न अब नहीं उठा। जीवन की स्वच्छन्द गति में मानो, जिज्ञासा, कुतूहल, उत्सुकता और नाना प्रश्न समाहित हो गये हैं।

मालती बोली—भाभी !

लो, उत्तर की सत्ता भी निष्पन्न हो चली। मालती का मन स्थिर नहीं है। वह उठना चाहती है। उसके भीतर एक कोलाहल उठ रहा। क्या वह भी अब सो जाय? आज की यह भीगी रात उसके लिए सोने की है। सोने की होकर भी, है जगने की ही। तो सोना यहाँ जगना है।

मालती धीरे से उठी। चारपायी का शब्द कहीं कुछ कह न उठे। धीरे—और धीरे। चुपचाप। लो, चारपायी भी चुप हो रही। मालती खड़ी हो गई। पैरों में शब्दों के रंग—झंकार—वाली चीज कहाँ से आयी! तलवे हैं कि पल्लव?—न, एक शब्द तक यहाँ मृत्यु है। चोरी, छल, कपट, प्रवंचना?—न, जहाँ राग है, वहाँ द्वेष कहाँ?—कैसी प्रवंचना? यहाँ सब अपना है।

'सपना?"

"नहीं प्रत्यक्ष।"

"आगे बढ़ना?"

"प्रमाद है।"

"प्रमाद भी जीवन में एक स्थान पर गति है।"

"ह्रासमूलक।"

"कौन कह सकता है? अमित, विह्वल और पराभूत ह्रास भी विकास पूर्वाभास होता है।"

"और भाभी?"

"भाभी सोती हैं, उनको सोना है। वे मालती तो नहीं हैं! भाभी माँ हैं, मालती तो लता है। भाभी सफल हैं।—और मालती?"

मालती आगे बढ़ रही है।

भड़-भड़-भड़!!!

अरे! यह क्या?

यह बिल्ली है। मालती दो पग पीछे हट आयी। उसने भाभी की ओर भी देखा।

इतना भय! इतना!! छिः!!!

मालती बढ़ी, फिर बढ़ी और बढ़ती चली गयी!

सत्रह

यह छाया कैसी देख पड़ रही है? कोई खड़ा है क्या?

हाँ खड़ा है।

लेकिन यह है कौन?

कैसे जान पड़े, कौन है!

छाया ग़ायब हो गयी। या हो सकता है कि पीछे हट गयी हो।

इसी समय ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई साँस ले रहा हो। स्वर निकटता और छाया का गताभास। विचित्र बात है। छाया का अभी आकार ही देखा था। आज उसमें शब्द भी फूटने लगा और लो, उसमें चल भी हो रही है। सीना उभर रहा है और सिमट रहा है। यह आया

सी साँस का स्वर। आखिर कितनी देर तक चुप रहा जाय और क्यों ? तब बोल उठे—कौन ?

छाया झट से निकट आकर बहुत धीरे से बोली—मैं हूँ।

"कौन ? मालती ?"

"हाँ, मैं...।"

"मुझे विश्वास नहीं होता।"

"न हो। लेकिन मैं ही हूँ।

"क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ।

"नहीं, मैं प्रत्यक्ष हूँ।

वे उठ बैठे और कुछ टटोलने लगे।

मालती जरा भी अस्त-व्यस्त नहीं हुई। बोली—'आप सोये नहीं ? और से जान पड़ा कि उसके हाथ को कोई खींच रहा है। वह पलंग पर आ गयी। थ छूट गये।

शर्माजी ने उत्तर दिया—हाँ, नहीं सोया। नींद नहीं आयी।

मालती ने पूछा—क्यों ?

स्पर्शमात्र से गिरधारी कुछ विकंपित-सा हो उठा। वह सोचने लगा, अपने जीवन-लक्ष्य की विडम्बना ही क्या उसे देखनी होगी ? जिस उद्देश्य के लिए उसका जीवन बना है, क्या यह नारी अपनी एक ही चिनगारी से उसे भस्म कर डालेगी ?

वह बोला—कह नहीं सकता, क्यों नहीं आयी।

तब मालती कुछ अस्त-व्यस्त हुई। सोचने लगी—ये इतना भी स्वीकार नहीं करना चाहते कि...। उसके भीतर एक आग्नेय अहंकार सुलग उठा।

फिर बोली—मैं बस, यही देखने आयी थी। अब जाती हूँ।

वह उठने लगी।

गिरधारी बोला—जाओगी ?

मालती ने उत्तर दिया—हाँ, चली जाऊँगी। बिना आये रह नहीं सकी तब गये बिना भी रह न सकूँगी।

"ह्रासमूलक।"

"कौन कह सकता है? भ्रमित, विह्वल और पराभूत ह्रास भी विकास पूर्वाभास होता है।"

"और भाभी?"

"भाभी सोती हैं, उनको सोना है। वे मालती तो नहीं हैं! भाभी माँ, मालती तो लता है। भाभी सफल हैं।—और मालती?"

मालती आगे बढ़ रही है।

भड़-भड़-भड़!!!

अरे! यह क्या?

यह बिल्ली है। मालती दो पग पीछे हट आयी। उसने भाभी की ओर भी देखा।

इतना भय! इतना!! छिः!!!

मालती बढ़ी, फिर बढ़ी और बढ़ती चली गयी!

सत्रह

यह छाया कैसी देख पड़ रही है? कोई खड़ा है क्या?

हाँ खड़ा है।

लेकिन यह है कौन?

कैसे जान पड़े, कौन है!

छाया ग़ायब हो गयी। या हो सकता है कि पीछे हट गयी हो।

इसी समय ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई साँस ले रहा हो। स्वर निकटता और छाया का गताभास। विचित्र बात है। छाया का अभी आकार ही देखा था। आज उसमें शब्द भी फूटने लगा और लो, उसमें चल भी हो रही है। सीना उभर रहा है और सिमट रहा है। यह आय

उसी साँस का स्वर। आखिर कितनी देर तक चुप रहा जाय और क्यों ? तब वे बोल उठे—कौन ?

छाया झट से निकट आकर बहुत धीरे से बोली—मैं हूँ।

"कौन ? मालती ?"

"हाँ, मैं···।"

"मुझे विश्वास नहीं होता।"

"न हो। लेकिन मैं ही हूँ।

"क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ।

"नहीं, मैं प्रत्यक्ष हूँ।

वे उठ बैठे और कुछ टटोलने लगे।

मालती ज़रा भी अस्त-व्यस्त नहीं हुई। बोली—'आप सोये नहीं ? और उसे जान पड़ा कि उसके हाथ को कोई खींच रहा है। वह पलंग पर आ गयी। हाथ छूट गये।

शर्माजी ने उत्तर दिया—हाँ, नहीं सोया। नींद नहीं आयी।

मालती ने पूछा—क्यों ?

स्पर्शमात्र से गिरधारी कुछ विकंपित-सा हो उठा। वह सोचने लगा, अपने जीवन-लक्ष्य की विडम्बना ही क्या उसे देखनी होगी ? जिस उद्देश्य के लिए उसका जीवन बना है, क्या यह नारी अपनी एक ही चिनगारी से उसे भस्म कर डालेगी ?

वह बोला—कह नहीं सकता, क्यों नहीं आयी।

तब मालती कुछ अस्त-व्यस्त हुई। सोचने लगी—ये इतना भी स्वीकार नहीं करना चाहते कि···। उसके भीतर एक आग्नेय अहंकार सुलग उठा।

फिर बोली—मैं बस, यही देखने आयी थी। अब जाती हूँ।

वह उठने लगी।

गिरधारी बोला—जाओगी ?

मालती ने उत्तर दिया—हाँ, चली जाऊँगी। बिना आये रह नहीं सकी अब गये बिना भी रह न सकूँगी।

गि०—क्यों ?

मालती अब ठहरना नहीं चाहती। बस चलता तो वह भाग खड़ी होती। वह अपने विरक्तिभाव को दबाती हुई बोली—मैंने ही आपको सोने नहीं ग। कितनी देर मैं वायलिन बजाती रही।

गि०—मैंने सुना था।

मा०—अच्छा नहीं लगा ?

गि०—कैसे कहूँ !

दोनों चुप हो रहे। मालती ने इसी क्षण एक निःश्वास लिया। वह उठी और बोली—मेरा इस समय यहाँ आना शायद आप कलुषित समझते हैं।

गिरधारी ने उत्तर दिया—समझती तो तुम भी हो।

मालती बोली—मेरी बात जाने दीजिये। मैं पाप-पुण्य पर विश्वास नहीं करती।

"तो इस समय इस तरह छिपकर आना क्या है ?" गिरधारी पूछ बैठा।

"क्योंकि मेरे इस क्षण की यह एक सुविधा है।" मालती ने उत्तर दिया !—"समाज के प्रतिबन्ध जहाँ मनुष्य को सीमित कर देते हैं, वहाँ उसे उन सीमाओं का उल्लंघन कर देना पड़ता है और उल्लंघन के लिए सुविधा उसका सबसे पहला पद है।"

"मानता हूँ"—गिरधारी ने उत्तर दिया—लेकिन जहाँ सीमाओं का प्रश्न ही नहीं उठता, वहाँ उसके उल्लंघन की बात सोचना मन की अस्वस्थता का ही द्योतक है।

मालती विस्मयाकुल हो उठी। बोली—आप कहते क्या हैं ! मुझे विश्वास नहीं होता कि आपके आगे सीमाओं का कोई प्रश्न नहीं।

गिरधारी गम्भीर हो गया। बोला—विश्वास दिलाने की जोखिम मैं उठा नहीं सकता। मुझे भय है कि उस दशा में मेरे निकट आने की अपेक्षा तुम और दूर हो जाओगी। विश्वास दिलाने की वस्तु है, मैं मानता भी नहीं। अपने आप वह मिलता है, अपने आप ही वह खो जाता है। अपने भीतर से ही वह उमड़ता है और वहीं विलुप्त भी हो जाता है।

"आप कह क्या रहे हैं, मैं समझ नहीं पा रही।"

"मैं अधिक न कहकर इतना ही कह देना चाहता हूँ कि अगर मैं सीमाओं में घिरा होता, तो आज तुम मुझे यहाँ न देख पड़ती। याद है, पहली बार जब तुम मुझे यहाँ छोड़ने आयी थी, तब मैंने तुमसे क्या कहा था ?

"याद नहीं आता, क्या कहा था ? शायद याद रखने योग्य तो कुछ कहा भी नहीं था ?"

"मैंने कहा था कि तुम्हें चाहता हूँ मालती, बहुत अधिक चाहता हूँ। लेकिन मेरी चाह जरा मंहगी ठहरती है। रोम्यां रोलां ने कहा है—"लव इज ए परपीचुअल ऐक्ट आव् फेथ; व्हेदर गॉड एग्जिस्ट आर नॉट, इज ए स्माल मैटर। वी बिलीव, बिकाज वी बिलीव। वी लव, बिकाज वी लव। देअर इज नो नीड आव् रीजन्स !"

अब तक कमरे में प्रकाश नहीं था। अँधेरे में ही बातचीत हो रही थी। अतएव गिरधारी उठा और उसने प्रकाश का बटन दबा दिया। प्रकाश कमरे भर में फैल गया। वह फैल गया मालती के वेश-विन्यास पर भी। गिरधारी ने लक्ष्य किया, उसके शरीर पर केवल एक रेशमी साड़ी है। ब्लाउज और बॉडिस, यहाँ तक कि पेटीकोट तक नहीं है। उसने यह भी लक्ष्य किया कि वह चुप जरूर है; किन्तु उसकी नोकीली आँखें मौन नहीं, लहरें बनाती उसकी कुंचित कुन्तल राशि स्वतः एक अंधकार है। एक तो स्किन-कलर की लहरिया साड़ी, फिर देह यष्टि के यौवन सम्भार का विलोल संताप और श्वास-प्रश्वास का प्रकृत विकर्षण और निस्सरण।

बत्ती के पास खड़ा हुआ गिरधारी बोला—जाओ मालती। अब तुम चुपचाप सो जाओ। मैंने तुमको सार्वजनिक सेवा की ओर उन्मुख करके गलती की है। लेकिन अब उसमें तुम्हें सम्मिलित रखने की गलती न करूँगा। काँटों का यह पथ तुमसे चला न जायगा। पहले मैं ललित की बातों पर विश्वास न करता था। किन्तु अब मुझे उसकी बताई सारी बातें सर्वथा सत्य जान पड़ती हैं।

मालती दारुण आघात के कारण हतप्रभ हो उठी। थोड़ी देर स्थिर रही,

लेकिन जैसे भीतर छटपटा रही हो। एकाएक भ्रूचाप और अधर अस्थिर हो उठे। बोली—क्या कहा था उन्होंने, सच-सच बतलाइये।

गिरधारी कमरे में टहलने लगा। वह सोच रहा था—इसी समय यह प्रसंग छेड़ना ठीक नहीं हुआ।

"बतलाइये न ? चुप क्यों हो रहे ?" मालती ने इस समय किंचित उग्र होकर पूछा।

गिरधारी को इतना ही ज्ञान है कि ललित के साथ कभी इसकी अत्यन्त घनिष्टता थी। इसके सिवा वह यह सोचता है कि हो-न-हो अन्य लोगों के साथ भी इसका ऐसा कुछ सम्बन्ध रहा हो। किन्तु कोई निश्चित बात न वह जानता था, न उसकी कल्पना उसके लिए सम्भव थी। तब वह बोला—उसने कहा था—मालती एक ज्वालामुखी है, लावा, गन्धक और अग्नि का विस्फोट उसके लिए साँस की एक हलचल मात्र है।

"और वह कह रहा था" कहते-कहते गिरधारी कुछ शिथिल गम्भीर हो रहा था—मालती हहराती यमुना है। तट पर पैर थहाते-थहाते प्रवाह के क्रोड़ में बहा ले जाना उसके लिए पलकों का उन्मीलन मात्र है।

अस्फुट अरुणारे अधरों से कुटिल तथा विकृत हास की रेखायें फूटने लगीं। शब्द तक निस्सृत होने में उसका कण्ठ असहयोग कर रहा था। तब बहुत अधिक जोर लगाने पर वह बोल सकी—और ?

"और अन्त में उसने यह भी कहा था।" गिरधारी पुनः बोल उठा—मालती वारुणी है। जैसी कटु, वैसी ही मादक। तरंगों के उद्वेलन मात्र से जीवन के सारे मोहों और आकर्षणों से एक बार जैसे निष्कृति ही मिल जाती है।

इसी समय सहसा रेणु की आँख खुल गयी। दूर से शर्म्माजी की आवाज़ आती जान पड़ी। आशंकाओं और सन्देहों से वह ओत-प्रोत हो उठी। वह उठी और उसने प्रकाश का बटन जो दबाया, तो सहसा उसे अपनी दृष्टि पर विश्वास नहीं हुआ। मालती जिस पलंग पर लेटी हुई थी, उस पर उसका ब्लाउज़ और बॉडिस मात्र पड़ा हुआ था।

एकाएक रेणु अप्रत्याशित सम्भावनाओं से आप्लुत हो उठी। तुरन्त वह स्वामी के कमरे की ओर बढ़ गयी और जब वहाँ पहुँची, तो देखती क्या है, मालती फ़र्श पर अस्त-व्यस्त अचेत पड़ी हुई है। उनके सिर के नीचे एक तकिया रक्खी हुई है। शर्माजी उस पर पंखा झल रहे हैं!

अठारह

क्या यथार्थ है क्या मिथ्या, इसकी व्याख्या होती आयी है और सदा होती रहेगी। मनुष्य अपने को पूर्ण बनाने में यत्नशील है और बना रहेगा। समाज में जो सुलभ है उसके लिए आज और कल की अवधि लगाना व्यर्थ है। मनुष्य की वह अपनी सीमा है। किन्तु दुर्लभ है, असीम और असम्भव: न केवल समाज की सामर्थ्य और परिधि की दृष्टि से, वरन् स्वतः अपनी वैयक्तिक मान्यताओं की दृष्टि से भी, उनकी ओर लपकने, बढ़ने और उन्हें उपचेतना में भी अपने भीतर स्थान देने का अर्थ अगर प्रमाद है, अस्वस्थ मन की एक भ्रान्त सृष्टि, तो प्रश्न उठता है कि क्या यह मनुष्य ही एक अस्वस्थ प्राणी है?

"आज बड़ी देर कर दी बेटा।"

किवाड़ खोलते हुए विनायक ने ज्योंही मकान के अन्दर पैर रक्खा, त्यों ही बरामदे में बिछी चारपाई पर लेटे-लेटे माँ ने कहा।

पानी तो बन्द हो गया था, पर थोड़ी बूँदा-बाँदी अब भी चल रही थी। मकान का आँगन पार करते ही विनायक ने ज़मीन पर पैर पटक दिये। लाल-टेन सामने कमरे की देहली के ऊपर रक्खी थी, किन्तु उसकी ज्योति मन्द थी। माँ अब तक उठ चुकी थीं। उन्होंने लालटेन की ज्योति बढ़ा दी। विनायक ने चुपचाप कपड़े उतारे और पैर धोये। तब उसने कहा—हाँ, आज एक जगह अटक ही जाना पड़ा। पहले ही से जाना तै था। सवेरे चलते समय मैं कहते-कहते रह गया। कोई आया तो नहीं था?

माँ बोली—मकान मालिक का आदमी आया था। कहता था—सेठ जी ने कहा है, अगर पहली तारीख को सब रुपया बेबाक न कर दिया, तो चार आदमी भेजकर, सारा सामान सड़क पर फिकवाकर, गरदनियाँ देकर, तुम लोगों को मकान से निकाल बाहर करूँगा।

भौंहें चढ़ाते हुए पहले विनायक ने कहा—अच्छा, इतनी हिम्मत! फिर उसकी अदूरदर्शिता प्रकट करते हुए जरा से होंठ फैलाकर कहने लगा—हूँ-हूँ! लालाजी को अभी पता नहीं है कि कैसा समय आ लगा है। होश ठिकाने आ जायेंगे। अभी से कहना बेकार है।

माँ बोली—पड़ोस में दीनू की माँ कहती थी कि गेहूँ का भाव और चढ़ गया। वह कल लेने गयी थी, सवा सात सेर के भाव से मिला है। एक बात उसने और कही। वह बड़ी बातूनिन है, इसीसे मुझे विश्वास कम होता है। पर सुनकर अचरज मुझे जरूर हुआ। शायद तुमने भी सुना हो। वह कहती थी—अंगरेज सरकार से जापान देश ने लड़ाई ठान ली है। लोग डर रहे हैं कि कहीं हमारे देश पर भी वह हमला न करे। वे लोग जहाज़ से बम बरसाते हैं, जिससे मकान गिरते, आग लगती और आदमी की जान तक खतरे में पड़ जाती है।

"वह ठीक कहती थी, अम्मा" विनायक ने उत्तर दिया—लेकिन रक्षा का प्रबन्ध अपनी सरकार भी करेगी। चिन्ता करने की ऐसी कोई बात नहीं है।··· जान पड़ता है, आज भी ग्वाला दूध दे नहीं गया।

माँ ने भीगे हुए कुछ चने विनायक के आगे कटोरी में रख दिये। फिर वह बोली—खली लेता हुआ इधर ही से जा रहा था। मैं दरवाज़े पर बैठी थी। कहता था, आज दूध ज़्यादा उतरा नहीं। शाम को भी जान पड़ता है नहीं उतरा। उसकी गैया का बच्चा बहुत बीमार है।···हाँ, एक चिट्ठी भी आई है। मुझे खयाल ही भूल रहा था। कमरे में···ताक पर (खोजती हुई) ···यह मिली।

चिट्ठी उसने विनायक के आगे रख दी।

विनायक ने पढ़ा तो मालूम हुआ, तारिणी ने भेजा है। लिखा है, एक

आवश्यकतावश आपको याद कर रही हूँ। किसी दिन आने की कृपा कीजिये।

पत्र पढ़कर उसने एक ओर रख दिया। चने चबाकर जब वह चारपाई पर सोने गया, उसी समय बारह का गज्जर बजा। माँ तब तक सोने लगी थीं। लालटेन सिर की ओर रखकर उसने एक बार तारिणी का पत्र फिर उठाया। शब्द वही थे, किन्तु उनके अक्षरों के अन्दर वह बार-बार कुछ खोज रहा था। उसके समक्ष पूर्णिमा के रूप में एक स्वस्थ माँसल नारी खड़ी हो जाती थी। नाक की कील में हीरे का नग और मस्तक पर दमकती हुई लाल रोरी का बूँद। बॉटल कलर की साड़ी इतनी खुशनुमा कि एक बार देखकर देह-दृष्टि की छवि आँखों में बस जाय। बॉडिस से कसा हुआ वक्ष प्रथम दर्शन में ही अपना उन्नत रूप बतला उठता है। बात कम करना, करना भी तो बहुत सोच-समझकर। हास्य की मन्द मधुर झलकी छोड़ती हुई।...लेकिन यह कितनी ग़लत बात है कि बेकार, भूखा और नंगा आदमी मन में ऐसी बातें लाता है।

पत्र एक ओर रख देता है। जी में आता है, उसे फाड़ डाले। लेकिन कल उसे वहाँ जाना जो है। पता नहीं, क्यों बुला भेजा है! मुझसे उन्हें काम ही क्या हो सकता है! लेकिन यह पत्र तारिणी ने लिखा है। पूर्णिमा ने इसमें एक शब्द तक नहीं लिखा।—क्यों? पूर्णिमा को याद करने का मतलब?

"हर चीज़ का मतलब नहीं हुआ करता। चीज़ अपने आप में खुद एक मतलब है। हाँ, तो पूर्णिमा ने, जान पड़ता है, याद नहीं की। हम ग़रीबों की याद भला कौन करता है! अगर हमारे पास भी सूट होता, अगर मैं बँगला, गाड़ी और फोन रखता होता!—पर मेरी बातों में उसको दिलचस्पी तो कुछ जरूर थी। मैं भी एकाएक इन दोनों प्रमदाओं को अपने दोनों ओर देखकर सहम गया। यहाँ तक कि एक तरह से बनता ही चला गया। फिर भी मुझे उस तरह उनके बीच चलना भी प्यारा ही लगा। लेकिन यह है कितनी ज़लील चीज़ कि मैं इन्हीं लोगों का स्वप्न देखा करता हूँ। पर मैं और करूँ भी क्या। जब और कोई काम नहीं है तो इन लोगों को उड़ाने

मां बोली—मकान मालिक का आदमी आया था। कहता था—सेठ जी कहा है, अगर पहली तारीख को सब रुपया बेबाक न कर दिया, तो चार दमी भेजकर, सारा सामान सड़क पर फिकवाकर, गरवनियाँ देकर, तुम गों को मकान से निकाल बाहर करूँगा।

भौंहें चढ़ाते हुए पहले विनायक ने कहा—अच्छा, इतनी हिम्मत! फिर सकी अदूरदर्शिता प्रकट करते हुए जरा से होंठ फैलाकर कहने लगा—हूँ-हूँ! ालाजी को अभी पता नहीं है कि कैसा समय आ लगा है। होश ठिकाने आ जायेंगे। अभी से कहना बेकार है।

मां बोली—पड़ोस में दीनू की माँ कहती थी कि गेहूँ का भाव और चढ़ गया। वह कल लेने गयी थी, सवा सात सेर के भाव से मिला है। एक बात उसने और कही। वह बड़ी बातूनिन है, इसीसे मुझे विश्वास कम होता है। पर सुनकर अचरज मुझे जरूर हुआ। शायद तुमने भी सुना हो। वह कहती थी—अंगरेज सरकार से जापान देश ने लड़ाई ठान ली है। लोग डर रहे हैं कि कहीं हमारे देश पर भी वह हमला न करे। वे लोग जहाज़ से बम बरसाते हैं, जिससे मकान गिरते, आग लगती और आदमी की जान तक खतरे में पड़ जाती है।

"वह ठीक कहती थी, अम्मा" विनायक ने उत्तर दिया—लेकिन रक्षा का प्रबन्ध अपनी सरकार भी करेगी। चिन्ता करने की ऐसी कोई बात नहीं है।... जान पड़ता है, आज भी ग्वाला दूध दे नहीं गया।

मां ने भीगे हुए कुछ चने विनायक के आगे कटोरी में रख दिये। फिर वह बोली—खली लेता हुआ इधर ही से जा रहा था। मैं दरवाज़े पर बैठी थी। कहता था, आज दूध ज़्यादा उतरा नहीं। शाम को भी जान पड़ता नहीं उतरा। उसकी गैया का बच्चा बहुत बीमार है।...हाँ, एक चिट्ठी भ आई है। मुझे खयाल ही भूल रहा था। कमरे में...ताक पर (खोजती हुई ...यह मिली।

चिट्ठी उसने विनायक के आगे रख दी।

विनायक ने पढ़ा तो मालूम हुआ, तारिणी ने भेजा है। लिखा है,

आवश्यकतावश आपको याद कर रही हूँ। किसी दिन आने की कृपा कीजिये।

पत्र पढ़कर उसने एक ओर रख दिया। चने चबाकर जब वह चारपाई पर सोने गया, उसी समय बारह का गज्जर बजा। माँ तब तक सोने लगी थीं। लालटेन सिर की ओर रखकर उसने एक बार तारिणी का पत्र फिर उठाया। शब्द वही थे, किन्तु उनके अक्षरों के अन्दर वह बार-बार कुछ खोज रहा था। उसके समक्ष पूर्णिमा के रूप में एक स्वस्थ मांसल नारी खड़ी हो जाती थी। नाक की कील में हीरे का नग और मस्तक पर दमकती हुई लाल रोरी का बूँद। बॉटल कलर की साड़ी इतनी खुशनुमा कि एक बार देखकर देह-सृष्टि की छवि आँखों में बस जाय। बॉडिस से कसा हुआ वक्ष प्रथम दर्शन में ही अपना उन्नत रूप बतला उठता है। बात कम करना, करना भी तो बहुत सोच-समझकर। हास्य की मन्द मधुर झलकी छोड़ती हुई।...लेकिन यह कितनी ग़लत बात है कि बेकार, भूखा और नंगा आदमी मन में ऐसी बातें लाता है।

पत्र एक ओर रख देता है। जी में आता है, उसे फाड़ डाले। लेकिन कल उसे वहाँ जाना जो है। पता नहीं, क्यों बुला भेजा है! मुझसे उन्हें काम ही क्या हो सकता है! लेकिन यह पत्र तारिणी ने लिखा है। पूर्णिमा ने इसमें एक शब्द तक नहीं लिखा।—क्यों? पूर्णिमा को याद करने का मतलब?

"हर चीज का मतलब नहीं हुआ करता। चीज अपने आप में खुद एक मतलब है। हाँ, तो पूर्णिमा ने, जान पड़ता है, याद नहीं की। हम गरीबों की याद भला कौन करता है! अगर हमारे पास भी सूट होता, अगर मैं बँगला, गाड़ी और फोन रखता होता!—पर मेरी बातों में उसको दिलचस्पी तो कुछ जरूर थी। मैं भी एकाएक इन दोनों प्रमदाओं को अपने दोनों ओर देखकर सहम गया। यहाँ तक कि एक तरह से बनता ही चला गया। फिर भी मुझे उस तरह उनके बीच बनना भी प्यारा ही लगा। लेकिन यह है कितनी ज़लील चीज़ कि मैं इन्हीं लोगों का स्वप्न देखा करता हूँ। पर मैं और करूँ भी क्या। जब और कोई काम नहीं है तो इन लोगों को उड़ाने

की बातें सोचने से भी बाज़ आऊँ ? मैं गिरधारी तो हूँ नहीं जो आदर्श का पुतला है। मेरा बस चले, तो मैं इन्हें एक दिन में साफ़ कर दूं। इस विषय में प्रत्येक प्रोलेतेरियत को तगड़ा होना चाहिये। गोर्की दादा, तुम भी यार रहे खूब ! मानता हूँ उस्ताद। 'पतझड़ की वह रात' तुम्हारी खूब रही !

'लेकिन, उस दिन का मेरा वह पार्ट भी खूब रहा। उन्हीं के घर में, उसी के मुंह पर, उसी के विषय में प्यूरिटनिज़्म का पक्ष मैंने खूब लिया। मैं असल में उन लोगों पर प्रभाव डालना चाहता था। पान, मिठाई और चाय से अरुचिवाली बात भी खूब जमती है। इन लोगों को उल्लू बनाने के ये अमोघ अस्त्र हैं। जब पूर्णिमा ने खिचड़ी खिलाने का प्रस्ताव किया, तो मुझे ग्राम्य गीत की एक पंक्ति याद आ गयी—

"चलो रंगमहल में हो, खवावौं तोंहि घिउ खिचड़ी !"

"ये फ्रॉयडियन आलोचक जिन्होंने केवल उनका नाम-भर सुन लिया है, कहते हैं—यह मानसिक अस्वस्थता का चिह्न है। पूछो, समाज भर में जहाँ पूंजीवाद ने ज़हरवाद फैला रखा है, शिक्षित, स्वस्थ और स्वाभिमानी होने का दंड जहाँ दरिद्रता और बेकारी हो और अपने दुःख-सुख के इज़हार का अर्थ हो बग़ावत, वहाँ का नौजवान नैतिकता का कफ़न सिर में लपेट कर चले ! जहाँ जीवन मृत्यु की अपेक्षा कठिन और दुर्वह हो रहा हो, वहाँ आशा की जाय कि आदमी सदाचारी, सच्चा और आदर्शोन्मुख हो ! यह बुद्धि का खोखलापन नहीं तो और क्या है ?

"लेकिन मालती को नाराज़ करना ठीक नहीं हुआ। भविष्य में मैं सावधान रहूँगा। यह लड़की भी वक्त पर काम दे सकती है। लेकिन है पूरी मदिरा। इसकी तो दूर की ही मित्रता अच्छी। मेरा जैसा आदमी तो अपने को बेचकर भी उसकी फ़रमाइशों को पूरा नहीं कर सकता। तिस पर अविवाहित ! अरे बाप रे !—करेला और नीम चढ़ा !!

'कल सोचा था—शर्म्माजी से लेख के पारिश्रमिक के लिए कहेंगे। सो वहाँ नक्शा ही दूसरा नज़र आया ! हड़ताल होने वाली थी, सो भी नहीं हो रही है ! बेकारी का नंगा नाच भी तो कुछ देखने में आये।

आदमी-आदमी को किस तरह खा रहा है, इसके स्पष्टीकरण की अत्यधिक आवश्यकता है।

फिर करवट बदल लेता है। नींद तो आ नहीं रही। ब्रह्मचारी को यों भी कम आती है। जी में आया, कुछ पढा ही जाय। किन्तु ज्यों ही उठता है, त्यों ही देखता क्या है कि लालटेन हाफ़-पास्ट-सिक्स का सिगनल दे रही है।

अब बंदा-बाँदी बन्द हो गयी है। झिल्ली अलबत्ता गा रही है। पिछवाड़े के खंडहर की झाड़ी में दमकते हुए जुगनू, बीच-बीच में 'अपने में महान्, मेंढकों के स्वर, लपकती हुई बिजली और रात का सन्नाटा; सब मिलकर एक विचित्र दृश्य उपस्थित कर रहे हैं।

विनायक का चौतीस वर्ष का वय इसी तरह बीत रहा है। जब उसने, अपना होश सम्हाला, तो देखा कि वह एक हाईस्कूल में पढ रहा है। घर में एक नौकर है। पिताजी क़ानूनगो हैं। प्रायः उन्हें दौरे पर रहना होता है। वहाँ देहात में पढ़ना न हो सकने के कारण उसे शहर भेजा गया है। फिर शहर में भी वह रहता अपनी बूआ के यहाँ है, जहाँ सिवा इसके कि दोनों वक़्त समय पर उसे बना बनाया—सो भी एक निश्चित क्रम के अनुसार—भोजन मिल जाता हो, और कोई सुविधा उसे प्राप्त नहीं है। महीने में केवल बीस रुपये आते थे। बाद में जब पिताजी का वेतन बढ़ गया, तो पच्चीस आने लगे थे। बस, इसी क्रम से उसने इन्टर तक पढ पाया था। तदनन्तर जब पिताजी का स्वर्गवास हो गया, तो यह सहायता भी बन्द हो गयी। ट्यूशन के बल पर ही उसने आगे पढ़ना जारी रक्खा और यही क्रम अब तक चल रहा है। एक बार चालीस रुपये मासिक की जगह उसे अवध के एक ताल्लुकेदार के हाई-स्कूल में मिली थी, परन्तु चापलूस हेडमास्टर से मतभेद हो जाने के कारण उसे लात मारकर चला आना पड़ा। पिताजी कुछ रुपये छोड गये थे। माँ की सलाह से यही मकान ले लिया गया था, जिसमें वह रहता है। बहिन के व्याह के लिए रुपये के अभाव में उसे एक सेठ के यहाँ यह मकान गिरवी रख देना पड़ा। होते-करते ब्याज और मूलधन मिलाकर रुपया इतना बढ गया कि दस

वर्ष में ही मकान सेठ का हो गया। अब वही सेठ साहब उसे मकान से निकाल देने की चेष्टा कर रहे हैं।

माँ ने कई बार कहा कि बेटा गुजर तो किसी-न-किसी तरह हो ही जायगी, बहू आ जाती तो अच्छा होता। पर विनायक का उत्तर सदा यही रहा है—ग़रीब का व्याह और मौत की जिन्दगी।

चार घंटे बाद;

ऐसा जान पड़ता है, जैसे कोई उसके बदन से सटा हुआ चल रहा हो। बहुत सवेरा हो और ठंडी-ठंडी हवा चल रही हो। दोनों कहीं जा रहे हों। कहाँ लिए जा रहा है, दरवाजे से ही पुकार कर वह साथी, कुछ पता नहीं है। विनायक चाहे तो पूछ ले, पर वह यह क्यों पूछे कि वह कहाँ जा रहे हैं! वह जा रहा है और उसके साथ-साथ, इतना ही यथेष्ट है। गति में तीव्रता है, मन में एक मिठास और नशा! क्या इतना कम है?

लेकिन यह साथी इतना सटकर क्यों चल रहा है कि कन्धे-से-कन्धा छू-छू जाता है।

चुप! साथी से कोई ऐसा प्रश्न करता है।

फिर कानों में कुछ शब्द आते हैं—मैं जानती थी, तुम मेरे साथ चल दोगे और यह भी न पूछोगे कि आख़िर जाना कहाँ है!

इसी क्षण विनायक एक चुम्बन लेता हुआ अनुभव करता है—ओः मादक कितना है!

उत्तर में कानों में कुछ शब्द सुरसुराहट उत्पन्न करते हैं—

"लेकिन ऐसी जल्दी क्या है! उँह, छोड़ो भी! पुलक भरा यह प्रतिरोध भी कितना प्रिय लग रहा है! अच्छा, जो गाड़ी छूट गयी, तो?"

और इसी क्षण विनायक की आँख खुल जाती है। हृदय धक्-धक् कर रहा है। किन्तु मन में अब भी एक मादक मिठास भरी है!—अजीब बात है। जो जीवन में कभी सम्भव नहीं, स्वप्न उसी की सम्भावना है! क्या सपने इतने सुहावने होते हैं, इतने मीठे?

काश यह कभी पूरा न हो!

आदमी सपनों को पूरा करने में लगता है !

उन्नीस

मन, वचन और कर्म की एकता आज मनुष्य में दुर्लभ हो गयी है। भीतर और बाहर के ऐक्य का निर्वाह दुष्कर हो रहा है। न तो उसमें इतना आत्म-बल है कि वह सत्य का निर्वाह कर सके—कर्म में नहीं तो कम-से-कम मन, और वचन में तो कर ही सके—न इतना साहस, धैर्य और सामर्थ्य कि मन और कर्म का समन्वय अपने व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्य ने जड़वादी बनकर, वस्तुस्थिति पर आवरण डालते हुए अपने आपको रहस्यमय बना लिया है। वह सोचता है कि उसने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। किन्तु साहस के बिना भोग, लिप्सा और विलास के क्षेत्र में उसकी वास्तविक स्थिति कितनी हीन, विवश और शोचनीय हो जाती है, यह विचारणीय है। जब तक वह मिथ्या आडम्बरों के मोह से मुक्त होकर जीवन की नग्न यथार्थताओं को स्वीकार नहीं करता, तब तक उसकी स्थिति सदा भयावह रहेगी।

ब्रजनाथ बाबू संयोग से आज एक नयी जगह फँस गये हैं। वे एक कोठी के अन्दर हैं। कोई अपरिचित हो या मित्र, बिना आज्ञा लिये अन्दर आ नहीं सकता। गाड़ी पर आफिस जा रहे थे। एकाएक दूर से ही गाड़ी पहचान ली गयी और युक्ति से पकड़ बुलाये गये।

वे जिस कमरे में बैठे हुए हैं, अभी जब पधारे, तो तीन ओर से तीन सुन्दरियों ने अभिनव मुसकानों और कटाक्षों द्वारा उनका स्वागत किया। दो ने तो दोनों ओर से उन्हें अपनी भुजाओं को फैलाकर छाती से कस लिया। किन्तु उनमें से एक इतमीनान के साथ आकर गद्दे पर बैठ गयी। इसके पश्चात् अन्य दो क्रम-क्रम से अपने आप चली गयीं।

वर्ष में ही मकान सेठ का हो गया। अब वही सेठ साहब उसे मकान से निकाल देने की चेष्टा कर रहे हैं।

माँ ने कई बार कहा कि बेटा गुज़र तो किसी-न-किसी तरह हो ही जायगी, वह आ जाती तो अच्छा होता। पर विनायक का उत्तर सदा यही रहा है—ग़रीब का ब्याह और मौत की जिन्दगी।

चार घंटे बाद;

ऐसा जान पड़ता है, जैसे कोई उसके बदन से सटा हुआ चल रहा हो। बहुत सवेरा हो और ठंडी-ठंडी हवा चल रही हो। दोनों कहीं जा रहे हों। कहाँ लिए जा रहा है, दरवाजे से ही पुकार कर वह साथी, कुछ पता नहीं है। विनायक चाहे तो पूछ ले, पर वह यह क्यों पूछे कि वह कहाँ जा रहे हैं! वह जा रहा है और उसके साथ-साथ, इतना ही यथेष्ट है। गति में तीव्रता है, मन में एक मिठास और नशा। क्या इतना कम है?

लेकिन यह साथी इतना सटकर क्यों चल रहा है कि कन्धे-से-कन्धा छू-छू जाता है।

चुप! साथी से कोई ऐसा प्रश्न करता है।

फिर कानों में कुछ शब्द आते हैं—मैं जानती थी, तुम मेरे साथ चल दोगे और यह भी न पूछोगे कि आखिर जाना कहाँ है!

इसी क्षण विनायक एक चुम्बन लेता हुआ अनुभव करता है—ओः मादक कितना है!

उत्तर में कानों में कुछ शब्द सुरसुराहट उत्पन्न करते हैं—

"लेकिन ऐसी जल्दी क्या है! उँह, छोड़ो भी! पुलक भरा यह प्रतिरोध भी कितना प्रिय लग रहा है! अच्छा, जो गाड़ी छूट गयी, तो?"

और इसी क्षण विनायक की आँख खुल जाती है। हृदय धक्-धक् कर रहा है। किन्तु मन में अब भी एक मादक मिठास भरी है!—अजीब बात है। जो जीवन में कभी सम्भव नहीं, स्वप्न उसी की सम्भावना है! क्या सपने इतने सुहावने होते हैं, इतने मीठे?

काश यह कभी पूरा न हो!

आदमी सपनों को पूरा करने में लगता है !

उन्नीस

मन, वचन और कर्म की एकता आज मनुष्य में दुर्लभ हो गयी है । भीतर और बाहर के ऐक्य का निर्वाह दुष्कर हो रहा है । न तो उसमें इतना आत्म-बल है कि वह सत्य का निर्वाह कर सके—कर्म में नहीं तो कम-से-कम मन, और वचन में तो कर ही सके—न इतना साहस, धैर्य और सामर्थ्य कि मन और कर्म का समन्वय अपने व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ कर सके । इसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्य ने जड़वादी बनकर, वस्तुस्थिति पर आवरण डालते हुए अपने आपको रहस्यमय बना लिया है । वह सोचता है कि उसने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है । किन्तु साहस के बिना भोग, लिप्सा और विलास के क्षेत्र में उसकी वास्तविक स्थिति कितनी हीन, विवश और शोचनीय हो जाती है, यह विचारणीय है । जब तक वह मिथ्या आडम्बरों के मोह से मुक्त होकर जीवन की नग्न यथार्थताओं को स्वीकार नहीं करता, तब तक उसकी स्थिति सदा भयावह रहेगी ।

व्रजनाथ बाबू संयोग से आज एक नयी जगह फँस गये हैं । वे एक कोठी के अन्दर हैं । कोई अपरिचित हो या मित्र, बिना आज्ञा लिये अन्दर आ नहीं सकता । गाड़ी पर आफिस जा रहे थे । एकाएक दूर से ही गाड़ी पहचान ली गयी और युक्ति से पकड़ बुलाये गये ।

वे जिस कमरे में बैठे हुए हैं, अभी जब पधारे, तो तीन ओर से तीन सुन्दरियों ने अभिनव मुसकानों और कटाक्षों द्वारा उनका स्वागत किया । दो ने तो दोनों ओर से उन्हें अपनी भुजाओं को फैलाकर छाती से कस लिया । किन्तु उनमें से एक इतमीनान के साथ आकर गद्दे पर बैठ गयी । इसके पश्चात् अन्य दो क्रम-क्रम से अपने आप चली गयीं ।

एक सेविका इसी समय पान इलायची तश्तरी में क़ायदे के साथ रखकर बूंदी को देकर लौट गयी।

वंदी बोली—सुरती भी दे जाना और सिगरेट भी। आप सिगरेट पीते हैं न ?...तो शरीफ़ आदमी जान पड़ते हैं।...और शराब ?...तो आप देवता है !...अच्छा, सिनेमा देखने हफ़्ते में कै दिन जाते हैं ?...तो आप कुछ नहीं हैं।

व्रजनाथ बाबू अपनी पूर्व प्रेमिकाओं से इसकी तुलना करने लगे। उनके मन में आया—इसके सामने अमराई सचमुच कोई चीज़ नहीं है। मैं तो उसी की बातों से घवड़ाता था; पर यह तो जैसे विजली है।

बूंदी फिर बोली—मैंने तो कल ज़रा-सी पीकर देखी थी। आप उससे नफ़रत तो नहीं करते ?.. ख़ैर करते भी हों, तो मुझे इसकी चिन्ता नहीं है।

व्रजनाथ बाबू कुछ घवरा से रहे थे। एक ओर इस रमणी से बातें करने में अपने को कुछ असमर्थ पा रहे थे, दूसरी ओर उसकी रूपछटा पर मुग्ध हो-होकर उसकी ओर देखते रह जाते थे। यहाँ तक कि उसकी बातों का उत्तर न देकर उसे सोचने लगते थे।

"आप लोग बुराइयों को खड़े होकर दूर से देखते हैं" बूंदी बोली—"और मैं उनमें प्रविष्ट होकर। आपमें और मुझमें केवल इतना अन्तर है। है नहीं। लेकिन यह बात नहीं कि उनको आप देखते न हों ! देखते उन्हें भी हैं। यह बात दूसरी है कि आप उन्हें दूर से भी पूरी तरह देख पाने का अवसर न पाते हों। अवसर पायें तो, बाहर से देखते न रह जायें, उनके भीतर भी आपको जाना ही पड़े।—कि झूठ कहती हूँ ?"

सेविका सुरती, सिगरेट-केस और दियासलाई की डब्बी लाकर दे गयी।

उठकर बूंदी ने केस में से एक सिगरेट व्रजनाथ बाबू के आगे कर कहा—'लीजिये, पीजिये।...अरे पीजिये भी।' और फिर झट से दियासलाई जलाकर वह बोली—होठों से लगाइए तो झट से। हाँ, दो-चार कश खींचिये। ...हाँ, यह बात है !

व्रजनाथ बाबू का सिर घूमने लगा। सोचा कदाचित यह सिगरेट

मेराल है।

बूंदी बोली—मैं अभी आयी!—दो मिनट में।

वह अन्दर चली गयी।

ब्रजनाथ बाबू जैसे बादलों पर बैठकर आकाश में उड़ने लगे।

बूंदी ने साड़ी बदली, चप्पल पहने और पर्दा लिया।

उसके आने पर ब्रजनाथ बाबू बोले—मैं तो अब इजाज़त चाहता हूँ।

बूंदी ने कहा—मैं भी आपके साथ चलती हूँ। मुझे जरा फूलबाग तक जाना है। आपको मेरे साथ चलना होगा।

ब्रजनाथ बाबू हक्के-बक्के से रह गये। विरोध में इसलिए कुछ बोल न सके कि इन बातों में उन्हें कुछ नवीनता जान पड़ी।

सब आगे-आगे चली बूंदी, पीछे-पीछे ब्रजनाथ बाबू।

गली से घूमकर वह बूंदी के साथ मूलगंज में आकर गाड़ी पर बैठे ही थे कि बूंदी बोली—चलिये, मेस्टन रोड के उस चौराहे के पास जरा ठहर जाइयेगा। पहले एक जगह थोड़ी चाय पी ली जाय।

बात कहकर बूंदी मुसकराने लगी। इस व्यक्ति में कितनी दृढ़ता है, इसी बात की परीक्षा की ओर उसका ध्यान चला गया था।

ब्रजनाथ बाबू ने भी उसके इस भाव को लक्ष्य किया। निर्दिष्ट स्थान पर आकर उसने कहा—इस वक्त मुझे फ़ुरसत नहीं है। मैं आफ़िस जा रहा हूँ।

"चले जाना आफ़िस। मैं रोकूँगी नहीं। जरा चाय तो पी लो।"—बात कहकर उसने उनका बाम बाहु थाम लिया। बोली—चलिये। अरे चलिये तो।

आन्दोलित ब्रजनाथ विवश होकर बोला—अच्छा छोड़ो, चलता हूँ।

फ़ुटपाथ पर आते-आते दोनों ने एक दूसरे को आँखों-ही-आँखों में जैसे भर लिया हो। क्षण भर के लिए ज़ीने के नीचे दोनों स्तब्ध खड़े रह गये।

ब्रजनाथ बोला—चलो।

बूंदी ने भी मुसकराते हुए कहा—चलो न?

विवश ब्रजनाथ ही तब सीढ़ियों पर आगे-आगे चढ़ने लगा। पीछे बूंदी।

ज़ीना ज़रा लम्बा था चक्करदार सीढ़ियाँ। एकदम तीसरे खंड पर जाकर समाप्त होती थीं।

बूंदी बीच ही में बोल उठी—मैं तो थक गयी।

"इतनी जल्दी" ब्रजनाथ कहकर घूम गया। वह देखने लगा बूंदी की ओर।

बूंदी हांफ रही थी ; मुसकराती हुई बोली—आपके पीछे जो हूँ !

सामने होकर ब्रजनाथ अवाक् रह गया। किन्तु फिर आगे बढ़ते हुए बोला—तब तुम मघा नक्षत्र की तो हो नहीं।

"आप ठीक कह रहे हैं। मैं स्वांति की हूँ।"

उससे ब्रजनाथ ऐसे उत्तर की कल्पना नहीं करता था। अब दोनों ऊपर पहुँच गये थे। बूंदी एक सुशोभित कक्ष की ओर बढ़ गयी, जिसमें गोल टेबिल के दोनों ओर छोटे-छोटे कोच पड़े हुए थे। आमने-सामने दोनों बैठ गये।

ब्वॉय के आने पर बूंदी बोली—टोस्ट और चाय।

ब्रजनाथ बोला—मैं टोस्ट नहीं लूँगा।

बूंदी उसकी ओर देखती हुई ज़रा-सी मुसकरा दी। फिर बोली—दफ़्तर में क्या काम रहता है ?

"डिप्टी सब-एजेण्ट हूँ। हिसाब-किताब के सिवा बैंकर लोगों के मामलों की जाँच···।" ब्रजनाथ कहकर रुका ही था कि बूंदी बोली—तब तहज़ीब का हिसाब रखना भी खूब जानते होंगे आप।

ब्रजनाथ को कुछ आश्चर्य तो हुआ किन्तु वह चुप रहा।

"लेकिन आपको मुझसे जो इतना डर लगता है, इसका कारण शायद यह है कि कभी इस तरह का जमा-खर्च करने की नौबत नहीं आयी। सेविंग्स बैंक में कितना रुपया जमा कर रक्खा है ?"

सशंकित ब्रजनाथ ने उत्तर दिया—अपना मतलब बताओ।

इसी समय ब्वॉय चाय की ट्रे ले आया। बूंदी ने उसे अपने आग रख लिया। कप तैयार करती हुई वह फिर बोली—देखती हूँ, आप सोचते हैं—आपके जवाब का मतलब मैं जानती नहीं हूँ !

"इतना जानता हूँ कि तुम मुझसे नननद निकालने की विद्या में कुछ बड़ी ही ठहरोगी।"—व्रजनाथ बोला—न भी ठहरो, तो भी अनुभव में तो तुम बड़ी हो ही। अच्छा होता, तुम मुझसे इस तरह पेश न आतीं। इस तरह की बातें करने के लिये तुम्हें दुनियाँ पड़ी है। मैं ज़रा ऐसी गुफ़्तगू कम पसन्द करता हूँ।

"जाने दीजिये। गोली मारिये।" कहते हुए एक अन्दाज के साथ एक कप तैयार करके बूँदी ने व्रजनाथ बाबू के आगे कर दिया। तदन्तर अपने कप को होठों से लगाकर दो घूंट कण्ठगत् करने के पश्चात् उसने कहा—मिज़ाज़ देखने में मुझसे कभी गलती नहीं हुई। पर आप इस तरह भागते क्यों हैं मुझसे?

"आप चाय में चीनी कुछ ज्यादा तो नहीं लेते! मैंने अपने अन्दाज से छोड़ी है।

व्रजनाथ ने कह दिया—ठीक है।

व्रजनाथ बाबू के प्लेट में टोस्ट के दो टुकड़े आये थे। एक टुकड़ा आधा खा लेने के बाद उसमें पड़ा रह गया था। बूँदी ने उसी को उठाकर खा लिया।

अचकचाकर व्रजनाथ बोला—यह आपने क्या किया?

"कुछ भी नहीं। मैंने सिर्फ़ यह देखना चाहा कि आपके टोस्ट में नमक-मिर्च ठीक है कि नहीं। मुझे आज इस बात का भय लग रहा है कि कहीं घर की भाँति यहाँ भी ऐसा न हो कि आप प्लेट को भी खाली ही छोड़ दें!"

व्रजनाथ अब की बार अपना नियमन न कर सका। एकदम से विहँस पड़ा। बोला—जान पड़ता है तुम मुझे माफ़ न करोगी!

उसने चाय का अपना कप थोड़ा पीकर फिर प्लेट पर रख छोड़ा था। अब की बार बूँदी ने उसको भी उठाकर होठों से लगा लिया। व्रजनाथ उसे देखता रह गया। ऐसा करने से उसने उसे मना नहीं किया। किसी

सा विष उसे चढ़ आया था। बूंदी के आकर्षण विलम्बित नयनकटोरों में उसे हलाहल-सा भरा जान पड़ने लगा—

बूंदी ने उस कप के दो घूंट ही पिये होंगे कि उसकी भंगिमा देखकर सने उसे छोड़ दिया। थोड़ी देर दोनों-के-दोनों निश्चेष्ट बैठे रहे। अन्त में जनाथ उठकर खड़ा हो गया। बूंदी उठकर खड़ी हो रही थी कि झट से माल से मुंह पोंछकर ब्रजनाथ चल दिया। बूंदी कुछ और निकट आकर ड़ी हो गयी। वह बोली—ज़रा ठहरिये, कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं।

तब वह एक सर्वथा एकान्त कमरे की ओर चल पड़ी। ब्रजनाथ भी साथ लगा रहा। कुछ बोला नहीं। उसने सोचा, पृथक् होने से पूर्व सम्भव है, उसे कुछ कहना ही हो किन्तु बूंदी उस सजे सजाये विहार-गृह के अन्दर जाकर बोली—बैठो। इधर बैठो।

ब्रजनाथ एक बड़े सोफ़े पर बैठ गया। बूंदी भी उससे लगकर समर्पित हो पड़ी। तब ब्रजनाथ झट से उठकर खड़ा हो गया। इस समय उसकी भृकुटियाँ चढ़ी हुई थीं, होठ फड़क रहे थे। मस्तक की रेखायें तन गयी थीं। आग उगलने वाले पर्वत की भाँति भड़कते हुए वह बोला—तुमको क्या कहना है, यह मैं जानता हूँ बूंदी। अपने बारे में तुमने समझा होगा—मैं जलती हुई शमा हूँ—मुझे पतंग बनने में देर कितनी लग सकती है! लेकिन तुमने यह नहीं सोचा कि पतंग बनने से पूर्व आदमी एक आँधी भी है। जलो जितना जल सको। मैं भी देखना चाहता हूँ, कहाँ तक कितनी देर तक जल सकती हो!

इतना कहकर जब ब्रजनाथ बाहर जाने के लिये चल दिया, तो बूंदी बोली—तुम्हें मेरी क़सम थोड़ी देर बैठ लो। उसने झट से उठकर उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचना चाहा। किन्तु ब्रजनाथ धक्का देकर अलग हो गया। बूंदी गिरते-गिरते बची। उसी समय उसने यकायक ताली बजा दी। दो ओर से दो आदमियों ने आकर पहले सलाम बजाया और फिर एक बोला—हजूर, आप यहाँ से किसी तरह कहीं जा नहीं सकते।

बूंदी ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा—'सलाम!' फिर उसने ऐसा संकेत कर दिया कि वे दोनों आदमी यथास्थान चले गये।

व्रजनाथ बाबू ने आश्चर्य्य, कातरता और आशंकाओं में डूबकर कुछ सावधान होते हुए कहा—तो इसका मतलब यह है कि मुझे धोखा दिया गया है। लेकिन तुमको अभी मालूम नहीं है कि तुमने किसको चैलेंज किया है।

"मुझे अच्छी तरह मालूम है बाबू साहब"—कुछ रूखेपन के साथ बूंदी ने कहा—कि आपकी कितनी आमदनी है। मैं यह भी जानती हूँ कि अभी दस दिन पहले आप एक टीचरेस का हमल गिरवाने के लिए उसे लखनऊ ले गये थे।

बात सुनकर व्रजनाथ बाबू के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगी। अस्थिर, क्षुब्ध और मर्माहत स्थिति में उनके मुँह से जरा जोर के साथ निकल गया—तुम बिल्कुल झूठ बोल रही हो और इसके लिए तुमको पछताना पड़ेगा।

बूँदी बोली—आप जरा आराम कर लें, इतमीनान के साथ अपना नफा-नुकसान सोच-समझ लें, तब बात करें। मैं आपको नाराज नहीं करना चाहती। मेरा मतलब तो तभी पूरा हो सकता है, जब आप खुश रहें। कुछ ऐसी बातें इत्तिफ़ाक से मुझे मालूम हो गयी हैं, जिनके जाहिर हो जाने से आपकी इज्जत को बट्टा लग सकता है। आप रईस आदमी हैं। रईसो के लिए पैसा उतनी बड़ी चीज नहीं, जितनी उनकी मुँदी-भपी हुई इज्जत का बाहरी खुशनुमा नक़्शा। हमारी बात दूसरी है। हमारी इज्जत और जिन्दगी इसी में है कि आप लोगों से पैसा मिलता रहे। कभी-कभी पैसे की दिक्कत हमको भी हो जाती है। मसलन यह कि यह बिल्डिंग अपनी है। मगर इस पर दस हज़ार रुपये का कर्ज़ है। माँ बीस हज़ार छोड़ गयी थी। मैंने दो साल मे दस हज़ार अदा कर पाया है। सोचती हूँ बाकी की अदायगी की भी कोई सूरत होनी चाहिये और यह तो आपको मालूम ही है कि हम लोगो की एक फसल होती है, एक सीज़न होता है अगर ऐसे मौको पर हमने अपनी फसल न सम्हाली, तो अल्लामियाँ का कहना है कि मैं भी मदद नहीं कर सकता!

"मैं फिर आपसे दरख्वास्त करूँगी"—बूंदी ने इतमीनान के साथ सोफे पर पैर फैलाकर सिगरेट सुलगाते हुए कहा—कि आप जरा टेबिल पर आ जायँ। कहिये तो मैं आपको ड्रिंक मँगवाऊँ।

उसने ताली बजा दी। एक वेट्रेस सामने आ पहुँची।—तब बूंदी बोली—लाल परी को झट से तैयार करके भेजो। बस दो गिलास !

ब्रजनाथ बाबू इसी क्षण कुछ कातरता के साथ बोले—पर कम-से-कम मेरा एक परचा तो बैंक में पहुँच ही जाना चाहिये, आज की छुट्टी के लिए।

"बेशक और फौरन।"—बूंदी ने कहा—रमजान को भेजो, चिट्ठी लिखने का पैड दे जाय और बाबू साहब की चिट्ठी ले जाय।

पैड आ गया और ब्रजनाथ बाबू पत्र लिखकर लिफ़ाफा उस आदमी को देते हुए बोले—बैंक के सब एजेन्ट के पास पहुँचाना होगा।

बूंदी उठी और बोली—"लेटर ज़रा मुझको दिखलाना।" साथ ही वह एक कटाक्ष से ब्रजनाथ बाबू की ओर देखने लगी।

उधर ब्रजनाथ बाबू बग़ल में लगाई हुई टेबिल पर देख रहे थे—बोतल का कार्क खुल रहा है और सोडे के फेन के साथ लाल परी ढल रही है !

बीस

हृदय-दान के क्षेत्र में मनुष्य जितना मुखर और स्पष्ट होता है, जीवन में वह उतना ही निश्चित, स्वाभिमानी और कष्ट-सहिष्णु भी होता है। वह व्यावहारिक नहीं होता। किसी प्रसंग के एक अंश को खोलकर दूसरे को छिपा रखने की कला से वह अनभिज्ञ हुआ करता है। पहलू बदलकर रंगसाजी करना उसे नहीं आता। अवस्था, स्थिति और स्वार्थों के संघर्ष उसके आधारभूत विश्वासों और उसकी मान्यताओं में अन्तर नहीं डालते।

किन्तु इस प्रकार का व्यक्ति प्रायः भावुक होने के कारण व्यर्थ ही एक अविश्वास का पात्र भी बन जाता है। जो बुद्धिजीवी हैं, वे ऐसी दशा में कभी-कभी बड़े मानसिक संघर्ष में पड़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में अवलम्ब का एक मात्र साधन है, धैर्य।

एक रेस्तराँ में बैठकर दो व्यक्ति बातें कर रहे हैं। एक व्यक्ति अपने पूरे सूट में है और है क्लीनशेव्ड। उसकी चेष्टा से ऐसा जान पड़ता है, मानो वह निश्चिन्त, प्रसन्न और अपने कर्तव्य-कर्म के क्षेत्र में तत्पर है। वह व्यावहारिक है और उसने जीवन की अनेक ऊँची-नीची घाटियाँ पार की हैं। किन्तु दूसरा व्यक्ति कुछ चिन्तित, उदास और व्यस्त है। बात करते-करते वह ऊपर एक ओर खुले आकाश को देखने लगता है। पहले ललित बाबू हैं, दूसरे शर्माजी।

ललित बोला—अच्छा हो, आप इस विषय में कुछ न पूछें। जिसके साथ आपकी घनिष्टता है, मैं नहीं चाहता, उसकी कोई ऐसी बात मैं आपके समक्ष रक्खूँ, जिसको सुनकर आपके हृदय को चोट पहुँचे।

"हृदय को चोट !—हूँ-हूँ ' ललित बाबू, आप तो डाक्टर हैं न ?"—गम्भीर वाणी में शर्माजी बोले—रक्त-मांस की वस्तु को आप शब्दों से चोट पहुँचायेंगे ! कहिये, जो कुछ भी आप जानते हों, कह जाइये। मालती से मेरा जरा भी हार्दिक सम्बन्ध नहीं है। मैंने अपना मन स्थिर कर लिया है। मैं उससे घृणा कर सकता हूँ; मैं उसकी प्राण-हानि तक—किसी भी क्षण—कर सकता हूँ। विश्वास रखिये ललित बाबू।

"डाक्टर हूँ, तभी तो ऐसा कह रहा हूँ।" ललित ने टेबिल पर रक्खे हुए पानों में से दो बीड़े लेते हुए कहा—आप कुछ भी कहें, आपकी चेष्टा बतला रही है—ये भृकुटियाँ, मस्तक पर बनती-बिगड़ती रेखाएँ, आँखों की पुतलियाँ, यहाँ तक कि चिबुक और कपोल के बीच की उचटती-बनती झुर्रियाँ शब्दों के उच्चारण का प्रकार; तात्पर्य यह कि आपकी प्रत्येक मुद्रा यह बतला रही है कि आप भीतर से काफी भरे हुए हैं। आप टोह रहे हैं कि कहाँ थाह की जगह है। आप भटक रहे हैं। पैर आपके जमीन पर नहीं पड़ रहे। आप अपने आपसे विद्रोह कर रहे हैं। आपका हृदय जहाँ है, मस्तिष्क वहाँ नहीं है। आपके प्राण जहाँ वास करते हैं, विवेक वहाँ आपको खड़ा भी नहीं रहने देता।

"आप जो करना चाहते हैं, वह नहीं कर रहे। आपका

यथार्थ से लड़ रहा है। आप जो वारम्वार सोचते हैं, सिद्धान्त की कसौटी पर कसते हुए उसे ठुकरा देते हैं। आप जैसे जिम्मेदार व्यक्ति के लिए यह स्थिति भयावह है। मैं चाहता हूँ कि आप इस स्थिति से ऊपर उठें। अन्यथा आश्चर्य नहीं, जो आप मानसिक विकृतियों से घिरकर प्रमाद से आक्रान्त हो जाएँ।"

"आज एक बात मैं आपको और वतला दूं रेणु की स्थिति भी अच्छी नहीं है मैंने उसकी परीक्षा ली है। उसका एक फेंफड़ा कुछ खतरे में है। वहुत सावधानी से उसकी चिकित्सा होने की आवश्यकता है। आप स्वतः इतने दुर्बल और चिन्तित हो रहे हैं कि मैंने आपको एक नयी परेशानी में डालना उचित नहीं समझा। आज जब आपको गम्भीर वार्तालाप के लिए तत्पर देखा, तो विवश होकर ऐसा कहना पड़ा।

शर्म्माजी कुरसी से उठकर खड़े हो गये। खिड़की से उन्होंने आकाश की ओर देखा, दोनों होंठ दवाये और अन्दर की ओर पलटते हुए उन्होंने कहा—'तो यह वात है!' उस समय उनकी मुट्ठियाँ वँधी हुई थीं, भृकुटियाँ कभी-कभी फड़क उठती थीं, होंठ हिल रहे थे। पैरों में कम्पन आ गया था। देर तक वे कुछ नहीं वोले। ललित सोचने लगा—जो सोचा था, वही हुआ। इतनी ही वात सुनकर शर्म्माजी मर्म्माहत हो गये। अतएव आगे अव मालती की चर्चा क्या उठायेंगे।

किन्तु शर्म्माजी ने टेविल पर रक्खे हुए पान खा लिये। फिर मुसकराते हुए वे वोले—लेकिन असल चीज़ से हम दूर चले आये। रेणु का प्रश्न नहीं है। मैं जानता हूँ, वह कितने दृढ़ हृदय की नारी है। आप मालती के सम्वन्ध में कुछ कह रहे थे। वही कहिये; मैं उसी को सुनना चाहता हूँ।

ललित वोला—अच्छा तो फिर सुनिए।

"आपको मालूम है, जव वह इन्टर में पढ़ती थी, तभी···कालेज के एक छात्र राजेश्वर ने आत्मघात कर लिया था।

शर्म्माजी ने आश्चर्य में डूवकर कहा—अच्छा। ऐसी वात है! मैंने नहीं सुना। मुझे नहीं मालूम हुआ। हो सकता है। मैं उन दिनों व्यस्त वहुत रहता

था। मुझे अवकाश ही इतना नहीं मिला कभी कि मैं शिकारी-संप्रदाय के लोगों के साथ मिल-जुल सकता। कहीं बातचीत चल रही थी। उसमें एक बार सुना जरूर था कि किसी छात्र ने आत्मघात किया है। किन्तु फिर यह नहीं मालूम हो सका कि वह है कौन और क्यों उसको इसके लिए विवश होना पड़ा।...हाँ, अब आप बतलाइए कि राजेश्वर ने क्यों आत्मघात किया था।

ललित ने कहा—तब आपको शुरू से बताना पड़ेगा। "बात यह हुई कि राजेश्वर और मालती में कुछ काल तक बहुत घनिष्ठता थी। प्रायः साथ-ही-साथ चलता था। कार पर भी दस पाँच बार घूमते हुए देखे गए थे। एक दिन राजेश्वर ने देखा, मालती प्रोफ़ेसर मुकर्जी से बातचीत कर रही है। मिलने पर राजेश्वर ने पूछा—क्या बात थी ?—तो मालती टाल गयी। कोई दूसरा कारण बतला दिया। थोड़े दिनों बाद उसने यह भी देखा कि मालती उससे छिपकर मुकर्जी महाशय के यहाँ आती-जाती भी है। इसी के कुछ दिनों बाद परीक्षा-फल जो आउट हुआ, तो मालती फर्स्ट आयी। पिछले दिनों लगभग एक मास तक यह राजेश्वर से कभी मिलने तक नहीं आयी थी। अन्त में एक दिन मेस्टन रोड के रास्ते में भेंट तब हुई, जब परीक्षाफल आउट हुआ, जिसमें मालती की पोज़ीशन फ़र्स्ट थी और राजेश्वर की थर्ड ! और भेंट होने पर राजेश्वर कुछ कहने को ही था कि एक कुटिल मुस्कान के साथ मालती ने उसे बधाई दी !

"तो यह कहो कि राजेश्वर ने जो आत्मघात किया था, उसका मुख्य कारण परीक्षाफल का खराब हो जाना था, न कि मालती की कोई चरित्र सम्बन्धी दुर्बलता।"—शर्म्माजी ने कहा।

"नहीं" कहते हुए ललित बोला—आत्मघात की दुर्घटना से पूर्व और किसी से राजेश्वर की बातचीत होने का पता नहीं चला। एक शिवनाथ ऐसा था, जिससे उसने इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण किया था। उसका कहना था कि राजेश्वर को परीक्षाफल के खराब हो जाने का कोई रंज नहीं था। वह तो उसपर अपना शरीर बेचकर इस तरह आगे बढ़ने और सम्मान पाने का चार्ज लगा रहा था ! उसका कहना था कि मुकर्जी ने उसे छोड़ा होगा.

स पर मैं विश्वास कर ही नहीं सकता ! ऐसी बात न होती, तो मेरे साथ उसका जो सम्बन्ध था, उसमें अन्तर पड़ ही नहीं सकता था ! फिर आपको पता है कि राजेश्वर की मृत्यु कितने भयानक ढंग से हुई थी ? पोस्टमार्टम करने पर, कहा जाता है कि, डाक्टरों ने कहा था कि यह लाश तो उस आदमी की होनी चाहिए, जो मर जाने पर भी कम-से-कम आठ घंटे रस्से में झूलती रही है !

ललित की इस बात को सुनकर कुछ ऐसा मालूम पड़ा कि शर्म्माजी अब कहेंगे कि बस इतना यथेष्ट है। आगे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु हुआ यह कि वे एकदम से स्तब्ध हो उठे। सत्य-कृष्ण कुछ बोले ही नहीं। न तो यह कहा कि अच्छा, हाँ और बतलाओ—न बीच में संशयात्मक होकर अन्य कोई प्रश्न ही किया !

ललित बोला—रह गयी मेरी बात। सो मैं उस ज़माने में तो पढ़ रहा था; पर इधर उसके घर वालों की चिकित्सा के सिलसिले में अवश्य जाता रहा हूँ। निजी अनुभव तो नहीं है; पर सुनता ऐसा जरूर हूँ कि एक बार गर्भ रह जाने पर वह लखनऊ जाकर शुद्ध हो आ चुकी है। लेकिन यह सुनना ऐसा है जो आदि से अन्त तक सटीक है। और छोटी-मोटी बातें तो बहुतेरी हैं। उनकी चर्चा भी व्यर्थ है। मुझसे जो वह भयभीत रहती है और प्राय कटूक्तियों से पेश आती है, उसका कारण यह है कि मैं उसकी इस समस्त जीवनचर्य्या से परिचित हूँ।

शर्म्माजी ये सब बातें एक होटल में बैठ कर कर रहे हैं। चाय पह ही पी चुके थे। बिल का पेमेंट भी हो चुका है। बातें भी जो होनी थीं, हो गयी हैं। अब केवल इतना शेष है कि वे उठकर चल दें।

ललित ने इसी क्षण अपनी कलाई-घड़ी की ओर देखा, तो वह बोल उठा अब मैं चलूंगा शर्म्माजी। मुझे एक मरीज़ को देखने जाना है।

शर्म्माजी बोले—मैं भी चलता हूँ, मुझे यहाँ बैठना तो है नहीं।

इतना कहकर वे उठना ही चाहते थे कि इसी क्षण उनके सामने बायीं का पर्दा हिला और उसके भीतर से पहले मालती और फिर विनायक टपके। क्षुब्ध संतप्त और उत्तेजित मालती बोली—आप नहीं जा सकते शर्म

आपको यहाँ बैठना पड़ेगा। आपने अभी तक केवल एक पक्ष की बातें सुनी हैं। अब आपको दूसरे पक्ष की बातें भी सुननी पड़ेंगी। और डाक्टर साहब! जान छिपाकर आप कहाँ भाग रहे हैं! आपको भी तो यहाँ बैठना पड़ेगा, हृदय की जलन को जरा ठंडा भी तो कर लीजिए। बराबर जलते रहना आपके लिए एक खतरा है।

ललित ने चलते हुए उत्तर दिया—मुझे उसकी चिन्ता नहीं है।

"अच्छी बात है"—मालती ने कहा और वह कुर्सी पर बैठ गयी।

शर्म्माजी बोले—कहिये विनायक बाबू आपको कितने रुपये दूँ?

विनायक को आश्चर्य हुआ कि शर्म्माजी आज यह कह क्या रहे हैं! न तो वे कार्यालय में बैठे हैं कि उन्हें लेख को देखकर उसके परिश्रम का हिसाब लगाने की सुविधा ही—न यहाँ वाउचर सामने है कि मैं तुरन्त उस पर हस्ताक्षर कर दूँगा।···फिर जब-जब आवश्यकता हुई है तब-तब बराबर मैं ही माँगकर ले आता रहा हूँ। पर आज तो वे स्वतः याद करके ऐसा प्रिय प्रश्न उठा रहे हैं!

विनायक को मौन देखकर शर्म्माजी आप ही आप कहने लगे—बात यह है कि आज मेरे पास कुछ रुपये आ गये हैं। मैं चाहता हूँ कि आप उसमें से पहले अपना भाग ले लें। क्योंकि बाद में फिर ऐसा भी हो सकता है कि माँगने पर भी कुछ समय तक आपको रुपया न मिले। हर समय ऐसी सुविधा मुझे रहती भी नहीं है।

मुस्कराते हुए विनायक ने उत्तर दिया—लगभग ढाई पेज का लेख गया है। हिसाब से दस रुपये होते हैं। देने को आप जो चाहें दे सकते हैं। चाहें तो नहीं भी दे सकते हैं। सुशील का ट्यूशन मिल गया है। पहले मास का वेतन मैंने एडवांस ले लिया है। काम चल रहा है। अब कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं है।

आश्चर्य से "अच्छा" कहकर कुछ प्रसन्नता प्रकट करते हुए शर्म्माजी बोले—यह बात है! मालती की कृपा का फल होगा। कितने का ठहरा है ट्यूशन!

मालती दूसरी ओर देखने लगी। विनायक बोला—तीस रुपये मिलेंगे।

"यह बहुत अच्छा हुआ। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।" कहकर शर्म्माजी रुपये ते हुए बोले—

"बीस रुपये ये मेरे भी उसी में शामिल कर लीजिए। आज से मैंने आपके लेख का पारिश्रमिक दूना कर दिया है।"

विनायक की आदत है कि वह साधारण अवसरों पर धन्यवाद नहीं देता। जब उसे वास्तव में कृतज्ञता-ज्ञापन करना होता है, तभी वह धन्यवाद देता है। इसलिए उसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उसका धन्यवाद बड़ा महँगा होता है। अतएव इस समय जब उसने कह दिया—धन्यवाद।—तो शर्म्माजी बोले—चलो बाद मुद्दत के आपके धन्यवाद का अवसर तो आया।

कुछ सोचती हुई-सी मालती बोली—अब सरकार, मेरा भी मामला सुन लें।

शर्म्माजी गम्भीर होकर बोले—उसका भी अवसर आयेगा मालती। ऐसी ी क्या है!...समय सब करा लेता है।

और इतना कहते हुए वे उठकर खड़े हो गये। बोले—अब मैं चलूँगा।

वे चले गये। इस बार उन्होंने मालती से कुछ कहना तो दूर रहा, चलते क्षण उसकी ओर देखा तक नहीं।

मालती भी धीरे-धीरे सीढ़ी से उतर कर सड़क पर आ गयी। गाड़ी खड़ी हुई थी। दोनों उसी में बैठकर चल दिये।

गाड़ी चली जा रही थी, लेकिन दोनों मौन थे। मालती गिरधारी की बा सोच रही थी। किन्तु विनायक पर न ललित की बातों का कोई प्रभाव था, मालती का। वह अपनी बुढ़िया माँ की उस प्रसन्नता को कल्पना के पट देख रहा था, जो ये रुपये उसके हाथ पर धर देने से होगी। झुर्रियों से यु वह पोपला मुँह और उसकी मातृत्व से भीगी मुसकराहट।

इक्कीस

संसार अपनी गति से चलता रहता है। मनुष्य के आन्तरिक मन्तव्यों की परवाह उसे नहीं होती ? उसका सुख-दुःख, निःश्वास और क्रन्दन कौन सुनता है ! उसकी व्यथा और पीड़ा, टीस और कराह की चिन्ता किसे होती है। मन के मेल का ही सारा खेल है। जब एक व्यक्ति का दूसरे के साथ न मन मिलता है, न कार्य की गति में और कर्म की धारा में ही कहीं वे परस्पर मिल पाते हैं, तब घटनाएँ जगत मे न होकर अन्तर में चला करती हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि बाह्य जगत में जो घटनाएँ होती हैं, वे मनुष्य के अन्तर को क्या उतना मंथनशील बना पाती हैं जितना ये संक्रान्तियाँ, जिन्हें मनुष्य स्वतः अपने जीवन के साथ लगा लेता है।

दिन चल रहे हैं।

लेकिन दिन तो सदा चलते ही रहते हैं। सुख के दिन जल्दी बीतते जाते हैं। लेकिन दुःख के दिन तो काटे नहीं कटते। वरन् कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है, मानो दिन हमें काट रहा है।

रेणु की तबियत अच्छी हो रही है। वह नित्य नियम से सवेरे घूमने जाती है। साथ में शर्माजी भी रहते हैं। वे अक्सर उससे गम्भीर विषयों की चर्चा भी कर लेते हैं। मनोविनोद भी आपस में चलता है। हड़ताल रोक दी गई है। मिल वालों को विचार करने के लिये अवसर दे दिया गया है। शर्माजी में अब एक विचित्र परिवर्तन आ गया है। पहले की अपेक्षा वे अब हँसते अधिक हैं। रेणु को कभी-कभी उस हँसी को देखकर भय-सा होने लगता है। क्योंकि उस हास में मार्दव का सर्वथा अभाव होता है। कभी-कभी वे मस्तक पर हाथ रख कर अपने आप कुछ बुदबुदाते हुए अँगुलियों की पोरें गिनते हैं। ऐसा जान पड़ता है, जैसे किसी वस्तु की गणना करते हो। खाने-

पीने के सम्वन्ध में पहले भी नियम भंग करते थे। और आज तो अनियमितता नियम वन गया है। खाने की चीजों और उनके स्वाद को लेकर वे पहले बहुत स्पष्ट और सजग रहते थे अव जो भी जितना और जैसा कुछ सामने आ गया, खा लेते हैं कभी घण्टों वात नहीं करते, कभी घण्टों वीच में रुकते नहीं। किन्तु एक वात में दृढ़ हैं, उसमें उनसे कभी भूल नहीं होती। वह यह है कि वे कभी मालती का नाम नहीं लेते। लेकिन इस सिलसिले में एक वात और छूट रही है। और वह यह है कि यों साधारणतया उनको पैसे की तंगी रहती थी। पर अव समस्त कार्य्य ठीक ढंग से चल रहे हैं। पैसे की कमी के कारण कोई कार्य्य रुक नहीं रहा है।

रेणु इधर मालती के घर भी कई वार हो आयी। विपिन सदा साथ गया है। माँ ने उसे एक दर्जन ब्लाउज़, छः साड़ियाँ तथा एक दुशाला भेंट दिया है। रज्जन के लिए एक पैराम्बुलेटर आ गया है, जिस पर विठाकर लोचन उसे नित्य घुमाने जाता है।

विक्टर को अव मालती से कोई शिकायत नहीं है। मालती ने भी इधर महीनों वाद वायोलिन उठाया है। विनायक प्रायः उसके पास आ जाता है। खाने-पीने में अव वह कच्चे चने, फल, दूध और कभी-कभी खिचड़ी तक ही सीमित नहीं है। चाय, टोस्ट और मटनचॉप ही नहीं सिगरेट तक भी, अव उसके लिए, न आश्चर्य की वस्तु है, न आपत्ति की। कभी-कभी पाकेट में भी गोल्डफ्लैक का पैकेट देख पड़ता है। एक दिन तो मालती ने जव वायोलिन वजाया, तो वह किवाड़ों की ओट से खड़ा-खड़ा सुनता रहा और प्रकट तव हुआ जव मालती उसे उठाकर रखने लगी। इधर उसने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं और खिलखिलाती हुई पूर्णिमा सोचती है कि उनकी प्रेरणा उसे मुझसे मिली है।

पर मालती ने वायोलिन उठाया है, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह मज़दूरों के वीच में जो कार्य्य कर रही थी उसे उसने स्थगित कर दिया है। उसका कार्य्य वरावर चल रहा है। कल ही वह एक सभा में गयी थी। वहाँ उसने अपने भाषण में वतलाया कि रूस में रेड-आर्मी का जन्म कैसे हुआ।

जन-साधारण के साथ वहाँ रेड-आर्मी का क्या सम्बन्ध है। स्त्रियाँ रेड-आर्मी की सहायता किस प्रकार करती हैं। इस अवसर पर बच्चे तक रेड-आर्मी के लिए क्या-क्या और किस-किस तरह करते हैं।

मालती की जीवन-चर्या में भी एक परिवर्तन हुआ है। वह प्रायः बात कम करती है। पहले वह पैदल दस क़दम भी चलने में झिझकती थी। अब मील-दो-मील चलना दूर रहा, मज़दूरों के बीच वह घण्टों खड़ी-खड़ी बातें करती और उन्हें समझाती रहती है। उसने मज़दूरों के बच्चों में खिलौनों, किंडर-गार्टन-वस्तुओं और सचित्र ज्ञानवर्द्धक मनोरंजक पुस्तकों के वितरण के लिए एक फंड क़ायम किया है और तीन वर्ष से लेकर सात वर्ष तक के पाँच-सौ बच्चों में वह इन वस्तुओं को वितरित कर चुकी है। इसका फल यह हुआ कि मिल-क्षेत्र में उसे आते-जाते देख बच्चे दूर से पहचान कर प्रसन्नता से चिल्ला उठते हैं। सफ़ाई की ओर भी उसने विशेष ध्यान दिया है। मज़दूर बच्चों के वस्त्रों को साफ़ रखने और साबुन की टिकियाँ उन्हें आधे दाम में दिलाने के लिए उसने मज़दूर क्षेत्रों में अलग-अलग दूकानें स्थिर कर दी हैं। वहाँ टिकट दिखलाकर कोई भी मज़दूर सप्ताह में एक बार दो टिकियाँ साबुन आधे दाम में ले सकता है।

आजकल मालती कुछ विशेष प्रकार के चार्टस् बना रही है। उसमें मज़दूरों के स्वास्थ्य के क्रम-विकास का वार्षिक विवरण प्रदर्शित करने में चेष्टा की गयी है। उनके द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि सन्तानोत्पादन का उनका औसत क्या है? उनकी स्त्रियों में प्रायः किस प्रकार के रोग होते हैं, जिनसे वे मृत्यु के मुँह का ग्रास बन जाती हैं? उनके गार्हस्थ्य-जीवन की क्या स्थिति है? दूध, घी और चीनी उनमें कितनी वार्षिक खर्च होती है? उन मज़दूरों की संख्या किस परिमाण में है, जिन्हें लगातार तीन वर्ष कार्य करते हो चुके किन्तु जो अब भी तेली के बैल की तरह काम में जुते हुए हैं? उनमें अपराध-कारिणी वृत्तियाँ किस मात्रा में हैं और उनकी नैतिक मान्यताओं का स्तर क्या है? बीमार पड़ जाने पर बिना कर्ज़ लिये छः महीने तक चिकित्सा करा सकने की स्थिति जिन मज़दूरों की है उनका औसत क्या है?

पूर्णिमा को एक नया खेल सूझा है। अपने सभी परिचित व्यक्तियों के सम्बन्ध में उसने कुछ ऐसी सूचियाँ बनाई हैं जिनमें उनकी दुर्बलताओं और आदतों का उल्लेख किया गया है। सब से पूर्व उसने रघुनाथ बाबू (स्वामी) के सम्बन्ध में लिखा है। वे जब बाहर से आते हैं, तो सब से प्रथम मेरे पास आकर पूछते हैं—कैसी तबियत है? वे असिस्टेंट-इन्कमटैक्स आफ़िसर हैं। उनके कार्यालय में फ़ोन है। वे आफ़िस से नित्य चार बजे चल देते हैं। किन्तु सीधे घर न आकर पहले वे एक क्लब में जाते हैं। वहाँ टेनिस खेलते, जलपान करते, मित्रों के साथ गप लड़ाते और कभी-कभी सिनेमा देखकर लौटते हैं। नित्य नियम से चार बजने से कुछ मिनट, पहले फ़ोन पर मेरी पुकार होती है और प्रश्न होता है सब ठीक है न?

मतलब यह कि ये आशंकालु व्यक्ति हैं और सबसे अधिक भय उन्हें मेरी और फिर कुटुम्बियों की अस्वस्थता का रहता है। वे अमांगलिक कल्पनाओं से बुरी तरह घिरे रहते हैं।...माँ के सम्बन्ध में—वे सोचती है कि जो देश-भक्त नेता है, वह घर का ग़रीब ज़रूर है। उनकी बड़ी इच्छा रहती है कि वे उसकी कुछ भेंट करें और उसे अपने सामने बैठाकर अच्छे-से-अच्छा खाना खिलायें।...अपने जेठ (व्रजनाथ) के लिए।—वे प्रत्येक सुन्दर स्त्री पर अविश्वास करते हैं। उनका मतलब यह है कि जो स्त्री सुन्दर है, ज़ाहिर है कि उसके चाहने वाले भी अनेक होंगे ही। ऐसी दशा में सच्चरित्र बने रहने का अवसर ही उसे कहाँ रह जाता है! तात्पर्य यह है कि उनकी कमजोरी यह है कि प्रत्येक सुन्दर स्त्री को पाने के लिए वे लालायित खुद हो उठते हैं; और सोचते यह हैं कि उसका इस सीमा तक उदार होना स्वाभाविक है!... जीजी (तारिणी)—वे सोचती हैं, स्त्री के पास नित्य बदलने के लिए अगर नयी साड़ियाँ नहीं हैं, तो कुछ नहीं है।...मत्तू (शोफ़र) के सम्बन्ध में—वह सोने से कभी नहीं तृप्त होता। पाँच मिनट भी अगर उसको कहीं बैठने को मिल जायँ, तो वह सो जायगा।—अमिया (नौकरानी), हुक्म मिलने पर वह हमेशा दौड़कर जायगी। वह सोचती है कि जो दौड़कर तुरन्त चल नहीं देता, वह नौकरी करने के सर्वथा अयोग्य है। जान पड़ता है कि उसका भय रहता

है कि देर हो जाने पर मालिक कहीं नाराज़ न हो जांय।

मालती के सम्बन्ध में उसका कथन बड़ा विचित्र है। उसका कहना है कि बीबी अपने को छिपाकर रखना चाहती है। उनका भेद पाना कठिन है। वे किसी पर विश्वास नहीं करतीं।—रह गया विक्टर। सो उसकी आदत यह है कि अगर स्त्री का पैर उसके ऊपर रखा रहे, तो वह कभी उठकर न जायगा, चाहे जैसी भूख-प्यास या अन्य कोई आवश्यकता उसे बनी रहे!

इसके पश्चात् उन लोगों का नम्बर आता है, जो सार्वजनिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। एक आलोचक के सम्बन्ध में—वे किसी आधुनिक साहित्यकार को स्रष्टा नहीं मानते। यही कारण है कि जब तक वह मर नहीं जाता, तब तक वे उसमें अवगुण-ही-अवगुण देखते हैं। उनकी दृष्टि में समालोचक का अर्थ है छिद्रान्वेषक।...एक सम्पादक महाशय हैं। वे सोचते हैं कि गाली देना प्रसिद्धि पाने की सबसे बड़ी कुन्जी है और यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रतिभा के द्वारा यशस्वी हो रहा है, तो उसको गिराने के लिए सबसे उत्तम उपाय यह है कि उस पर किसी रचना के सम्बन्ध में चोरी का अपराध लगा दिया जाय।...एक प्रकाशक हैं। वे सोचते हैं कि उनका सहयोग अगर किसी ग्रन्थकार को प्राप्त न होगा, तो वह इस दुनिया से उठ जायगा।...एक अनुवादक महाशय हैं। उनकी कमज़ोरी यह है कि वे मौलिक ग्रन्थकारों की कृतियों की छान-बीन इस उद्देश्य से करते हैं कि येनकेन-प्रकारेण यह सिद्ध हो जाय कि भाव-ग्रहण करके उस पर अपनी सृष्टि करना भी या तो अनुवाद कार्य की श्रेणी में आना चाहिए अथवा अनुवाद-कार्य की गणना भी रचनात्मक कार्य के रूप से मान्य होनी चाहिए।...एक कवि महाशय हैं। वे नित्य सवेरे उठते ही उन्हीं पत्रों पर प्रथम दृष्टि डालते हैं, जो पिछले दिन की अपनी तथा मित्रों एवं परिचितों की डाक से छँटकर आते हैं और जिनमें उनकी काव्य-कला के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ छपा रहता है। जिस दिन ऐसा अवसर नहीं मिलता, कहा जाता है कि उस दिन वे सायंकाल अपने घर ज़रा देर और इतमीनान से लौटते हैं। एक प्रोफ़ेसर साहब हैं। वे उर्दू में कविता लिखते हैं। पर उनको अपने विषय में यह सुनने का बड़ा हौसला रहता है

हिन्दी कविता समझते खूब हैं। यद्यपि उनके सम्बन्ध में कहा यह जाता है कि जब वे किसी कवि की कविता पसन्द करते हैं तो सिगरेट होठों में दबाये हुए सबसे पहले उनके मन में जो प्रश्न उठता है, वह होता है—पता नहीं उसकी उमर क्या है!

इधर इस लिस्ट में दो नाम और बढ़ गये हैं।

शर्म्माजी—अगर वह किसी को प्यार करते हैं तो कथनों तथा भावों द्वारा ही नहीं, व्यावहारिक रूप से भी सिद्ध यही करना चाहते हैं कि वे उससे घृणा करते हैं। अर्थात् वे अपनी उस तृष्णा को छिपाना चाहते हैं, जो सौन्दर्य-लतिकाओं की ओर से अतृप्त रही हैं और जिसकी पूर्ति की सम्भावनाएँ अब उत्तरोतर घट रही हैं।

विनायक बाबू—उनको नव युवतियों के बीच में पकड़कर साधु बन जाने का बड़ा चसका है। खाने-पीने तथा स्वागत-सत्कार के अवसरों पर वे अपने को आज का महापुरुष अथवा पुरातन युग का ऋषि घोषित करना चाहते हैं। चाय के लिए अगर कोई आग्रह करता है, तो किसी ओर से संकेत आने पर वे दूध पीना स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु ऐसे अवसरों पर दूध होते हुए उनके सामने कुछ नारी रूपी बकरियों के भरे स्तन रहते हैं।

एक दिन संयोग से पूर्णिमा की मेज़ का यह दराज़ खुला रह गया, जिसमें यह लिस्ट रक्खा थी। पर पूर्णिमा को इसका कुछ भी ध्यान नहीं था। दूसरे दिन जब उसने चाभियों के गुच्छे को लेकर एक चाभी से उसे खोलना चाहा, तो उसे पता चला कि अरे यह तो खुला रह गया! तब झट से उस दराज़ को जोर से खींचा, तो देखती क्या है कि जीजी का हस्तलिपि में एक टिप्पणी उसके आगे और लिख गयी है :—

पूर्णिमा—वे वास्तव में सुन्दरी हैं। पर उतनी नहीं, जितनी मोहकता वे अपने व्यवहारों द्वारा प्रदर्शित कर पाती हैं। वे हँस बहुत अच्छा लेती हैं। यहाँ तक कि एक सभ्रांत कवियित्री को भी इस विषय में चाहें तो मात दे सकती हैं। (यद्यपि इसकी सम्भावनाएँ बहुत कम हैं; क्योंकि तब प्रश्न उठेगा इंटलेक्चुअल ब्यूटी का, जिसका उसमें अभाव है।) सम्भवत: वे प्रयत्नशील हैं

कि उनके सम्पर्क में आने वाले अधिक-से-अधिक व्यक्ति इस भ्रम में पड़ जायँ कि कहीं वे उन्हें प्रेम तो नही करतीं।

इस अभिनय का अर्थ भगवान जाने क्या है? अच्छा हो इस विषय में हिन्दी के उस आलोचक से पूछा जाय, जो फ़ायडियन मनस्तत्व का पंडित है और जिसका दावा है कि प्रेमचन्द के बाद हिन्दी फिक्शन ह्रास की ओर जा रहा है।

थाइस

अर्थ का अभाव मनुष्य को कितना पंगु बना डालता है, इसका अनुभव उसे तब होता है, जब ज़िम्मेदारियाँ नग्न रूप में सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। भीतर का सारा अहंकार, सारा दर्प, उस समय चूर-चूर हो जाता है। उसने अर्थ-संचय न करके कितने अविवेक का काम किया है, इसका पता उसे उसी समय चलता है। वह भाग्य को कोसता है, जिसे उसने अपने वश की वस्तु मानने की चेष्टा नहीं की। वह अपने अकल्पित अदृष्ट को भींकता है, जिसके सम्बन्ध में उसने अपने को असहाय मान रक्खा है और अन्त में वह उसी समाज के साथ समझौता करता है, कभी जिसके प्रति वह असन्तुष्ट हुआ था। गलती किसकी रहती है यह प्रश्न दूसरा है। गलती होने पर समझौता कर लेने में कोई हानि नहीं है।

किन्तु अधिक बल होने पर थोड़ी-बहुत गलती होने पर भी मनुष्य जो अपने स्वाभिमान और अहंकार की रक्षा कर पाता है, आर्थिक हीनता में उसकी सुविधा तो सदा दुष्कर हो रहेगी।

दिन कुछ चढ़ आया है! रेणु को साथ लिए, शर्माजी को घूमकर लौटते हुए अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ देर हो गयी है। रास्ते में मिल गया विपिन। बोला—सेठजी आज ही शाम की गाड़ी से बम्बई चले जायँगे।

आप उनसे इसी समय मिल लें। ताँगा मैं लिए आता हूँ। माँ जी को घर पहुँचाने के लिए मैं साथ चला जाऊँगा।

रेणु शर्म्माजी को अपनी ओर ताकता हुआ देखकर बोली—हाँ, ठीक तो है। तुम उनसे अभी मिल लो। मेरे साथ जाने की ऐसी कोई खास ज़रूरत भी नहीं है। अब यहाँ से घर दूर ही कितना है ? मैं अकेली भी जा सकती हूँ।

"ऐसी बात है। अच्छा तो···" शब्दों के साथ शर्म्माजी थोड़ी देर रुके ही थे कि विपिन ताँगा लाने चला गया।

लाल इमली के पास एक ओर खड़े चिन्तित शर्म्माज़ी बोले—समय प्रतिकूल है, नहीं तो कम्पनी के शेयर बिकने में देर न लगती। देखें, सेठ उजागरमल आज क्या उत्तर देते हैं।

"सब कुछ वार्तालाप पर निर्भर है"—रेणु ने कहा—अपनी आवश्यकताओं और कठिनाइयों का वर्णन न करके लगने वाली पूंजी की रक्षा और अनिवार्य लाभ के सम्बन्ध में ध्यान आकर्षित करना अधिक उपयोगी होगा।

रेणु की सलाह सुनकर शर्म्माजी मुस्कराने लगे। बोले—तुमको आपत्ति या संकोच न हो, तो मेरी यह भी इच्छा है कि इसके लिए तुम्हीं चली जाओ।

सचमुच रेणु सोच-विचार और संकोचमें पड़ गयी। बोली—अच्छी बात है। मैं ही चली जाऊँगी। लेकिन कहीं ऐसा न हो कि सेठजी लजा जायं और मुझसे पूरी बात भी न कर पायें। यह भी हो सकता है कि टाल दें। इससे तो अच्छा हो कि मैं तुम्हारे साथ चली चलूं। बाद में अगर आवश्यकता होगी, तो मैं फिर मिल लूंगी।

शर्म्माजी बोले—हाँ, बस यह तै रहा।

विपिन इसी समय ताँगा ले आया। शर्म्माजी बोले—तै यह हुआ है कि हम सब लोग चलेंगे।

विपिन प्रसन्नता से उछल पड़ा। बोला—अच्छा ! मुझे यह निश्चय बहुत

पसन्द आया शर्म्माजी ! ...अब तो सफलता निश्चित है ।

तब ताँगे में रेणु और शर्म्माजी पीछे बैठे, विपिन आगे । अभी वे थोड़ी दूर ही चले होंगे कि विपिन बोला—कितने अंधेर की बात है कि बाजार में जाओ, तो गेहूँ मिलना दुर्लभ है । किन्तु कल शाम को मैं लाला केदारनाथ के गोदाम से गुज़रा था । वहाँ संयोग से एक मित्र मिल गये और खड़े-खड़े मैं जो उनसे बातें करने लगा, तो क्या देखता हूँ कि अन्दर हजारों बोरे माल भरा पड़ा है । पूछने पर एक पल्लेदार ने बतलाया कि गेहूँ हैं साहब, गेहूँ ।

आश्चर्य में डूबकर रेणु बोली—ऐसा भी कहीं हो सकता है ?

विपिन ने उत्तर दिया—"होने की बात चाहे न हो, पर इतना तो है ही कि हो रहा है ।"

"तब हो क्यों नहीं सकता ? सब कुछ हो सकता है । किन्तु"...... शर्म्माजी ने बतलाया—"यह है पूँजीवादी अर्थनीति का दुष्परिणाम । एक युग था जब मनुष्य को पदार्थों की कमी के कारण कष्ट होता था । पर आज जबकि उत्पादन की प्रचुरता है, तो भी मनुष्य को उपयोग के लिए उचित परिमाण में पदार्थ नहीं मिलते ! बात यह है कि पूँजीपति चाहता है कि जनता को चाहे जितना कष्ट हो, पर उसको अन्धा-धुन्ध मिलता जाय । वह अपने कारखाने में एक ओर माल तैयार कराने की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि चाहता है, दूसरी ओर उसकी दृष्टि इस बात पर लगी रहती है कि माँग में कमी न होने पाए; क्योंकि अगर बाजार में माल अधिक पहुँच जायगा, तो माँग में अन्तर आ जायगा । इसलिए वह कभी कारखानों में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या घटाने लगता है और कभी तैयार माल को बाजार में न भेजकर गोदामों में भरना प्रारम्भ कर देता है । कहीं-कहीं तो बाजार-दर को स्थिर रखने के लिए तैयारशुदा माल नष्ट तक कर दिया जाता है । एक ओर जनता भर-पेट भोजन न मिलने के कारण भूखी और नंगी रहती है, दूसरी ओर पूँजीपति माल की खपत बढ़ाने के लिए करोड़ों मन गेहूँ जलाकर नष्ट कर डालता है ।

इसी समय विपिन ने प्रश्न कर दिया—किन्तु सरकार भी तो ऐसी दशा

में बिक्री की दरों पर नियंत्रण लगा देती है।

शर्म्माजी बोले—उसका परिणाम यह होता है कि जनता में भविष्य के सम्बन्ध में नाना प्रकार के संशय और आशंकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। वह यह सोचने का अवसर पाती है कि आगे कौन जाने इस भाव से माल मिले, न मिले। तब वह उसे आवश्यकता से अधिक खरीदने पर विवश होती है। इस प्रकार अन्त में लाभ पूंजीपति ही उठाते हैं। जनसाधारण के जीवनक्रम में ऐसी अनिश्चितता इसी युग—और सो भी पूंजीवादी युग में—सम्भव हो सकी है।

रेणु बोली—पर यह तो एक प्रकार की हिंसा है।

तब शर्म्माजी ने बतलाया—इस विषय में अमेरिकन खानों के मजदूरों से सम्बन्ध रखने वाला एक संवाद है :

"एक कोयले की खान का मजदूर है। वह घर पर नहीं है। सर्दी देखकर लड़का अपनी माँ से पूछता है—आज यह क्या बात है माँ, जो तुम आग नहीं जला रही हो ! देखती नहीं हो कितनी सर्दी पड़ रही है !

माँ उत्तर देती है—बेटा, घर में कोयला नहीं है।

"बाजार से क्यों नहीं मँगवा लिया ?"—लड़के ने पूछा।

नहीं मिला और क्योंकि हमारे पास पैसे चुक गए हैं।

लड़का फिर पूछता है—पर बाबूजी को काम क्यों नहीं मिला, माँ ?

माँ का उत्तर होता है—कोयला बहुत ज्यादा तैयार हो रहा है इसलिए।"

रेणु और विपिन सुनकर स्तब्ध रह गये।

फिर भी स्पष्टीकरण किये बिना शर्म्माजी की तबियत नहीं मानी। बोले—लड़का शीत के कारण काँप रहा है, उसके दाँत कट्कट् बोल रहे हैं, क्योंकि उसके घर में आग जलाने के लिए कोयले का अभाव है। कोयले का अभाव इसलिए है कि उसके पिता को काम नहीं मिला और इसी कारण उसके घर में पैसे नहीं हैं और काम उसे इसलिए नहीं मिला कि कोयला प्रचुर प्रमाण में पैदा हो गया है। अर्थात् कोयले के उत्पादन की प्रचुरता ने उत्पादक के लड़के को सर्दी से ठिठुरने के लिए विवश किया है।

सुनकर रेणु बोली—अर्थात् पूंजीपतियों के गोदामों में लाखों मन गेहूँ भरा पड़ा है, इसलिए हम लोगों को गेहूँ नहीं मिल रहा है।

तांगा रामनारायण बाजार से गुजर रहा था कि अवधबिहारी (विज्ञापन-क्लर्क) जाता हुआ दिखाई पड़ा। तब शर्माजी ने तांगा खड़ा करवा दिया। अवधबिहारी को निकट बुलाकर उन्होंने उससे पूछा—कहीं काम मिला ?

अवधबिहारी ने सिर नीचा कर लिया। कोई उत्तर न देकर वह नाखून से ज़मीन खोदने लगा।

शर्माजी बोले—नहीं मिला न ?

अवधबिहारी ने सिर उठाया। उसकी आंखों में आंसू छलछला आये थे।

शर्माजी ने कहा—फौरन घर जाओ और खाना खाकर आफिस आओ और काम सम्हालो।

अवधबिहारी ने शर्माजी के पैरों पर सिर रख दिया। वह सिसकियाँ भरता हुआ रो रहा था।

सिर पर हाथ रखकर सान्त्वना देते हुए शर्माजी बोले—पागलपन मत करो! उठो, भविष्य मे कभी ऐसी गलती न करना। अच्छा ?

अवधबिहारी जब चलने लगा तो शर्माजी ने भी तांगेवाले से कहा—चलो, बढ़ाओ।

तेइस

ज्ञान-मात्र वह वस्तु नहीं है, जो मनुष्य को तपन से बचा सके। इसके लिए उसमे होना चाहिए साहस और आत्मबल। किन्तु जो लोग भोगविलास मे नित्य डूबे रहते हैं, वे अपने शरीर पर किसी तरह की आंच तक आना गवारा नहीं कर सकते। उनके स्नायु बहुत सेंसिटिव (नाजुक) होते हैं। अतएव

रुपये होंगे। पर वे तो तुम्हारी न्यौछावर के लिए भी काफ़ी न होंगे बूंदी।"

"यह मैं नहीं मानती। तुम इतने बड़े आदमी हो। बाजार से दस-बीस हजार रुपया तुमको महज़ रुक्के पर मिल सकता है। मैं तो सिर्फ़ दो हजार मांगती हूँ।"

"लेकिन इतना रुपया मैं एक साथ कैसे मांग सकता हूं। मेरी इज़्ज़त लेना चाहती हो?"—कहते हुए ब्रजनाथ बाबू नशे में होने पर भी कुछ सावधान हो गये।

"और मेरी इज़्ज़त की कोई क़ीमत नहीं है?" भृकुटियां तरेर कर बूंदी बोली।

"वेश्या की भी कोई इज़्ज़त होती है! नाली के कीड़े उससे फिर भी कुछ पाक होते हैं।"

ब्रजनाथ के स्वर में कुछ तीव्रता थी।

बूंदी की मुद्रा विकृत हो गयी। होंठ काटती हुई वह बोली—और अमीरों के घरों की बहू-बेटियां कैसी होती हैं, क्या मैं आपको बतलाऊं! आपकी बहन, जिसका नाम मालती है, किस किसके साथ पार्कों और आम सड़कों पर यारों से गले में हाथ डलवाये और होटलों में उन्हें सीने से चिपटाये घूमती रही है, आपको पता नहीं है उसका?

"तुम झूठ बोलती हो। तुमने ऐसी बात कही है कि तुम्हारे मुंह में कीड़े पड़ेंगे।"

"मैं ठीक कहती हूं। मेरे पास फ़िल्म रक्खे हैं। आप जब चाहें तब उन्हें देखकर मेरी बात की दिलजमई कर सकते हैं।...और आप खुद क्या हैं! मेरे पास उस चिट्ठी की कॉपी है, जिसमें जानकारी से आपका नाजायज़ ताल्लुक साबित है। शीशे में अपना मुंह देख लीजिये! वह मासूम बच्चा, जो पेट से लहू और लोथडों की शक्ल में निकाला गया, क्या आपके मुंह पर स्याही पोतने के लिए काफ़ी नहीं है?

ब्रजनाथ बाबू का नशा हिरन हो गया है। वे गश खाकर गिर पड़े, बूंदी ताली बजाती हैं। ठंडे पानी के छींटे और हवा का उपयोग हुआ।

चार बज रहे हैं। ब्रजनाथ बाबू की तबियत कुछ स्थिर हुई है। किन्तु उनका सिर दर्द कर रहा है। वह सोच रहे हैं कि कहाँ आकर फँस गया। किन्तु बारम्बार मालती की बात सोचने लगते हैं। घृणा अन्दर फँसकर उनके रोयें-रोयें को जैसे नोचने लगती है।

थोड़ी देर को बूँदी आराम करने के लिए चली गयी थी। द्वार पर जो आदमी उसने ब्रजनाथ बाबू की निगरानी के लिए बैठा दिया था ज्योंही उसने देखा, वे उठ बैठे हैं, त्योंही उसने बूँदी को सूचित कर दिया। तुरन्त बूँदी वहाँ आ पहुँची। कुटिल मुस्कान के साथ सहानुभूति प्रकट करती हुई बोली—मुझे बड़ा अफसोस है कि मैंने नाहक आपको तकलीफ दी। मुझे पता नहीं था कि आप लिफाफ़िये रईस हैं, असल में आपके भीतर पोल है और आप वक्त जरूरत पर दस-पाँच हजार रुपये भी अपनी आबरू बचाने के लिए खर्च नहीं कर सकते। रोजमर्रा के खर्चे-भर का इन्तजाम जो आपके बुजुर्ग लोग कर गये हैं, उसी के भरोसे आप खयाली लुत्फ उड़ाते रहते हैं। अगर मुझको पहले से यह इल्म होता तो मैं आपको कतई तकलीफ न देती। आप यह भी न सोचें कि मैंने आपको जबरदस्ती रोक रक्खा है। आप जब चाहें तब खुशी-खुशी जा सकते हैं। हालाँकि आपके आराम के लिए यहाँ हर एक चीज मुहैया है। मैं हर तरह से आपकी खिदमत करने के लिए तैयार हूँ। रुपये की अजहद जरूरत न होती, तो मैं आपको कतई तकलीफ़ न देती। अब भी आपको मैं तकलीफ देना नहीं चाहती। यही जरा-सा खयाल हो आता है कि आप एक इज्जतदार आदमी हैं और अगर आपकी बदनामी होगी, तो पता नहीं, आपके दिल पर क्या गुजरे। ऐसे मौकों पर आदमी क्या नहीं कर गुजरता! इसी वक्त मैं आपके चेहरे को जो देखती हूँ, तो मुझे एक खौफनाक खयाल हो आता है। आज जब आप तशरीफ़ लाये थे, तो आपका चेहरा गुलाब के फूल के मानिन्द खिला हुआ था। अब मगर इस वक्त अगर कोई देखे, तो कसम से, वह डर जरूर जाय! मगर मैं आपको ज्यादा तकलीफ़ नहीं दे सकती। अगर आपकी तबियत खुश रहेगी, तो कभी-न-कभी आप मुझे फल ही जायेंगे। रुपया मुहब्बत के आगे कोई हस्ती नहीं रखता। मैं

रुपये होंगे। पर वे तो तुम्हारी न्योछावर के लिए भी काफ़ी न होंगे बूंदी।"

"यह मैं नहीं मानती। तुम इतने बड़े आदमी हो। बाज़ार से दस-बीस हज़ार रुपया तुमको महज़ रुक्के पर मिल सकता है। मैं तो सिर्फ़ दो हजार मांगती हूँ।"

"लेकिन इतना रुपया मैं एक साथ कैसे मांग सकता हूं। मेरी इज़्ज़त लेना चाहती हो?"—कहते हुए ब्रजनाथ बाबू नशे में होने पर भी कुछ साव-धान हो गये।

"और मेरी इज़्ज़त की कोई क़ीमत नहीं हं?" भृकुटियां तरेर कर बूंदी बोली।

"वेश्या की भी कोई इज़्ज़त होती है! नाली के कीड़े उससे फिर भी कुछ पाक होते हैं।"

ब्रजनाथ के स्वर में कुछ तीव्रता थी।

बूंदी की मुद्रा विकृत हो गयी। होंठ काटती हुई वह बोली—और अमीरों के घरों की बहू-बेटियाँ कैसी होती हैं, क्या मैं आपको बतलाऊं! आपकी बहन, जिसका नाम मालती है, किस किसके साथ पार्कों और आम सड़कों पर यारों से गले में हाथ डलवाये और होटलों में उन्हें सीने से चिपटाये घूमती रही है, आपको पता नहीं हैं उसका?

"तुम झूठ बोलती हो। तुमने ऐसी बात कही है कि तुम्हारे मुंह में कीड़े पड़ेंगे।"

"मैं ठीक कहती हूं। मेरे पास फ़िल्म रक्खे हैं। आप जब चाहें तब उन्हें देखकर मेरी बात की दिलजमई कर सकते हैं।…और आप खुद क्या हैं! मेरे पास उस चिट्ठी की कॉपी है, जिसमें जानकारी से आपका नाजायज़ ताल्लुक साबित है। शीशे में अपना मुंह देख लीजिये! वह मासूम बच्चा, जो पेट से लहू और लोथडों की शक्ल में निकाला गया, क्या आपके मुंह पर स्याही पोतने के लिए काफ़ी नहीं है?

ब्रजनाथ बाबू का नशा हिरन हो गया है। वे गश खाकर गिर पड़े, बूंदी ताली बजाती हैं। ठंडे पानी के छींटे और हवा का उपयोग हुआ।

चार बज रहे हैं। ब्रजनाथ बाबू की तबियत कुछ स्थिर हुई है। किन्तु उनका सिर दर्द कर रहा है। वह सोच रहे हैं कि कहाँ आकर फँस गया। किन्तु बारम्बार मालती की बात सोचने लगते हैं। घृणा अन्दर फैलकर उनके रोयें-रोयें को जैसे नोचने लगती है।

थोड़ी देर को बूँदी आराम करने के लिए चली गयी थी। द्वार पर जो आदमी उसने ब्रजनाथ बाबू की निगरानी के लिए बैठा दिया था ज्योंही उसने देखा, वे उठ बैठे हैं, त्योंही उसने बूँदी को सूचित कर दिया। तुरन्त बूँदी वहाँ आ पहुँची। कुटिल मुस्कान के साथ सहानुभूति प्रकट करती हुई बोली—मुझे बड़ा अफ़सोस है कि मैंने नाहक आपको तकलीफ दी। मुझे पता नहीं था कि आप लिफाफिये रईस हैं, असल में आपके भीतर पोल है और आप वक्त जरूरत पर दस-पाँच हजार रुपये भी अपनी आबरू बचाने के लिए खर्च नहीं कर सकते। रोजमर्रा के खर्चे-भर का इन्तजाम जो आपके बुजुर्ग लोग कर गये हैं, उसी के भरोसे आप खयाली लुत्फ उड़ाते रहते हैं। अगर मुझको पहले से यह इल्म होता तो मैं आपको कतई तकलीफ न देती। आप यह भी न सोचें कि मैंने आपको जबरदस्ती रोक रक्खा है। आप जब चाहें तब खुशी-खुशी जा सकते हैं। हालांकि आपके आराम के लिए यहाँ हर एक चीज मुहैया है। मैं हर तरह से आपकी खिदमत करने के लिए तैयार हूँ। रुपये की अजहद जरूरत न होती, तो मैं आपको कतई तकलीफ न देती। अब भी आपको मैं तकलीफ देना नहीं चाहती। यही जरा-सा खयाल हो आता है कि आप एक इज्जतदार आदमी हैं और अगर आपकी बदनामी होगी, तो पता नहीं, आपके दिल पर क्या गुजरे। ऐसे मौकों पर आदमी क्या नहीं कर गुजरता! इसी वक्त मैं आपके चेहरे को जो देखती हूँ, तो मुझे एक खौफनाक खयाल हो आता है। आज जब आप तशरीफ लाये थे, तो आपका चेहरा गुलाब के फूल के मानिन्द खिला हुआ था। अब मगर इस वक्त अगर कोई देखे, तो क़सम से, वह डर जरूर जाय! मगर मैं आपको ज्यादा तकलीफ़ नहीं दे सकती। अगर आपकी तबियत खुश रहेगी, तो कभी-न-कभी आप मुझे फल ही जायँगे। रुपया मुहब्बत के आगे कोई हस्ती नहीं रखता। मैं

आपको अभी लालपरी से मुलाक़ात कराये देती हूँ। वात-की-वात में वह आपका ग़म ग़लत कर देगी।

और इसके वाद सचमुच बूंदी ने ताली वजा दी। सेविका आवाज़ के साथ हाज़िर हो गयी।

इस समय व्रजनाथ वावू के मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विचार आ-जा रहे थे। वह जानते हैं कि यह वेश्या है। उन्हें अच्छी तरह से इस वात का पता है कि वेश्या के हृदय नहीं होता। वह कोई भी काम कर सकती है। कुछ भी उससे वचा नहीं होता। वह जिसके गले में वाहें डाल कर रो रही है, सम्भव है, शाम को ही उसे ज़हर पिला दे। झूठ वोलने, धोखा देने, रूप, सौंदर्य और कलात्मक प्रदर्शनों, मोहों और आकर्षणों में फाँसकर वह किसी का भी सर्वस्व हरण कर सकती है। किन्तु वह अपनी तीन मिनट की वातचीत में कितने रंग वदल सकती है, इसका प्रत्यक्ष ज्ञान उन्हें इसी समय हो रहा था।

घृणा से मुँह वनाकर व्रजनाथ वावू वोले—तुम लोग कितनी मक्कार होती हो, इसका मुझको आज पता चला।

"आप विलकुल ठीक कहते हैं व्रजनाथ वावू" तपाक से बूंदी वोली—"और आप लोग कौन हैं, यह भी क्या मैं आपको वताऊँ? आप लोगों के पास रुपया भरा पड़ा रहता है, तो भी आप लोगों के यहाँ नौकरों को इतनी काफ़ी तनख्वाह नहीं मिलती कि वे वेफ़िकरी के साथ आराम की ज़िन्दगी विता सकें। उनको आपने इस क़ाविल वना रक्खा है कि उनमें मालिक के लिए खैरख्वाह रहने का खयाल तक मर गया है। वे लोग अदना-से-अदना और ज़लील-से-ज़लील वातें मौक़ा पड़ने पर लोगों को वतलाने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाते। वे निगाह वचाकर, मालकिन की लापरवाही से चोरी करते, चीजें उड़ाते और क़भी-कभी तो चोरी, डाका और वहू-वेटियों के भगाने तक में भेदिये वनकर और दूसरे तरीकों से इमदाद पहुँचाने को मजवूर होते हैं! आप उनके वीमार हो जाने पर (तनख्वाह के अलावा) उनकी क्या मदद करते हैं? ज्यादा तनख्वाह पानेवालों को निकालकर कम पर राज़ी हो जाने

वाले नौकर आप लोग अपने दफ़्तरों और कारखानों में नहीं रखते ? हिसाब-किताब के मामले में ग़बन से आप लोग एकदम पाक हैं ! ज़मीन-जायदाद के बटवारे के लिए इन्साफ़ और सच्चाई को ताक में रखकर पैसे के बल पर ही, अदालतों से आप भाई-भतीजों और हिस्सेदारों का हक़ नहीं मारते ? पैसा काफ़ी जमा रखने पर भी ख़्वाहिशमन्द; मज़बूर और मुसीबतों में मुब्तिला ग़रीबों और यतीमों को ही नहीं, मौके पर अपने अज़ीज़-से-अज़ीज़ आदमी तक को बेरंग वापस नहीं कर देते ? क्या आप लोगों में ऐसे लोगों की मिसालें नहीं मिल सकतीं, जो बहनों-बेटियों और भतीजियों तक का रुपया हड़पने से बाज़ नहीं आते ? एक ही हालत, मौके और मामले को कई आदमियों से जुदा-जुदा तौर से बतलाने में आप लोग कभी चूकते हैं ? आप कितने मक्कार हैं, ज़रा अपने आपसे पूछिये ।"

ब्रजनाथ बाबू सन्न रह गये।

बूँदी बोली—ज़रा सोच-समझकर बातें किया कीजिये। मैं सिर्फ़ इस ख़याल से चुप थी कि जब मैं आपसे मुहब्बत करती हूँ, तब मुझे आपको नाराज़ नहीं करना चाहिये। लेकिन आप मेरी हर बात को ग़लत समझते हैं, यह भी कोई शरीफ़ाना बर्ताव है !

"मैं माफ़ी चाहता हूँ बूँदी"—ब्रजनाथ बाबू ने कहा—'मुझे अफ़सोस है कि मैंने तुम्हारा जी दुखाया। रुपया मैं तुमको दो हज़ार अभी मरीज़ से ला दूँगा। पर पहले तुमको यह बताना पड़ेगा कि मेरी और मालती की बाबत ये बातें तुमको कहाँ से और कैसे मालूम हुईं।"

"हूँ-हूँ ! आप तो बच्चों की-सी बातें करते हैं ब्रजनाथ बाबू।"—बूँदी ने सोच से उठकर कहा—"यानी आप मुझे बेवकूफ़ समझते हैं।"

ब्रजनाथ—क्या तुमको मेरी बात पर यक़ीन नहीं ? क्या तुम सोचती हो कि इस हद तक राज़ी होकर मैं पलट सकता हूँ ?

कुछ ढील देती हुई बूँदी बोली—बात तो कुछ ऐसी ही है। पर ख़ैर। मान लेती हूँ। चलिये, पहले थोड़ा जलपान कर लीजिये।

सेविका सामने खड़ी थी। बूँदी ने पूछा—सब तैयार है न ?

वह बोली—हाँ, सब तैयार है।

"पर मुझे तो कुछ इच्छा नहीं है।"—ब्रजनाथ बाबू ने कुछ अरुचि का भाव दिखाकर कहा।

सेविका चली गयी।

बूंदी उठी और उसने ब्रजनाथ बाबू के कन्धे पर हाथ रखकर पूछा—इतनी-सी बात में नाराज़ हो गये। यह भी नहीं हुआ कि पहली मुलाक़ात के ही सिलसिले में समझ लेते कि इतना तो नज़राना मेरा होता है। उठिये, चलिये।

पछताता हुआ ब्रजनाथ बोला—इस तरह की मात मैंने कहीं नही खायी।

बूंदी खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—अच्छा, तुम इसमें अपनी मात समझते हो।

"क्यों, यह मात नहीं तो और क्या है कि धोंस के साथ, जैसे पिस्तौल की नोक पर, रुपये वसूल कर रही हो!"

"रुपया देते हुए वाक़ई बहुत खल रहा है!"

"क्यों, खुशी से रुपया देना और बात है, पर यह तो सरासर लूट है, डाका है—हत्या!"

"अच्छा जाओ, मैं सब छोड़ती हूँ।···अब तो कर लो कुछ जलपान।

ब्रजनाथ बाबू उठे, मुसकराये और बोले—तुम बड़ी शैतान हो। मैं तुमको कभी नहीं भूल सकता।

बूंदी खिलखिलाकर हँसने लगी। बोली—ऐसा! नहीं, ऐसी बात नहीं है!

ब्रजनाथ उसके साथ दूसरे कमरे में चले गये।

परन्तु ज्योंहीं वह उस कमरे में पहुँचे, त्योंही क्या देखते हैं कि वहाँ एक ओर कुरसी टेबिल पर एक फ़ोन लगा है, दूसरी टेबिल पर मिठाई-नमकीन और चाय है; साथ ही शेम्पेन और सोडे की बोतलें और गिलास।

फ़ोन की ओर संकेत करती हुई बूंदी बोली—सुभीते की जगह है। यहीं बैठे-बैठे आप चाहे जिस सर्राफ के यहाँ से रुपया मँगा सकते हैं।

ब्रजनाथ अनुभव कर रहा था, कि बिल्ली जिस तरह चूहे को खिलाती है,

उसी तरह आज यह मुझे खिला रही है। उसकी इच्छा हुई वह पुलिस को फोन कर दे कि ऐसा संगीन मामला है। परन्तु बूंदी बराबर उसकी दृष्टि और भंगिमा को ताड़ रही थी। वह पास ही बिलकुल सटकर बैठ गयी और डाइरेक्टरी देती हुई बोली—नम्बर खोजकर [illegible] किसका फ़ोन करूँ। आप को सिर्फ़ इतना कहना पड़ेगा कि "हाँ, हूँ मैं ब्रजनाथ कपूर। आपको ठीक बतलाया गया है। मैं इस वक्त वाक़ई रुपये की ज़रूरत में हूँ। किसी मातबर आदमी के हाथ दो हज़ार रुपये मेस्टनरोड पर'''की बिल्डिंग में (दस-दस के नोटों की शक्ल में) भेज दीजिये। मैं वहीं मिलूँगा और रसीद उसी वक्त दे दूँगा। ये रुपए आपको मैं कल इसी दूकान पर दे जाऊँगा। मैं इस वक्त अपने आफ़िस से बोल रहा हूँ।"

ब्रजनाथ बाबू ने दृढ़ता के साथ कहा—मैं यह सब कुछ नहीं कहूँगा। अपना आदमी साथ कर दो, उसी को मैं रुपया दे दूँगा।

बूंदी ने भी रुखाई के साथ कहा—अच्छी बात है मुझे अब आपसे दूसरी तरकीब से रुपये वसूल करने पड़ेंगे। मुझे आदमी भेजने की भी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। आप खुशी से मुझे मेरे मकान पर रुपया दे जायँगे।

बूंदी के इस कथन के बाद ब्रजनाथ बाबू एक बार फिर सन्न रह गये। किन्तु एक मिनट के बाद जब वह चाय बना ही रही थी ब्रजनाथ बाबू ने फ़ोन हाथ में लेकर चट से अंग्रेजी में कुछ कह कर फोन यहां पर रख दिया।

उधर ब्रजनाथ बाबू को फोन करते देखकर उत्फुल्ल बूंदी बोली—एक बात पूछूँ, अगर बुरा न मानें।

गम्भीरता के साथ ब्रजनाथ बाबू ने कहा—बुरा मानने की बात का डर तुमको भला मुझसे क्यों होने लगा?

बूंदी फ़ोन की बात सुन ही चुकी थी। अतएव अवसर देखकर बोली—अच्छा यह बात है!

उसने पुकारा—रमज़ान!—हुसेनी!

आवाज़ के साथ रमज़ान वहीं आ पहुँचा और हुसेनी ये कहा—हुज़ूर।

बूंदी बोली—देखो, बाबू को तहखाने में ले जाओ और चौबीस घंटे बाद

हालत की इत्तिला दो।

तब एक ओर से रमज़ान ने ब्रजनाथ बाबू का हाथ पकड़ लिया, दूसरी ओर से हुसेनी ने।

ब्रजनाथ बाबू ने पहले तो हाथ झटकते हुए कहा—क्या करते हो।

रमज़ान बोला—तो फिर सीधी तरह चले चलिये न।

ब्रजनाथ ने अब एक ओर तो यह देखा कि किसी तरह खैरियत नहीं है, दूसरी ओर उन्हें भरोसा था कि पुलिस चल चुकी होगी। इन दोनों स्थितियों से परे एक बात और थी। वे सोचते थे कि रुपया घूस देकर यह अपने को झट छुड़ा तो लेगी ही, मेरा जाने क्या हाल हो।

इस अमांगलिक कल्पना से वे काँप उठे। फिर सोचने लगे—यदि मैं छूट भी गया तो, बाद में अगर उसने भेद खोल दिया, जिसके लिए वह तत्पर भी है, तब क्या होगा ! और उस स्थिति की कल्पना करके वे नितान्त अस्थिर उठे !

एक क्षण यदि और व्यतीत हो जाता तो दोनों आदमी ब्रजनाथ बाबू को घसीट कर ले जाने के लिये तत्पर हो जाते। किन्तु उसी क्षण उन्होंने कहा—मैं रुपया अभी मँगाये देता हूँ, बूंदी। मेरे साथ इस तरह का बर्ताव मत करो।

"छोड़ दो तुम लोग बाबू साहब को।" कथन के साथ तुरन्त उनको छोड़ देते ही फ़िर ज़रा भी रुके बिना कुटिल मुस्कान के साथ बूंदी ने कह दिया—आइये, ज़रा चाय पी लीजिये।

पर ब्रजनाथ बाबू ने तुरन्त फ़ोन उठा लिया, मिलाया और बोले—हाँ, यह बात यों ही थी। फ़ैसला हो गया। तकलीफ़ के लिए माफ़ी चाहता हूँ।...जी ?... शुकराना ? अच्छी बात है। कल मिल जायगा। फिर उन्होंने बूंदी के प्रस्तावानुसार एक सर्राफ़ से वास्तव में दो हज़ार रुपये भेजने के लिए कह दिया।

आतंकपूर्ण, चिन्त्य और अवांछनीय वातातावरण उपस्थित हो जाने के कारण ब्रजनाथ बाबू पसीने से लथपथ हो गये थे। अक्टूबर महीना चल रहा

था, फिर भी उनको पंखे की उस समय आवश्यकता जान पड़ती थी।

मुसकराते हुए बूंदी ने पूछा—"आप मुझसे नाराज तो नहीं हैं !"

और...उसने कप व्रजनाथ के सामने बढ़ा दिया ; साथ ही मिठाई और नमकीन की तश्तरी।

किन्तु उन्होंने कहा—पर मैं इस वक्त एक दूसरी चीज चाहता हूं।

बूंदी बोली—बतलाइये।

व्रजनाथ बाबू ने आलमारी की ओर संकेत करते हुए कहा—वैनिटि बक्सी। फिर रूमाल से वे अपना मुंह पोंछने लगे।

चौबीस

लड़ना साधारण बात नहीं है। जिसमें साहस, आत्मबल और क्रियात्मक कल्पना-शक्ति नहीं, वह कभी लड़ नहीं सकता। किन्तु मनुष्य की एक ऐसी स्थिति भी होती है जब वह दूसरों से न लड़कर अपने आपसे लड़ता है। ऐसी दशा में वह प्रायः उसी कर्तव्य और धर्म की ओर बढ़ता जाता है, जिसको उसका अन्तःकरण तो स्वीकार नहीं करता, किन्तु जीवन और जगत के नाना प्रश्नों से आक्रान्त होने के कारण जिसमें उसके विवेक को अपूर्व तृप्ति मिलती है। ऐसा व्यक्ति संसार के ऊपर उठकर गगनविहारी हो जाता है। जीवन की नग्न यथार्थताएँ वह स्वीकार न करके मनुष्य के उस रूप की कल्पना को साकार देखना चाहता है, जो साधारण न होकर सर्वथा असाधारण किंवा अपवाद है।

किन्तु मनुष्य के मन और उसके कार्य-कलाप की रेखाएँ उसके इस द्वन्द्व को कभी छिपा नहीं सकतीं। और विकृति के रूप में हो या उत्सर्ग के रूप में, मनुष्य सदा मनुष्य ही बना रहता है।

उस दिन के बाद, जब रेणु ने तबियत खराब होने के कारण :

लती को अपने यहाँ रोक लिया था, न तो शर्म्माजी ने मालती के सम्बन्ध में कोई चर्चा की, न रेणु ने ही उस प्रसंग को कभी फिर से उठाया। घर-गृहस्थी से लेकर सार्वजनिक जीवन तथा संसार की आधुनिक गति-विधि तक नित्य ही दोनों चर्चा करते; पर मालती का नाम दोनों में से कोई भी जान-बूझ कर नहीं लेता था। मानों इस विषय में दोनों एक-दूसरे के मन की स्थिति तथा भविष्य के सम्बन्ध में उसकी निर्धारित नीति से पूर्णतया परिचित हों; मानों उन्होंने आपस में यह होड़ लगा ली हो कि देखें कब तक वह या वे रात की इस घटना को अत्यन्त साधारण किंवा नगण्य बनाये रख सकेंगे।

इधर दोनों में कुछ दिनों से एक बात और चल रही थी। रेणु उत्तरोत्तर अपने स्वस्थ्य सुधार तथा सौंदर्य-प्रसाधन में अग्रसर हो रही थी। अब पहले की अपेक्षा वह अपने वस्त्र कहीं अधिक उज्ज्वल रखती थी। इस विषय में वह इतनी सतर्क थी कि किसी भी समय यदि उसे शर्म्माजी के साथ चल देने का अवसर आता, तो बिना फिर से वस्त्र बदले हुए वह उसी दशा में चलने को तत्पर हो सकती थी। साड़ी, वॉडिस, ब्लाउज़ चोटी और चप्पल; यहाँ तक कि कागज़ात रखने का बैग तक उसका सदा अपनी जगह पर तत्पर रहता था। तबियत पर उलझन रहने पर भी वह अपने भावों को छिपाकर हंसकर बातें कर सकती थी। पैदल चलते-चलते थक जाने पर भी उसे थकान स्वीकार करते एक तरह की झिझक होती थी। सवेरे पाँच बजे उठकर वह घूमने के लिए चल देती और सात-साढ़े सात के पहले कभी नहीं लौटती थी। जिस समय वह लौटकर आती, उस समय घर का कोना-कोना तक उसे साफ़-सुथरा मिलता। रसोई में चाय का पानी गरम मिलता और साथ में खाने के लिए पकौड़ों, शकरपारा अथवा हलुवा; इस तरह की कोई-न-कोई चीज़ तैयार रहती। रज्जन तब तक नहा-धो कर कपड़े बदल चुकता था। या तो पता चलता कि वह सुधा के घर खेलने चला गया, अथवा सुधा स्वतः वहाँ उसके साथ खेलती मिलती। चाय-चक्रम से निपट कर रेणु लगे हाथों तुरन्त रसोई चढ़ा देती और साढ़े नौ या दस बजते-बजते खाना तैयार हो जाता। इसके बाद शर्म्माजी तो दफ्तर चले जाते, रेणु शर्म्माजी के, अपने और रज्जन के

पहनने के कपड़े सम्हालती। सीवन टूटी हुई, या कहीं कुछ फट ही गया तो उसे सी दिया, बटन टूटी हुई तो लगा दी। कपड़े धुलने के लिए इकट्ठे हुए तो लिखकर धोबी के यहाँ डलवा दिये। हिसाब लिखती, खिलौनों द्वारा रंजन को पोट-फुसलाकर अक्षर ज्ञान कराने की चेष्टा करती। इसके बाद वह स्वतः कुछ पढ़ती। या अगर तबियत में कुछ उमंग या सूझ उत्पन्न हुई, तो कुछ लिखने की भी चेष्टा करती। पाँच बजते-बजते शर्माजी आ जाते। तब फिर चाय-चक्रम चलता और उस समय की सारी व्यवस्था पिछले दिन की अपेक्षा सर्वथा बदलती मिलती। ऐसी-ऐसी चीजें वह तैयार करती, शर्माजी जिनकी कल्पना तक नहीं कर पाते थे। खाने के सम्बन्ध में स्वभावतः उच्च रुचि रखने के कारण अब पाँच बजे घर पहुँच जाने के विषय में शर्माजी पहले की अपेक्षा अधिकाधिक नियमित होते जाते थे। शुरू से ही वे कुछ ऐसा कार्य-क्रम रखते कि पाँच-बजते घर अवश्य पहुँच जाते। घर की इस सुव्यवस्था के सम्बन्ध में विपिन ने अन्तरंग क्षेत्र में कहीं-कहीं चर्चा भी कर दी थी। इसका फल यह हुआ कि चलते समय या तो विनायक उनके साथ हो लेता, या विपिन। निदान चाय-चक्रम पहले की अपेक्षा अब अधिक आकर्षक भी हो गया था। डेढ़-दो घण्टे में लोग चल देते और शर्माजी भी कार्यवश बाहर निकल जाते; तब फिर रसोई चढ़ती और नौ-साढ़े-नौ बजे शर्माजी आ जाते। उस समय खाना साथ-साथ चलता। शर्माजी उसके बाद अपने कमरे में जाकर कुछ पढ़ते-पढ़ते सो जाते। किन्तु रेणु को तुरन्त निद्रा आ जाती। शर्माजी अकसर जगने भी न पाते कि वह उठकर घूमने को तत्पर हो जाती थी। इस प्रकार दिन-भर वह काम में लगी रहती थी। वह खूब घूमती थी, खूब खाती थी और साथ ही खूब सोती भी थी। पहले उसे रात को नींद कम आती थी। अब शर्माजी को शिकायत हो उठी है, यद्यपि कभी उन्होंने उसे प्रकट नहीं किया कि वह नींद की चेरी हो गयी है। पहले घर के हर काम में अस्तव्यस्तता रहती थी। अब हर एक काम उसकी एक सुरुचि प्रदर्शित करता है। पहले रंजन वेश-भूषा में एक साधारण श्रेणी के घर का लड़का जान पड़ता था। अब सफ़ाई, कट और चुस्ती से जान पड़ता है, वह

किसी डिस्ट्रिक्ट-मैजिस्ट्रेट से कम प्रतिष्ठा वाले व्यक्ति का पुत्र नहीं है।

रेणु के इस परिवर्तन में मालती का कितना बड़ा हाथ है, यह शर्म्माजी से छिपा न था। स्वास्थ्य, सौन्दर्य, सजावट और मानप्रतिष्ठा के प्रति स्पर्द्धा की भावना जगाकर, माँ के द्वारा एक काफ़ी अच्छा उपहार दिलाकर और स्त्री का पुरुष के अन्दर जो एक स्थिर स्थान हो जाता है, उसके प्रति उसे सतर्क, सावधान और जागरूक बनाने में अगर कोई आधारभूत कारण है, तो वह एकमात्र मालती है और मालती की इस चेष्टा में उसका कोई कलुषित अभिप्राय है, यह भी शर्म्माजी नहीं मानते। यद्यपि वे मानते हैं कि रेणु ऐसा ही समझ रही है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या मालती ने रेणु को किसी प्रकार की क्षति पहुँचायी है? क्या उसने रेणु के अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया है? क्या वह समझ बैठी है कि शर्म्माजी के हृदय में रेणु जिस स्थान पर आसीन है, वहाँ से उसको जबरदस्ती हटाकर वह वहाँ स्वयं बैठ जाना चाहती है? यदि ऐसी बात नहीं है तो उसके प्रति उपेक्षा का यह भाव आखिर अर्थ क्या रखता है।

रेणु की स्थिति दूसरी है। वह मालती की कितनी क़ायल है इसे वह स्वीकार करने को सदा तत्पर है। वह तत्पर है कि जब कभी अवसर आवे, तो वह इस बात को सच्चे हृदय से प्रकट भी कर दे। उसने उसकी निद्रा भंग की है, जागरण का सन्देश उसी ने दिया है। जितनी भी स्फूर्ति, उज्ज्वलता, उमंग और कर्मधारा वह अपने में पा रही है, सब मालती की ही प्रेरणा का फल है। किन्तु वह नहीं मानती कि मालती ने शर्म्माजी के हृदय में वह स्थान प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की जो मुझे प्राप्त है। मेरे साथ उसने जो भी आत्मीयता प्रदर्शित की, उसके मूल में उसका अभिप्राय यही था कि जैसे भी हो, शर्म्माजी के हृदय में आसन जमाने में वह कृतकार्य हो जाय।

किन्तु मालती से ही वह यदि इस प्रकार की शिकायत रखती, तो भी स्थिति दूसरी होती! वह तो जानती है कि न चाहने पर भी, अपनी ओर से सचेष्ट न होते हुए भी—यहाँ तक कि अनेक प्रकार से और अनेक बार हतो-त्साह करने पर भी, उनके अंतराल में कहीं-न-कहीं कोई ऐसी भूमि अवश्य है

जहाँ मालती जमकर बैठ गयी है, इतनी कि टस-से-मस नहीं हो रही। वह नहीं जानती कि इसका कारण क्या है! उसे आश्चर्य है कि ऐसा क्यों है! उसने अपनी इस स्थिति पर ध्यान देने और उसके मूल और मूलतम आधारों के अन्वेषण करने की जितनी ही अधिक चेष्टा की है, उतना ही अधिक उसका यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि मुझमें अगर कोई कमी है, तो वह यह कि मैं माँ बन गई हूँ।—मैं विवाहित हूँ और गृहिणी का पद मैंने ग्रहण किया है। मैं सुलभ हूँ, निकट हूँ, प्राप्य हूँ—, आबद्ध और अनिवार्य हूँ। आज किसी प्रकार यदि मैं दूर होती और होती प्रयत्न से प्राप्त होने वाली तो, मेरी स्थिति आज की-सी न होती। मैं उनकी कल्पना की वस्तु होती, मेरे सम्बन्ध में वे सोचा करते। मेरे एक-एक पग की उनको परवा होती। कहीं दूर मैं खड़ी भी देख पड़ती, तो चाहे मेरे पास आने की उनको परवा न होती; किन्तु इतना तो वे ज़रूर सोचते कि काश यह मेरे पास आती…।

इस प्रकार रेनु काम में जरूर लगी रहती है, चारों ओर से उसकी चेष्टा भी यही है कि वह कहीं से भी कभी किसी प्रकार से त्रस्त न हो; किन्तु बारम्बार वह यह अवश्य सोचा करती है कि क्या पुरुष और स्त्री के मध्य में यह अनिवार्य मिलन-सुविधा ही उनके बीच चिरस्थायी माधुर्य के संस्थापन और संरक्षण में एक बाधा नहीं है? मालती उस दिन यही तो कह रही थी।

रेनु अपने भीतर-भीतर खीझती है और झुँझलाती है। उसके मन में आता है कि वह क्यों न वैसी ही बन जाय, जैसी वह विवाह न होने पर थी। पर इसी समय उसके सामने रंजन आ खड़ा होता है। उसकी आँखें फैल जाती हैं। हाथ ऊपर उठकर अँगुलियों को ऐंठा देते हैं। मुँह खुलकर टेढ़ा हो जाता है। भृकुटियाँ नागिन की पूँछ बनने लगती हैं। और होठों को तो वह दाँतों से क्षतविक्षत तक कर डालना चाहती है। शर्माजी उससे एक बात करते हैं तो वह उसी प्रसंग की तीन बातें सुना देती है। वे ज़रा-सा मुसकराते हैं और छेड़ने की नज़र दौड़ाते हैं, तो वह खिलखिला कर-हँस देती है। खड़ी हुई तो हँसती-हँसती पलंग पर गिर-गिर पड़ती है। शर्मा

गंज जाऊँगी। पूर्णिमा ने बुला भेजा है। यों चाहे न भी जाती, पर वा आ जाने पर न जाना मेरे लिए असम्भव है। कुछ हो, वे लोग को चाहते बहुत हैं। इतना आदर-सत्कार करते हैं कि मैं हैरान रह ती हूँ।

शर्म्माजी ने सहर्ष कहा—अच्छा तो है। चली जाना, तबियत ही कुछ दल जायगी। एक ही जगह रहते-रहते आदमी की तबियत ऊब जाती है।

रेणु के मन में आया कि कह दे. आफ़िस से सीधे उधर ही चले आना! किन्तु केवल इस विचार से रुक गयी कि ऐसा न हो, इनकार कर दें। अतः केवल सोच कर रह गयी।

शर्म्माजी ने पूछा—कौन आया था?...मत्तू?

रेणु—हाँ; मत्तू...!

"और कुछ कह रहा था?" शर्म्माजी ने पूछा और वे चप्पल पहनते हुए लने लगे।

"और तो सब ठीक है।"—रेणु बोली—केवल मालती कुछ अस्वस्थ है।

विस्मय से चौंककर शर्म्माजी ने पूछा—अच्छा, मालती अस्वस्थ हो गयी है! कैसे...क्या...शिकायत क्या है?

जाते-जाते घूम कर खड़े हो गये।

रेणु ने बतलाया—सिर में दर्द बराबर बना रहता है। रात को नींद नहीं आती। भूख भी नहीं लगती।

सुनकर सन्न रह गये। बोले—"लेकिन खबर तक नहीं दी! अच्छा...!" और निःश्वास लेते प्रतीत हुए।

अब रेणु का जी न माना। बोली—तुम देखने नहीं चलोगे?

"मैं?...मैं तो नहीं; लेकिन मैं...मुझे जाना चाहिये? अच्छा, हाँ तुम्हारी क्या राय है?"

"मेरी राय की भी इसमें जरूरत है, मैं नहीं जानती। तुम्हारी तबिय हो, तो जाने में कोई हर्ज नहीं है। यों तुम्हारी मर्जी।"

तब चलते हुए बोले—अच्छी बात है, मैं सोचूँगा।

किन्तु रेणु ने कह दिया—सोचने की बात ज़रा भी नहीं है। तुमको जाना चाहिये। तुम्हारा यह कैसा स्वभाव हो गया है। मैं भी कुछ समझ नहीं पा रही हूँ।

फिर ठहर गये। कुछ उतरे हुए कण्ठ से बोले—मैं आ जाऊँगा। तुम छै-साढ़े-छै तक तो खाली हो जाओगी न ?

रेणु ने उस म्लान मुद्रा को देखा, तो देखती रह गयी। कुछ कह न पायी।

रञ्जन माँ के पैरों से लिपट गया। बोला—हम भी चलेंगे, मम्मी। वहाँ बुआ जी होंगी न ? वे मुझे बहुत प्यार करती हैं। मुझे चढ़ने-घूमने के लिए यह जो गाड़ी है न, सो उन्होंने ही तो दिलवाई है।—कि नहीं मम्मी ?

गिरधारी चलते-चलते आगे ठहर गया। वह रञ्जन की बातें सुन रहा था।

इसी समय रेणु बोली—'अच्छा, तुमको भी ले चलूँगी।' और उसने उसे गोद में उठा कर उसका मुँह चूम लिया। बोली—पाजी, सोचता है—जैसे मैं तुझे यहाँ छोड़ जाऊँगी।

पच्चीस

सुख और दुःख, मिलन और वियोग, हास और व्याकुलता का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, यह बात कहने में चाहे जैसी विचित्र जान पड़े, किन्तु विश्व की क्षण-क्षण की घटनावली की ओर दृष्टि डालने पर वह बिल्कुल स्वाभाविक और सर्वथा साधारण प्रतीत होने लगती है। सांसारिक प्राणी इस वैचित्र्य को या तो अच्छी तरह से अनुभव नहीं कर पाते, या वे इतने कार्य-ग्रस्त रहते हैं कि इस ओर ध्यान देने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। जो हो, निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि समस्त जग को हम अपना

ान लें, और क्षण-क्षण पर घटित होने वाली घटनाओं की एक सूची बना
ठें, तो एक तो वही सूची अपने सम्पूर्ण अर्थ में कभी अप-टू-डेट न
होगी ; क्योंकि सारे जगत का लेखा, एक ही समय, एक ही स्थान पर आ
सकना अत्यन्त दुस्साध्य हो जायगा। किन्तु अगर वह साध्य और सुलभ भी
हो, तो उस घटनावली को देखकर हम अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि
ये सब-की-सब एक सूत्र में बँधी हुई हैं। अर्थात् जहाँ आनन्द विनोद का
अट्टहास हो रहा है, ठीक उसके निकट मनुष्य ने अपनी पीड़ा से व्यथित
होकर कराह ली है। एक ओर जनाज़ा निकल रहा है, तो दूसरी ओर सोहर गाए
जा रहे हैं। एक ओर कपड़ों पर, हाथ पर (और विशेष स्थिति में अन्यान्य
अंगों पर भी) इत्र छोड़ा, छिटकाया और मला जा रहा है, तो दूसरी ओर
शव पर चन्दन, कपूर तथा इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य छोड़े जा रहे हैं। एक ओर
पुत्र अपने पिता के सिर में तेल की मालिश कर रहा है तो दूसरी ओर पुत्र
द्वारा उसकी कपाल-क्रिया हो रही है ! कितनी विषमता है इन घटनाओं में,
तो भी इनकी गति में कभी अन्तर पड़ता है ! सृष्टि इतनी निर्मम है कि
कभी उसका कार्य-कलाप स्थगित नहीं होता। न हास को रुदन में स्पर्द्धा
होती है, न वियोग को मिलन से। किन्तु आज स्वार्थ-रत, रूढ़ियों, परम्पराओं
कुप्रथाओं और कुसंस्कारों में विजड़ित पूँजीजीवी समाज का यह मनुष्य
कभी-कभी इतना क्षुद्र हो जाता है कि दूसरे का क्षणिक लाभ और स्वार्थ-
साधन तक सहन नहीं पाता !

चार बजते ही शर्म्माजी सोचने लगे—नवाबगंज जाना है। झट रामदीन
से बोले—एक अच्छा सा इक्का ले आओ।

रामदीन जाना ही चाहता था। पर उसे खयाल आ गया कि यह तो
बतलाया ही नहीं कि जायेंगे कहाँ ? तब उसने पूछा—कहाँ के लिए चाहिए ?

सम्पादकीय लेख का फाइनल प्रूफ़ सामने था। यह ध्यान नहीं था कि
रामदीन को यह भी बताना होगा कि कहाँ के लिए (इक्का) चाहिये। प्रश्न
सुनकर चौंक से पड़े। बोले—एँ ! क्या कहा ?

रामदीन ने उत्तर दिया—सरकार ने यह नहीं बतलाया कि कहाँ जाना

होगा ?

तब ख़याल आ गया। बोले—हाँ, नवाबगंज जाना है। आने-जाने में दो-तीन घण्टे लगेंगे।

रामदीन तो चला गया, किन्तु शर्माजी का भीतर-ही-भीतर कलेजा कोई नोचने लगा। 'कितने दिन हो गये, भेंट नहीं हुई।' फिर पोरों से हिसाब लगाने लगे—मालूम हुआ, अधिक नहीं; एक मास के लगभग हुआ है। बीच में रेस्तोराँ में नाटकीय ढंग से भेंट हुई थी। परन्तु उसको भेंट तो कहना नहीं चाहिये। मेरा व्यवहार कितना अमानुषिक था! माना कि ललित नहीं ठहरा था; किन्तु फिर मुझे तो दूसरा पक्ष सुनकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचना था! फिर इतने दिन बीत गये, मुझ से इतना भी नहीं हुआ कि मैं एक दिन जाकर मिल तो आता! मेरा मत उससे नहीं मिलता। किन्तु मत न मिलने पर एक आदमी क्या दूसरे का साथ, सहयोग और नाता त्याग देता है? मत तो कभी-कभी रेणु का भी मुझ से नहीं मिलता; परन्तु अन्त में क्या मुझे उसके साथ समझौता नहीं करना पड़ता है।

इसी समय फ़ौरमैन ने आकर कहा—मुझे आज कुछ रुपये की ज़रूरत है। मेरे घर में बच्चा हुआ है। बहुतेरे नये खर्चे एकाएक सिर पर आन पड़े हैं।

सुनते ही बोले—अच्छा, लड़का हुआ है! भगवान करे चिरंजीवी हो। कितने रुपये चाहिये? ज़रा मुन्शीजी को बुलाना।

मुंशीजी की नियुक्ति हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। जब से प्रेस को लिमिटेड कम्पनी बनाने का निश्चय हुआ, बस तभी से यहाँ उनका पदार्पण हुआ है। पुराने ढंग का चश्मा लगाये हुए हैं। एक कमानी टूट गयी है, उसकी जगह डोरा बाँध लिया है। फ्रेम पीतल का है। कीलों में पेच के पास हरी-हरी काई जम गई है। टील के लम्बे हैं। सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं। कमीज के ऊपर बन्द गले का कोट धारण किये हैं, जिसके बटन खुले हुए हैं। पीठ पर दायें ओर बगल में कोट की सीवन उधड़ी हुई है। पेंसिल कान में खुरसी हुई है। सामने आने पर शर्माजी ने पूछा—रुपया नक़द कुछ होगा?

उत्तर में मुंशीजी ने पूछा—आपको चाहिए कितना?

मान लें, और क्षण-क्षण पर घटित होने वाली घटनाओं की एक सूची बना बैठें, तो एक तो वही सूची अपने सम्पूर्ण अर्थ में कभी अप-टू-डेट न होगी ; क्योंकि सारे जगत का लेखा, एक ही समय, एक ही स्थान पर आ सकना अत्यन्त दुस्साध्य हो जायगा। किन्तु अगर वह साध्य और सुलभ भी हो, तो उस घटनावली को देखकर हम अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि ये सब-की-सब एक सूत्र में बँधी हुई हैं। अर्थात् जहाँ आनन्द विनोद का अट्टहास हो रहा है, ठीक उसके निकट मनुष्य ने अपनी पीड़ा से व्यथित होकर कराह ली है। एक ओर जनाज़ा निकल रहा है, तो दूसरी ओर सोहर गाए जा रहे हैं। एक ओर कपड़ों पर, हाथ पर (और विशेष स्थिति में अन्यान्य अंगों पर भी) इत्र छोड़ा, छिटकाया और मला जा रहा है, तो दूसरी ओर शव पर चन्दन, कपूर तथा इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य छोड़े जा रहे हैं। एक और पुत्र अपने पिता के सिर में तेल की मालिश कर रहा है तो दूसरी ओर पुत्र द्वारा उसकी कपाल-क्रिया हो रही है! कितनी विषमता है इन घटनाओं में, तो भी इनकी गति में कभी अन्तर पड़ता है! सृष्टि इतनी निर्मम है कि कभी उसका कार्य-कलाप स्थगित नहीं होता। न हास को रुदन में स्पर्द्धा होती है, न वियोग को मिलन से। किन्तु आज स्वार्थ-रत, रूढ़ियाँ, परम्पराओं कुप्रथाओं और कुसंस्कारों में विजड़ित पूंजीजीवी समाज का यह मनुष्य कभी-कभी इतना क्षुद्र हो जाता है कि दूसरे का क्षणिक लाभ और स्वार्थ-साधन तक सहन नहीं पाता!

चार बजते ही शर्म्माजी सोचने लगे—नवाबगंज जाना है। भट्ट रामदीन से बोले—एक अच्छा सा इक्का ले आओ।

रामदीन जाना ही चाहता था। पर उसे खयाल आ गया कि यह तो बतलाया ही नहीं कि जायेंगे कहाँ? तब उसने पूछा—कहाँ के लिए चाहिए?

सम्पादकीय लेख का फाइनल प्रूफ़ सामने था। यह ध्यान नहीं था कि रामदीन को यह भी बताना होगा कि कहाँ के लिए (इक्का) चाहिये। प्रश्न सुनकर चौंक से पड़े। बोले—एँ! क्या कहा?

रामदीन ने उत्तर दिया—सरकार ने यह नहीं बतलाया कि कहाँ जाना

होगा ?

तब खयाल आ गया। बोले—हाँ, नवाबगंज जाना है। आने-जाने में दो-तीन घण्टे लगेंगे।

रामदीन तो चला गया, किन्तु शर्माजी का भीतर-ही-भीतर कलेजा कोई नोचने लगा। 'कितने दिन हो गये, भेंट नहीं हुई।' फिर पोरों से हिसाब लगाने लगे—मालूम हुआ, अधिक नहीं; एक मास के लगभग हुआ है। बीच में रेस्तोराँ में नाटकीय ढंग से भेंट हुई थी। परन्तु उसको भेंट तो कहना नहीं चाहिये। मेरा व्यवहार कितना अमानुषिक था! माना कि ललित नहीं ठहरा था; किन्तु फिर मुझे तो दूसरा पक्ष सुनकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचना था! फिर इतने दिन बीत गये, मुझ से इतना भी नहीं हुआ कि मैं एक दिन जाकर मिल तो आता! मेरा मत उससे नहीं मिलता। किन्तु मत न मिलने पर एक आदमी क्या दूसरे का साथ, सहयोग और नाता त्याग देता है? मत तो कभी-कभी रेणु का भी मुझ से नहीं मिलता; परन्तु अन्त में क्या मुझे उसके साथ समझौता नहीं करना पड़ता है।

इसी समय फ़ोरमैन ने आकर कहा—मुझे आज कुछ रुपये की जरूरत है। मेरे घर में बच्चा हुआ है। बहुतेरे नये खर्च एकाएक सिर पर आन पड़े हैं।

सुनते ही बोले—अच्छा, लड़का हुआ है! भगवान करे चिरजीवी हो। कितने रुपये चाहिये? ज़रा मुन्शीजी को बुलाना।

मुंशीजी की नियुक्ति हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। जब से प्रेस को लिमिटेड कम्पनी बनाने का निश्चय हुआ, बस तभी से यहाँ उनका पदार्पण हुआ है। पुराने ढंग का चश्मा लगाये हुए हैं। एक कमानी टूट गयी है उसकी जगह डोरा बाँध लिया है। फ्रेम पीतल का है। कीलों में पेच के पास हरी-हरी काई जम गई है। डील के लम्बे हैं। सिर के बाल सफेद हो गये हैं। कमीज के ऊपर बन्द गले का कोट धारण किये हैं, जिसके बटन खुले हुए हैं। पीठ पर दायें और बगल में कोट की सीवन उघड़ी हुई है। पेंसिल कान में खुसी हुई है। सामने आने पर शर्माजी ने पूछा—रुपया नकद कुछ होगा?

उत्तर में मुंशीजी ने पूछा—आपको चाहिए कितना?

शर्म्माजी को मुंशीजी का यह प्रश्न अच्छा नहीं लगा। दूसरा कोई होता, तो सम्भव था कि वे इस समय उसे डाँट देते। पर इस विचार से रुक गये कि आदमी खरे मिजाज़ का है। बुरा भी मान सकता है। अतएव केवल एक बार देखकर रह गये। कुछ ठहर कर बोले—पचीस रुपये दे सको, तो दे दो।

मुंशीजी ने कहा—पन्द्रह दे सकता हूँ।

शर्म्माजी बोले—पन्द्रह अभी दे दो, दस कल दे देना।

मुंशीजी चलने लगे, तो उन्हें फिर बुलाया—ज़रा एक बात और सुन लीजिये।—ये रुपये इनकी तनखाह से एक साथ न काटकर तीन रुपये माह-वार काटे जायेंगे।

मुंशीजी पहले तो आँखे फैलाकर ग़ौर से शर्म्माजी की ओर देखने लगे। और फिर उन्होंने सिर से पैर तक फ़ोरमेन को भी देखा। कुछ बोले नहीं। किन्तु जब वे अपनी सीट पर पहुँचे, तो पेंसिल टेबिल पर पटकते हुए स्वगत
७५ से बोलने लगे—हो चुका! इसी तरह यह कम्पनी चलेगी!

पास ही मुरलीधर नामक एक क्लर्क बैठे थे। उनकी ओर देखकर धीरे-से कहने लगे—देखा आपने मुरलीधर बाबू? पच्चीस-पच्चीस रुपये एडवांस और कटती तीन रुपये माहवार!

फिर भी तबियत नहीं भरी तो बोले—"कुरसी ज़रा इधर खिसका लो।" और साथ ही अपने दायें-बायें देखने लगे कि कोई सुन तो नहीं रहा है। जब इतमीनान हो गया कि बात कही जा सकती है, तो मुरलीबाबू के आने और टेबिल पर कोहनी टेक कर उनके झुकते ही कहने लगे—फ़ोरमैन के सामने ही मुझसे पूछ रहे थे—कितना रुपया नक़द इस समय सेफ़ में होगा? पूछो, नौकर के सामने इस तरह का सवाल भी कोई करता है!

मुरलीबाबू ने भी समर्थन में सिर हिलाते हुए कह दिया—बड़े तजरबे की बात आपने कही। आपकी क्या बात है।

"बात सुनो—बात सुनो" कहते हुए इधर-उधर निगाह फैलाकर मुंशीजी फिर बोले—ये बातें तुमको बहुत गुप्त रूप से बता रहा हूँ। इनको गाँठ में बाँध लो। बहुत काम देंगी।...और सुनो।...मान लो, फ़ोरमैन को ज़रूरत

ही थी, तो पच्चीस रुपये उसने माँगे थे, आप पन्द्रह दिला देते। अरे माँगने को तो वह सारी सल्तनत माँग सकता है?

"सल्तनत" शब्द के उच्चारण के साथ उठाई हुई पेंसिल टेबिल पर दे मारते हैं।

मुरलीबाबू का सिर हिल रहा है। वे समर्थन कर रहे हैं—सो तो है ही। माँगने को तो…।

"बात सुनो—बात सुनो"—कहते हुए झुककर कान के पास मुँह ले जाकर फिर मुंशीजी बोले—माँगने को तो मैं माँग सकता हूँ—तुम अपनी बीवी मेरे साथ कर दो।…सो क्या तुम अपनी बीवी मेरे साथ कर दोगे? बोलो, मैं पूछता हूँ, बोलो तुम अपनी बीवी (कुछ और जोर से) मेरे साथ कर दोगे?

दफ़्तर के सभी बाबू लोग मुंशीजी की तरफ़ देख कर रह जाते हैं। कोई खाँसता है, कोई मुस्कुराता और कोई पड़ोसी कानाफूसी करने लगता है। परन्तु मुंशीजी अकड़कर बैठ जाते हैं और चारों ओर देखते हैं।

मुरली अब तक समर्थन कर रहा था, पर बुड्ढे की इस बात को सुनकर जाग पड़ता है, उसको भी उमंग आ गया। स्वर को अस्वाभाविक रूप में बदल कर पैर छूते हुए वह बोला—मैं किसी से कहूँगा नहीं पर इतना जरूर बता दीजिये कि आप आजकल कौन-सा टॉनिक खा रहे हैं। बस, वही मैं भी आपसे थोड़ा ले लूँगा। अधिक नहीं तो कमीशन तो आपको मिल ही जायगा।

खाँसते हुए रामगोपाल ने पूछा—क्या बात है मुरली बाबू?

एक और पड़ोसी ने उत्तरार्द्ध सुन लिया था। बोला—मुंशीजी, थोड़ा-सा हमको भी।

मुरली बाबू ने जोर से कह दिया—आजकल मुंशीजी एक टॉनिक सेवन कर रहे हैं।

एक साथ आवाजें आती हैं—मुंशीजी की क्या बात है! …हर दसवें महीने घड़ा पक जाता होगा। जी, आप समेत।…और मुंशीजी बिगड़कर कह उठे हैं—सब लोग अपना-अपना काम देखो। (फ़ोरमैन रुपये के लिए सामने

कहा है) मुझे फुरसत नहीं है । जाइये आप भी मुरली बाबू, मैंने फिजूल इतना वक्त खराब किया—लेजर खोलकर अन्तिम पेज के लिए बारम्बार पन्ने उलटते हैं—मुझे इतनी फुरसत कहाँ रहती है । (फ़ोरमैन को सामने देखकर वक्र दृष्टि से उसे देखने लगते हैं और मुरलीधर अपनी जगह जा पहुँचता है ।)

इसी समय शर्माजी ने भीतर से निकलते हुए पूछा—आगे तुमको मिल गये वेणीप्रसाद !

यही कहकर एक साथ उठ खड़े होते हैं । मुंशीजी आयरन सेफ़ खोलने लगते हैं—

वेणीप्रसाद ने उत्तर दिया—मिले जाते हैं ।

शर्माजी कार्यालय से बाहर हो गये । पहले उन्होंने निश्चय किया था कि वे भवानगंज सीधे जायँगे, किन्तु अब उनके मन में आया, क्यों न रेणु को साथ लेते चलें । अतएव उन्होंने ड्राइवर से कहा—पहले पुरानी सब्जी-मंडी की तरफ़ चलो ।

उन्होंने पायदान पर पैर रखा ही था कि रामदीन ने पुकारा—सरकार जरा ऊपर जायँ आप ।

शर्माजी ने पूछा—क्यों ?

रामदीन ने कहा—गुप्ता बाबू (सहकारी सम्पादक) ने कहलाया है । वे खुद आ रहे हैं ।

तब तक गुप्ताजी भी आ गये । वे कुछ घबराये हुए थे । साँस फूल रही थी । बहुत धीरे-धीरे बोले—विपिन की हालत बहुत खराब है । सीधे हॉस्पिटल जाइये । फ़ोन से किसी ने खबर दी है कि उसने विष खा लिया है।

सुनते ही शर्माजी ने आश्चर्य, चिन्ता और एक आघात के-से स्वर में पूछा—क्या कहा ? विष खा लिया !

गुप्ता जी ने उत्तर दिया—अमृत ने फ़ोन से कहा है ।

शर्माजी ने ड्राइवर से कहा—हाँ हॉस्पिटल चलो । जरा जल्दी ।

हॉस्पिटल पहुँचने पर शर्माजी क्या देखते हैं कि विपिन चारपाई पर

चुपचाप लेटा है। उसकी आँखें बन्द हैं। कभी-कभी छटपटाता हुआ पटिया पर हाथ दे मारता है। चेष्टा अत्यधिक म्लान है। कई दिन से शेव न करने के कारण मुख दूर से कुछ श्याम मालूम पड़ता है। होंठ बार-बार चाट रहा है।

पहुँचते ही लोग हट गये, शर्माजी के लिए अमृत ने कुर्सी डाल दी। पर डॉक्टर मल्लिक ने अलग ले जाकर बतलाया, बड़ी ग़नीमत हुई कि फौरन यहाँ ले आया जा सका। दस मिनट की भी देर हो जाने पर फिर केस कन्ट्रोल से बाहर हो जाता।

चिन्तित शर्माजी ने पूछा—कौन-सा विष था?

"मारफ़िया मालूम पड़ता है!" डॉक्टर साहब ने बतलाया।

अमृत ने कह दिया—बड़ी नादानी का काम किया।

डाक्टर साहब ने कथन की व्यर्थता पर ज़रा-सा मुस्करा दिया। फिर बोले—इस तरह कहना आसान है।

अमृत बोला—कम-से-कम मैं इसे समझदारी तो नहीं मान सकता। वीरता भी यह नहीं कही जा सकती। बल्कि मैं तो इसे एक कमज़ोरी ही कहूँगा।

डाक्टर साहब जवाब न देकर विपिन के पास आ गये। कुछ क्षणों तक सांस की गति देखकर फिर अलग हटकर कहने लगे—पेट की नसों को मेहनत ज्यादा पड़ी है। कै कराई गयी है न, इसलिये। उधर दिमाग भी थक गया होगा। इसके अलावा मारफ़िया खुद भी नींद के हक में ही रहती है। इसलिए नींद आना स्वाभाविक है। परन्तु हमें कोशिश करनी चाहिये कि नींद न आये।

फिर जाते हुए नर्स से बोले—देखो जरूरत पड़ने पर फौरन मुझे इत्तिला करना।

रूमाल-सहित दोनों हाथ जोड़कर डाक्टर बोले—'अच्छा, नमस्ते।' फिर लौटते हुए बोले—आपको यहाँ बैठने में उलझन हो, तो मेरे यहाँ आकर बैठिये।

शर्माजी बोले—अभी तो यहाँ जरा देर देखूंगा। फिर जरूरत समझूँगा, तो आ जाऊँगा।

"अच्छा-अच्छा" करते हुए डाक्टर मल्लिक चले गये।

अमृत ने इसी क्षण कहा—स्वभाव से भावुक तो इतना नहीं जान पड़ता था।

शर्म्माजी बोले—फिर भी अन्तर का आघात कौन जान सकता है ? मैंने एक दिन कुछ बातें की थी। उनसे इतना पता चला था कि आदमी चोट खाया हुआ जरूर है। मैंने आगे का रास्ता भी सुझाया था। बाद में घटनाओं ने क्या-कैसा टर्न (मोड़) लिया, इसका कुछ पता नहीं चल पाया। अभी आठ दिन की बात है, कार्यवश मेरे साथ एक जगह गया भी था। उस समय भी ऐसी कोई बात नहीं जाहिर हुई थी। इधर ही कुछ हुआ होगा।

बात कहते हुए शर्म्माजी की दृष्टि फिर विपिन की ओर जा पड़ी। यह भी मालूम पड़ा कि वह निःश्वास ले रहा है। फिर उसने करवट बदली और पटिया पर बाँया हाथ डाल दिया। शर्म्माजी की तबियत नहीं मानी। पास जा । जान पड़ा, पलक उठ रहे हैं। सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—विपिन ?

नर्स ने कहा—हाँ सोने न दीजिये शर्म्माजी। बातें करते जाइये और आँखें खुली रखने की कोशिश कीजिये।

अमृत ने पूछा—कब तक उठने और होश में आ जाने की उम्मीद है ?

नर्स ने कहा—यह मैं नहीं कह सकती ! ऐसे केसेज़ में चार-छै घंटे भी लग सकते हैं। प्वाइज़न का जितना गहरा असर होगा, उसी औसत से, उतनी ही देर में होश, आयेगा।

अमृत ने पूछा—यहाँ कहीं फ़ोन तो होगा ?

नर्स ने बतलाया—डाक्टर साहब के कमरे के बिलकुल पास है।

शर्म्माजी ने पूछा—किसी को बुलाना है क्या ?

अमृत बोला—विनायक को अगर किसी तरह इत्तिला हो जाये, तो बड़ा अच्छा हो।

शर्म्माजी बोले—अगर मेरे दफ़्तर आयेंगे, तब तो मालूम ही हो जायगा।

इसी समय नर्स ने सुना, विपिन बड़बड़ा रहा है—"शर्म्माजी···कहेंगे !" वह प्रसन्नता-सी प्रकट करती हुई पास आकर बोली—शर्म्माजी आप ही हैं न ?

शर्माजी बोले—कहिये, कुछ तकलीफ तो नहीं⋯

चुटके से नर्म बोली—अभी आपको याद किया था। आप ने याद नहीं किया।

शर्माजी मुड़कर विपिन के मुँह की ओर एकटक देखने लगे।

प्रमोद ने कहा—लो, ललित बाबू भी आ गये।

छब्बीस

कभी-कभी अज्ञात अवस्था में भी कोई किसी को चाहने लगता है। उसे पता नहीं चलता कि उसने कोई कार्य, उपकार के रूप में ही नहीं, उसके लिए क्यों किया है। कुछ तो समाज के बन्धन, कुलगुरुत्व या अहंकार, कुछ लज्जा और शील-संकोचजन्य उसकी भीरुता कभी इन परिस्थितियों का स्पष्टीकरण तक नहीं करने देती। कभी-कभी उसके विपरीत ऐसा भी होता है कि चाहते हुए व्यवहारों की शैली तथा मनुष्य की उदारता से इस विषय में भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु जहाँ तक हृदय-दान का प्रश्न है, छिपे और दबाये हुए मनोभाव यदि स्पष्ट होते चलें, तो जीवन में आज जो भ्रान्तियाँ और अनबन प्रेम की विभीषिकाएँ हैं, उनका बहुत कुछ शमन तो हो ही सकता है। जीवन में असीम आनन्द का रत्नाकर भी लहरा सकता है।

धूप थोड़ी-सी ही जहाँ-तहाँ दिख पड़ती है। दिनमणि अस्त होने हो जाते हैं। बँगले के आगे वाली सड़क पर से जाते लोगों का पैरों का शब्द आ रहा है। पश्चिम में निम्नों के गीत लगातार थोड़े ही अन्तर से ठहरकर उठते-उठते स्वरों के पार्श्व के साथ जब रेलवे-लाइन पर आने-जाने वाली गाड़ियों के डिब्बों की घड़घड़ाहट तथा एन्जिनों की सीटियों का स्वर मिला देते हैं तब सहज ही ध्यान पड़ने लगता है कि हम एक व्यावसायिक नगर में हैं।

विनायक सुधीन को पढ़ाकर साइकिल से जा ही रहा था कि पूर्णिमा ने

कहा—ज़रा बैठ लीजिये विनायक बाबू !

विनायक ने उत्तर दिया—मेरे बैठने से आप के काम में हर्ज हो सकता है।

उत्तर सुनकर पूर्णिमा ने विनायक की ओर देखा। उसके ओंठ कुछ विकसित हुए और वह बोली—आप कह क्या रहे हैं ?

"क्या मैं कोई अप्रासंगिक बात कह रहा हूँ ?" विनायक ने शान्त भाव से उत्तर दिया।

पूर्णिमा ने कागज़ एक ओर रख दिये। बोली—लीजिये, मैं बिल्कुल खाली हुई जाती हूँ। अब तो आपको मुझ से शिकायत न होगी न ?

"शिकायत मुझे यों भी नहीं थी।" विनायक बोला।

"अच्छा तो पहले मैं आपके लिए चाय बनवाऊँ" उसने कहा और वह उठने ही वाली थी कि विनायक ने कह दिया—मैं यहाँ चाय नहीं पी सकता। रेस्तोराँ की बात दूसरी थी। वहाँ आपने विशेष आग्रह भी किया था। एक तरह से आपने ज़िद की थी। जान पड़ता था कि आप मेरा व्रत भंग करने पर तुल गयी हैं। मैंने भी सोचा, यह नियम का तोड़ना नहीं, एक अपवाद है। दुनियाँ में कोई-न-कोई तो ऐसा होना ही चाहिये, जो अपवाद रूप में ही जीवन को हरा-भरा बनाने में सहायक हो।

पहले आश्चर्य के साथ विनायक की ओर एकटक देखकर, फिर कमरे के द्वार की ओर दृष्टि डालती हुई पूर्णिमा बोली—देखती हूँ, आपकी बातों में पर्त-के-पर्त होते हैं। जैसे कोई साड़ी हो और इतमीनान के साथ तह करके रक्खी गयी हो।

विनायक चुप रह गया। क्या उत्तर दे, जल्दी से वह इसका कुछ निश्चय न कर सका।

पूर्णिमा बोली—अच्छा तो मैं इस वक्त आपकी क्या खातिर करूँ ?

"खातिर की ऐसी ज़रूरत नहीं है पूर्णिमा ?"—विनायक इसके बाद कहने जा रहा था कि 'इतनी खातिर कम है, जो आपने मुझे नित्य दर्शन पाने का अवसर दिया'। किन्तु फिर कुछ सोच कर वह आधी ही बात क[illegible] पाया।

"भाभी आ जाती तो...खैर।"—आप बैठिये, मैं अभी आती। जरा देखूं, भाभी कर क्या रही हैं।" कहती हुई वह उठी, और चल दी—

तारिणी दर्जी को डांट रही थी—तुमने मेरा कपड़ा सत्यानाश कर दिया। मैंने तुमसे कहा नहीं था कि यहां पर इस तरह का कालर न रखना।

दर्जी गिड़गिड़ाता सा कह रहा था—सरकार मैंने समझा कि हुजूर...।

इसी समय उछलती हुई वहां पहुँच गयी, पूर्णिमा। बोली भाभी तुमने कहा था कि विनायक बाबू से बातचीत करने का अवसर ही नहीं मिलता। तो मैंने उन्हें रोक रक्खा है। चलोगी नहीं ?

तारिणी पूर्णिमा की ओर ध्यान न देकर दर्जी से ही कहने लगी—तुम बड़े बेवकूफ हो जी! तुमको जरा भी तमीज नहीं है कि आजकल रोज-रोज ही फैशन बदलता है। तुम्हें इतना तो पता होना चाहिए कि करीब-करीब दस सालों से यही कट चल रहा है और इसी बात से मुझे चिढ़ है।

दर्जी दबी हुई आवाज से फिर बोला—हुजूर; मैंने समझा कि सरकार...।

तारिणी ने ब्लाउज को फेंकते हुए कहा—अब जाओ, इसकी सीवन उधेड़ कर ले आओ। कालर के लिए मैं दूसरा कपड़ा दूंगी।

दर्जी चलने लगा, तो वह फिर बोली—और देखो, कैंची भी साथ लेते आना। मैं यहीं पर अपने सामने कालर कटवा दूंगी।

"बहुत अच्छा सरकार" कहता और फिर एक सलाम करता हुआ दर्जी चला गया।

अब तारिणी पलंग पर बैठ गयी और बोली—तुमको भी कम बेवकूफ थोड़े ही समझती हूँ। मैंने यह कब कहा था कि विनायक बाबू को आज ही शाम को रोक लेना ? तुमको पता है मुझे अभी कितने काम निपटाने हैं ? आज रात को उस रिहर्सल में भी जाना पड़ेगा।...तुम नहीं चलोगी।

आश्चर्य से पूर्णिमा ने पूछा—कौन-सा कैसा रिहर्सल ? मुझे तो कुछ मालूम नहीं।...और मुझसे किसी ने कहा भी नहीं।

"अच्छा, मैंने नहीं बतलाया तुमको ?" इसी प्रकार विस्मय दिखला कर

तारिणी बोली—अरे वही कुछ वंग महिलाएँ दुर्गापूजा के अवसर पर एक नाटक खेलती हैं न, उसी के लिए उन लोगों ने एक पार्ट मुझे भी दे रक्खा है। मैं बराबर इंकार करती रही। पर शारदा किसी तरह नहीं मानी। मैंने अभी माँ से कहा भी नहीं है। अच्छी याद आयी। लेकिन तुमको मेरे सिर की क़सम है जो सुशील के बाबू तक इसकी खबर पहुँचायी। तुम जानती ही हो, वह इन मामलों में कितने कट्टर हैं। उस दिन मैं जो सिनेमा देखने गयी, तो मालूम नहीं कहाँ से अन्दर आ पहुँचे। इधर-उधर देखा, मैं किसके साथ बैठी हूँ, क्या बात है, तब कहीं वापस गये। मैं तो डर गयी थी।

पूर्णिमा बोली—मुझे तो कोई दिलचस्पी है नहीं। न मैं जाऊँगी ही। हम लोग इस क्षेत्र से दूर ही दूर रहते हैं। रंग-मंच हमारा अपना है नहीं। अभिनय-कला में हमारी कोई गति नहीं। ऐसी दशा में तुम कैसे सफल होओगी। अपनी हँसी करानी हो, तो जाओ मैं मना नहीं करती। फिर यह भी पता नहीं कैसे लोगों का साथ पड़ जाय। उधर बड़े बाबू का भी खयाल तुम्हें रखना ही है। कैसे निभा सकोगी! मेरा तो जैसे अभी से जी घबराने लगा है।

तारिणी सोचती हुई बोली—कहती तो तुम ठीक हो। लेकिन मैं तो अब फँस गयी हूँ।

"इसमें फँसने की तो कोई बात है नहीं" पूर्णिमा ने कहा—कह देना माँ ने स्वीकार नहीं किया···फिर तुम सोचती हो कि नाटक में पार्ट तक लोगी और सारी बात पचा ले जाओगी; बाबू जी तक दहुँचगी नहीं? ऐसा भी हो सकता है कहीं?

"लेकिन तुमको मालूम नहीं है" तारिणी बोली—शारदा की भाभी सुना है, नाचती बहुत अच्छा है। एक दिन जरा-सी बानगी मुझे दिखलायी थी। मैं तो उतने से ही जैसे रीझ गयी।

"तो नाटक में तो सब एक साथ देख लोगी।"

"हाँ वह तो सब ठीक कहती हो।"

"सोच लो, अपना आगा-पीछा। मैं अधिक क्या कह सकती हूँ।"

"और यह भी एक बात है। यहाँ सुना है कि, स्वामी राधाकृष्ण जी आज आयेंगे। उनका नाम तो तुमने सुना ही होगा। वे बांसुरी बजाने में अपने देश भर में बेजोड़ हैं। बाल-ब्रह्मचारी हैं। बड़े आग्रह के बाद उन्होंने आना स्वीकार किया है। दो-एक दिन में चले जाने वाले हैं।"

अब शीघ्रता से पूर्णिमा बोली—तब मैं मना नहीं कर सकती। एक दो नहीं, अनेक कारण हैं। अच्छा, तो''मतलब यह कि इस समय तुमको अवकाश नहीं कि विनायक बाबू से घड़ी-भर भी बात कर सको।

तारिणी मुसकराने लगी। बोली—"मैंने तुमको बेवकूफ भी बनाया और अब मैं तुम्हारी बात भी न मानूँ जीजी को तुम इतना शीलहीन समझती हो। क्यों ?" यह उठी और आलमारी से साड़ी निकालती हुई बोली—बस, मैं अभी चली।

पूर्णिमा पलंग पर लेटती हुई कहने लगी—अब मैं मरी।

तारिणी ने पूछा—क्यों ?

पूर्णिमा ने उत्तर दिया मानो तुम इसी साड़ी को पहने हुए विनायक बाबू से मिल नहीं सकती ?

तारिणी बोली—पहले बात दूसरी थी। पर आजकल तो वे सुशील को पढ़ाने आते हैं। अपनी मर्यादा भी तो रखनी पड़ती है।

पूर्णिमा बोली—मैं यह सब परपञ्च नहीं जानती। इसकी अधिकारिणी तुम हो और तुम्हें यह शोभा भी देता है।

उधर विनायक अकेला रह गया था। पता नहीं कहाँ से घूमती हुई मालती आ पहुँची। बोली—कहिये विनायक बाबू, अकेले कैसे बैठे हैं। सुशील कहाँ गया ?

अन्यमनस्क विनायक बोला—पढ़ाई इस समय किया लेने के बाद पता नहीं कहाँ चल दिया।

मालती अब तक खड़ी थी। अब कुरसी पर बैठ गयी। बोली—और क्या हाल-चाल है ?

विनायक ने कहा—आपकी कृपा है। ''अपना हाल बतलाइये। मजा है।

आजकल आपका सारा समय मजदूरों की समस्याओं के समाधान में जाता है पहले से कुछ दुर्बल भी तो हो रही हो।

"अच्छा, दुर्बल हो रही हूँ!" आश्चर्य्य के साथ मालती ने पूछा।—फिर बोली—कुछ स्थूल भी तो उधर हो चली थी। क्यों, हो चली थी कि नहीं? सच बतलाइये विनायक बाबू।

विनायक संकोच में पड़ गया। बोला—मैंने यों ही कह दिया। आप जानती हैं, मैं इन सब बारीकियों की छानबीन से अपने को दूर रखता हूँ।

"यानी आप कहना चाहते हैं कि"—मालती बोली—सेक्स की दृष्टि से आप सब नार्मल हैं।

विनायक की दृष्टि खिड़की से खुले आकाश की ओर जा पड़ी। बोला—आप चाहे जो समझ लें।

"अच्छा विनायक बाबू, मैं आप से एक बात जानना चाहती हूँ"—मालती कुछ सोचती, कुछ अपने को स्थिर करती हुई बोली—आज नहीं, फिर कभी बता देना, आज इसके लिए अनुकूल अवसर भी नहीं है।—आप भी मुझसे घृणा करते हैं? मैं सकारण और सविस्तार जानना चाहती हूँ।

विनायक तुरन्त बोल उठा—आपने मुझे बिलकुल गलत समझा है। मैं किसी से घृणा नहीं करता। न किसी से प्रेम ही करता हूँ मुझे यह सोचने का अवसर ही नहीं मिला कि मैं किसी नारी को किस दृष्टि से देखने का अधिकारी समझूँ।

"आप झूठ बोलते हैं!"

"मुझे यह भी पता नहीं कि मैंने आपके साथ कब असत्य भाषण का प्रयोग किया?"

"आपको पता होना चाहिए कि मैंने ही आपको यहाँ यह काम दिलाया है। मैंने ही भाभी से आपकी योग्यता की प्रशंसा की थी। मैंने ही कहा था कि सौ रुपये मासिक पर भी ऐसा आदमी महँगा नहीं है। आपसे बात-चीत ही करते न बनी। जो उन्होंने कहा, आपने तुरन्त स्वीकार कर लिया। पचास रुपये तो कहीं नहीं गये थे।"

"मैं मानता हूँ कि आपने मेरे साथ ऐसा उपकार किया है जिससे मैं जीवन-भर उद्धार न पाऊँगा। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि नित्य नियम से दिन में सौ बार मुझे आपका कृतज्ञता-ज्ञापन करते रहना चाहिए। किन्तु आप मुझ पर झूठ बोलने का अभियोग लगायेंगी इसका मुझे कतई गुमान नहीं था।

इसी समय आ गयी तारिणी और पूर्णिमा द्वार पर ठिठक कर हाथ जोड़ती हुई बोली—नमस्ते।

मालती कुछ कहने जा रही थी; परन्तु रुक गयी।

नमस्कार करते हुए विनायक बोल उठा—आप तो देख ही नहीं पड़तीं। मैंने सोचा था, रुपये का लाभ जो कुछ होगा, वह तो पासँग में पड़ेगा। असल चीज तो आप लोगों का सम्पर्क है। सो, सम्पर्क तो विकल्प में जा पड़ा, केवल पासँग हाथ लग रहा है।

पूर्णिमा हँसने लगी। बोली—अब कहो जीजी, तुम तो आ नहीं रही थीं न।

तारिणी मुस्कराती हुई बोली—बात यह है विनायक बाबू कि मैंने अपनी कुछ ऐसी आदत बना रखी है कि मुझे लोगों से मिलने-जुलने का कतई अवकाश नहीं मिलता। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि असम्पर्क की शिकायत एक आपको ही नहीं है।

पूर्णिमा अपने को रोक न सकी। बोली—अर्थात् वह बाबू जी तक को है। तात्पर्य यह कि इस क्षेत्र में भी आप अकेले नहीं हैं।

मालती जाने लगी। पूर्णिमा बोली—कहाँ चल दीं दीदी?—और तुमको बाहर से आते हुए तो मैंने देखा नहीं? नाराज तो नहीं हो मुझसे?

तारिणी बोली—शारदा कह रही थी, स्वामी राधाकृष्णजी की बाँसुरी सुनने भी न आयेंगी क्या? कितने दिनों से भेंट तक नहीं हुई।

"मुझे अवकाश नहीं है, इन सब बातों के लिए।" गम्भीर मालती बोली—ये सब काम उन लोगों को सूझते हैं, जिनके पास बैठे-बैठे गाने और अठखेलियाँ करने के लिए या तो पहले से पूर्वजों का दिया या संग्रहीत रुपया-पूरा

है, अथवा ऐसा कोई स्वामी रामानन्द है जिनका भाग्य सदा चलते आये, कभी कहीं पर ही नहीं सकती ।

सावित्री ने कटाक्ष करते हुए कहा—यह ऐसा व्यवसाय है जिसमें किसी उपदेश देने भर के लिए देना पड़ता है थोड़ी वाणी । जिन्होंने संग्रह किया था, वे भी बहुत रुपये से कुछ और ये अपना अभिनय कर गए थे, दूसरी ओर उनके दान-पुण्य की भी एक मर्यादा थी ।

"उनका और उनके उत्तराधिकार से प्राप्त भाग्य की अधिकतम मर्यादा का मुझे काफ़ी पता है।"...फिर याद सी एक सब बोली—पर इन बातों से बहस क्या ? अपनी-अपनी रुचि, अपना-अपना राग । मैं तो आपसे कहती नहीं कि स्वामी राधाकृष्ण की बांसुरी सुनने न जायें ।

सावित्री बोली—लेकिन मुझे तो अब उनसे यह कहना ही पड़ेगा कि रात-दिन की धौंस मैं सहन नहीं कर सकती ! जितना अपना रुपया चाहती हैं, वे संग्रह करके रखें, चाहे फेंक दें । तुम्हें दे देना चाहिए ।

मालती बोली—तुम्हारे कहने की जरूरत नहीं है । मैं खुद उनसे कहूँगी । मैं यह भी कहूँगी कि भाभी को आजकल भगवद्-भक्ति के दिवस आ गए हैं । उनके लिए एक मंदिर क्यों नहीं बनवा देते ? दोनों समय घंटा बजेगा, स्वामी जी की कृपा से प्रसाद हम लोगों को भी थोड़ा-बहुत मिल जाया करेगा ।

पूर्णिमा ने ताली बजा दी । फिर उसने दाहिने हाथ से घंटी हिलाने की मुद्रा में पुजारी का सा अभिनय करते हुए कह दिया—"बोल श्री कृष्ण बलदेव की जय !"

मालती जाने लगी । परन्तु इसी समय अमिया दौड़ी-दौड़ी आ पहुँची ।

वह कुछ घबराई हुई सी थी । बोली—अम्मा ने फोन से अभी सुना है । विपिन किसी का नाम है ?

सशंकित मुद्रा में विनायक बोल उठा—हाँ, है तो । फिर, क्या हुआ ?—हुआ क्या ?

वह बोली—उन्होंने ज़हर खा लिया है । अस्पताल में ले जाये गये हैं । आपको बुलाया है ।

विनायक के मुँह से निकल गया—अनर्थ हो गया।

वह चलने लगा। विदाई के रूप में उसने नमस्कार किया।

मालती ने एक क्षण तक सोचा, फिर बोली—मैं मन में साड़ी तैयार करने को कहती हूँ। मैं भी चलूँगी। तब तक मैं तैयार हो लूँ। ज़रा बैठिये।

तारिणी बोली—मुझे अब आज्ञा दीजिये।

पर इसी समय माँ आ पहुँचीं। बोलीं—विपिन की बात तो सुन ली न ?

वे बहुत धीरे-धीरे बोल रही थीं। ऐसा जान पड़ता था, जैसे उनके किसी आत्मीय बन्धु ही ने ऐसा अनर्थकारी दुस्साहस किया हो।

विनायक ने कहा—अपने मजदूर-संघ में ऐसा सच्चा और कर्मठ कार्यकर्ता दूसरा नहीं है। मुझे आश्चर्य है कि ऐसा दृढ़ चरित्र आदमी कैसे ऐसा दुस्साहस कर बैठा।

माँ पहले कुछ नहीं बोली। फिर आँखें फैलाकर मुँह बनाते हुए उन्होंने कहा—जरूर कोई ऐसी गहरी चोट पड़ी होगी, जिसको वह सहन नहीं कर सका।

अमिया गिलास-भर कुनकुना दूध ले आयी।

देखकर विनायक बोला—इस समय इसकी क्या जरूरत थी माँ ?

"तो क्या हुआ बेटा"—माँ ने सरल स्नेह के साथ कहा—अस्पताल जा रहे हो, कौन जाने कैसा समय आ पड़े, कब छूटना हो ? जल्दी जलपान तो तैयार हो नहीं सकता था। इन लोगों ने भी पहले से कुछ नहीं सोचा।

विनायक ने गिलास ले लिया।

मालती तैयार होकर आ गयी। बोली—दूध आज इस समय हो तो मैं भी पी लूँ माँ। मेरा पेट भी कुछ भूखा जान पड़ता है।

माँ बोली—जरूर पी लो और दूध ही क्यों, तेरी पाव-रोटी भी तो रखी होगी।

पूर्णिमा बोली—झट से दूध में डुबोकर ले तो आ।

शिकायत के ढंग से माँ कहने लगी—मैंने तो कुछ कहना ही छोड़ रखा है। आज पता नहीं कहाँ से मालती को यह सूझा है कि कुछ खाना अपने

है, अथवा ऐसा कोई स्वामी नन्दन है जिनका खाते रहो खाते जाओ, कभी कमी पड़ ही नहीं सकती।

तारिणी ने कटाक्ष करते हुए कहा—अरे ऐसा त्याग-संन्यास सभी केवल उपदेश देने भर के लिए रह गया है दीदी रानी। जिन्होंने संग्रह किया था, वे भी अपने समय में कुछ और ये अपना भविष्य बना रहे थे, दूसरी ओर उनके दान-धर्म की भी एक मर्यादा थी।

"उनका और उनके उत्तराधिकार में प्राप्त आज की अनिवार्य मर्यादा का मुझे काफी पता है।"…फिर आप ही रुक कर बोली—पर इन बातों में रखा क्या? अपनी-अपनी रुचि, अपना-अपना दान। मैं तो भाभी से मना करती नहीं कि स्वामी राधाकृष्ण की बाँसुरी सुनने न जायें।

तारिणी बोली—लेकिन मुझे तो अब उनसे यह कहना ही पड़ेगा कि रात-दिन की भीख मैं सहन नहीं कर सकती! दीदी अपना रुपया चाहती हैं, वे संग्रह करके रखें, चाहे फेंक दें। तुम्हें दे देना चाहिए।

मालती बोली—तुम्हारे कहने की जरूरत नहीं है। मैं खुद उनसे कहूँगी। मैं यह भी कहूँगी कि भाभी को आजकल भगवद्-भक्ति के सिवा कुछ नहीं है। उनके लिए एक मंदिर क्यों नहीं बनवा देते? दोनों वक्त घंटा बजेगा, स्वामी जी की कृपा से प्रसाद हम लोगों को भी थोड़ा-बहुत मिल जाया करेगा।

पूर्णिमा ने ताली बजा दी। फिर उसने दाहिने हाथ से घंटी हिलाने की मुद्रा में पुजारी का सा अभिनय करते हुए कह दिया—"बोल श्री कृष्ण बलदेव की जय!"

मालती हँसने लगी। परन्तु उसी समय अनिता दौड़ी-दौड़ी आ पहुँची।

वह कुछ घबराई हुई सी थी। बोली—अम्मा ने फोन से अभी सुना है। विपिन किसी का नाम है?

सशंकित मुद्रा में विनायक बोल उठा—हाँ, है तो। फिर, क्या हुआ?—हुआ क्या?

वह बोली—उन्होंने जहर खा लिया है। अस्पताल में ले जाये गये हैं। आपको बुलाया है।

विनायक के मुँह से निकल गया—अनर्थ हो गया।

वह चलने लगा। विदाई के रूप में उसने नमस्कार किया।

मालती ने एक क्षण तक सोचा, फिर बोली—मैं मत्तू से गाड़ी तैयार करने को कहती हूँ। मैं भी चलूँगी। तब तक मैं तैयार हो लूँ। आप बैठिये।

तारिणी बोली—मुझे अब आज्ञा दीजिये।

पर इसी समय माँ आ पहुँची। बोली—विपिन की बात तो सुन ली न?

वे बहुत धीरे-धीरे बोल रही थीं। ऐसा जान पड़ता था, जैसे उनके किसी आत्मीय बन्धु ही ने ऐसा अनर्थकारी दुस्साहस किया हो।

विनायक ने कहा—अपने मजदूर-संघ में ऐसा सच्चा और कर्मठ कार्य-कर्ता दूसरा नहीं है। मुझे आश्चर्य है कि ऐसा दृढ़ चरित्र आदमी कैसे ऐसा दुस्साहस कर बैठा।

माँ पहले कुछ नहीं बोलीं। फिर आँखें फैलाकर मुँह बनाते हुए उन्होंने कहा—जरूर कोई ऐसी गहरी चोट पड़ी होगी, जिसको वह सहन नहीं कर सका।

अमिया गिलास-भर कुनकुना दूध ले आयी।

देखकर विनायक बोला—इस समय इसकी क्या जरूरत थी माँ?

"तो क्या हुआ बेटा"—माँ ने सरस स्नेह के साथ कहा—अस्पताल जा रहे हो, कौन जाने कैसा समय आ पड़े, कब छूटना हो? जल्दी जल-पान तो तैयार हो नहीं सकता था। इन लोगों ने भी पहले से कुछ नहीं सोचा।

विनायक ने गिलास ले लिया।

मालती तैयार होकर आ गयी। बोली—दूध आज इस समय हो तो मैं भी पी लूँ माँ। मेरा पेट भी कुछ भूखा जान पड़ता है।

माँ बोली—जरूर पी लो और दूध ही क्यों, तेरी पाव-रोटी भी तो रखी होगी।

पूर्णिमा बोली—झट से दूध में डुबोकर ले तो आ।

शिकायत के ढंग से माँ कहने लगी—मैंने तो कुछ कहना ही छोड़ रक्खा है। आज पता नहीं कहाँ से मालती को यह सूझा है कि कुछ खाना अपने

आप स्वीकार कर रही है। नहीं तो कसम से कहती हूँ, कि अगर कुछ खाकर बाहर निकलने की बात मैं अपनी ओर से कहती, तो यह कभी स्वीकार न करती।...मेरी कोई बात ही नहीं मानती; सिर्फ एक मानने की बात ही नहीं है।

"लेकिन इसके लिए ऐसी चिन्ता करने की बात भी नहीं है माँ—" विनायक बोला—माता-पिता के जीवन का एक आनन्द होता है। उसी का एक रूप इसे भी समझ लेना चाहिए। बाद में जब सभी कुछ अपने आप पर अवलम्बित हो जाता है, तब हम इन्हीं बातों को सोचते रह जाते हैं। स्वच्छन्द जीवन की उपेक्षित मान्यताएँ भी आगे चलकर प्रायः गार्हस्थ्य जीवन के स्तर को उन्नत बना देती हैं और सच पूछो तो उनकी उचित उपयोगिता तभी ठीक तरह से साकार भी हो पाती है।

उत्तर सुनकर पूर्णिमा सोचने लगी—यह व्यक्ति अपनी प्रत्येक भेंट में मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

थोड़ी देर में कपड़े बदलकर तैयार मालती बुलाने लगी—चलिए विनायक बाबू!

गाड़ी पर चलकर जब दोनों चल दिये, तो पूर्णिमा बोली—अगर कहीं विनायक बाबू किसी अमीर घर में पैदा हुए होते, तो यह जोड़ भी बुरा नहीं था, माँ।

माँ ने निःश्वास लेते हुए कहा—मगर होते कैसे! भाग्य भी तो कोई चीज है।

"भाग्य क्या है? भाग्य की तो इसमें कोई बात है नहीं माँ—" पूर्णिमा बोली—यह तो इधर थोड़े-बहुत दिनों से चला आ रहा समाज का एक बना-बनाया ढंग है, जिसमें पढ़े-लिखे योग्य व्यक्ति गरीब बने रहते हैं और पूर्वजों की छोड़ी हुई जमा-पूँजी के आधार पर अयोग्य-से-अयोग्य आदमी बैठे खाते और गलछर्रे उड़ाते हैं। आज अगर पिता की छोड़ी हुई सम्पत्ति राष्ट्र की हो जाने लगे, तो लोगों को पता चल जाय कि भाग्य का खेल क्या है!

माँ बोली—पर ऐसा होने क्यों लगा। ऐसा भी कहीं हो सकता है! यह

तो एक अजीब अन्धेर की बात है।

पूर्णिमा बोली—साम्यवादी देश हो जाने पर ऐसा ही होता है।

मां बोली—तुम सब लोगों की मति मारी गयी है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मालती को पढ़ाने-लिखाने में हज़ारों रुपया जो खर्च हुआ, वह व्यर्थ गया।

दोनों अन्दर आने लगी।

पूर्णिमा माँ के साथ हो ली। माँ अपने कमरे में बिछे हुए तख्त पर बैठने लगी। पूर्णिमा ने फ़र्श पर शीतलपाटी बिछा ली। बैठते ही उसने कहा—तुम्हारा यह खयाल ठीक नहीं है माँ। बीबी का जीवन बहुत उज्ज्वल है। इधर उनमें मज़दूरों की सेवा का जो भाव आया है, वह कितने ऊँचे दर्जे का है!

"अच्छा, एक बात बतलाओ" माँ ने बहस करने के ढंग से, अपनी समझ से जैसे यह कोई अकाट्य तर्क की बात हो, पूछा—यह विनायक जितना पढ़ा है, उतना न हमारे बड़े बेटे पढ़े हैं, न छोटे। यहाँ तक कि तुम लोगों के देवता-स्वरूप शर्माजी भी नहीं पढ़े। परन्तु उसकी गरीबी का हाल तो तुमसे छिपा है नहीं। मैं तुमसे पूँछती हूँ, भाग्यवान होता तो उसे हमारे घर—मेरी कोख—में जन्म लेना चाहिए था।

पूर्णिमा ने फिर अपना उत्तर दोहराया। उसने कहा—यह पूज्य पिता-तुल्य हमारे ससुर जी जो सम्पत्ति हम लोगों के लिए छोड़ गये हैं, वह अगर पूरी नहीं, कहीं अधिकांश में भी राज्य की हो जाती, तब क्या होता?

अब माँ की समझ में कुछ आया। वह बोली—हाँ, तब तो हम सब लोग भी आज यह रईसी नहीं भोग सकते थे।

"इसका मतलब यह हुआ कि"—पूर्णिमा बोली—"तब हम लोग भी तुम्हारे शब्दों में भाग्यशाली न होते और सारे देश का ही जब यह हाल होता, तब उस राज्य के पास जो सम्पत्ति होती, वह उन लोगों में बँट जाती, जो परिश्रम करके अपनी जीविका चलाते हैं। जो कोई भी राज्य के लिए अधिक उपयोगी काम करता, उसी को उपभोग के लिए, उजरत में, अधिक रुपया

मिलता। उस दशा में, जब कि अपनी संतान को वह विशेष सम्पत्ति छोड़ जाने का अधिकार न होता, यह भी स्पष्ट है कि उनके रहन-सहन का दर्जा भी कम ऊंचा नहीं होता और इतना तो तुम मानती ही हो कि योग्यता की दृष्टि से विनायक बाबू हम लोगों में सबसे ऊपर हैं, तब उस दशा में हम सब लोगों की अपेक्षा सुखी भी वही अधिक होते! तो जिस वस्तु को आज हम भाग्य शब्द से याद करते हैं, वह वास्तव में एक रूढ़ि एक प्रचलन और सामाजिक संगठन से सम्बन्ध रखने वाली नीति है, न कि भाग्य।

पर अभी माँ का समाधान हो नहीं पाया था। इसलिए वह कहने लगीं—लेकिन यह विनायक अपने लिए कोई ऐसा उद्योग भी तो नहीं करता जिससे उसे कोई ऊँची नौकरी ही मिल जाती। निकम्मा आदमी तो कभी उन्नति कर नहीं सकता।

पूर्णिमा बोली—तुम कर्म की बात मत करो माँ। क्या हमारे देश में भी ऐसे लोगों की कमी है जो सपरिवार रात-दिन लगातार काम में तेली के बैल की तरह जुते रहते हैं। उनका सारा-का-सारा जीवन अँधेरी कोठरियों, गन्दे मकानों, धूप और शीत की स्वास्थ्यघातक सीमाओं, दिल और दिमाग़ को बेकार कर देने वाली मैशीनों और फैक्टरियों की घनघोर ध्वनियों के बीच खप जाता है। फिर भी वे दरिद्र-के-दरिद्र ही बने रहते हैं। काम करते-करते ही वे जन्म लेते और पनपते हैं। काम करने की ही दशा में गृहस्थ बनते और मस्तिष्क और स्नायुओं से निःशक्त होते-होते अपनी जीवनलीला समाप्त कर देते हैं। वे नहीं जानते, भाग्योदय क्या वस्तु है। वे नहीं जानते, जीवन की उन्नति क्या है। वे यह भी नहीं जान पाते कि इस समस्त जगत् के असीम सौख्य-भोग में उनका भी कोई भाग है। फिर यह क्रम आज पचासों वर्षों से बराबर चला आ रहा है। पीढ़ियाँ खत्म हो गयीं, पर उनकी गरीबी खत्म नहीं हुई। मैं पूछती हूँ कि क्या यह हमीं लोगों की स्वार्थपरता का कुफल नहीं है।

माँ बोलीं—पर उसकी वकालत करने की तुझे सूझी क्या है?

पूर्णिमा मन-ही-मन अपने आपसे पूछने लगी—वास्तव में क्या कोई ऐसी

बात है, जो यह विनायक बाबू मुझे अधिक भाते हैं ? मैं तो नहीं जानती ! वह कुछ निश्चय न कर पायी तब वह बोली—"तो क्या इसका यह मतलब है कि एक सच्ची बात भी, जो मेरे मन में आवे, मैं प्रकट न करूँ !' और इतना कहती हुई वह उठकर चल दी।

सत्ताइस

जगत और जीवन में कितना कलुष भरा है, इसकी थाह किसी ने कभी पायी है ! जितनी गहराई की खोज की जायगी सीमा उतनी उतनी ही दूर चली जायगी। कलुष का आदि आरम्भ में इतना स्पष्ट भी नहीं होता कि दिखाई पड़ जाय। वास्तव में उत्तरोत्तर उस पर पड़ते जाने वाले आवरण उसे पोषण देते हुए भीमकाय बना डालते हैं। आज की सभ्यता का सबसे घातक और विषाक्त रूप वहीं प्रतिष्ठित होता है जहाँ सद्‌सत्य पर परदा डाल दिया जाता है। बाद में रोने-धोने और अन्य ढंग से पश्चात्ताप करने से क्या होता है। घटनाओं के वीभत्स और नारकीय दृश्य आज के लिए सर्वथा नवीन तो हैं नहीं। मनुष्य अपनी ही बनाई हुई रूढ़ियों और नाशकारी मान्यताओं से अपना सिर चाहे जितना धुनता रहे, किन्तु उनकी अनिवार्य बुभुक्षा की लपट जब भी अवसर पायेगी, अपना भैरव नृत्य करके ही शान्त होगी। नैतिक सीमाएँ बनेंगी और नष्ट होंगी, आदर्शों का स्थापन एक बार होगा, पुनः मिट जायगा। मनुष्य अपने त्याग और बलिदान से उसे सींचेगा। वेन भी उसकी सहलायेंगी। किन्तु विवर्तन का चक्र तो कभी कहीं थमा नहीं जायगा। दह तो आवेगा। क्रान्ति का ही अपना एक नाम इतिहास है।

आज गिरधारी का मन इतना अशान्त, अस्थिर और अधीर था कि उसने घर लौटकर भोजन नहीं किया। रेणु, विनायक, मालती तथा ललित सब-के-सब विपिन को देखने के लिए हास्पिटल आ गये थे। गिरधारी तो पाँच बजे

रेणु जैसे डर गयी। वह उठ बैठी और बोली—"मैं चली तो जा रही हूँ, पर तुम्हारी यह नीति ठीक नहीं है।"

बस, इन्हीं शब्दों के साथ वह सोने चली गयी, चारपाई पर जाते ही दस मिनट में उसे नींद आ गयी।

तीन के लगभग शर्म्माजी की आँख ज़रा झप गयी, फिर तब खुली, जब नीचे सड़क पर किसी ने पुकारा—आपको हास्पिटल में विपिन ने याद किया है।

संवाद पाकर शर्म्माजी उठे और तुरन्त चल दिये।

वे ज्यों ही मेस्टनरोड पर आये, त्योंही घूमता हुआ ललित देख पड़ा। गिरधारी ने इक्का खड़ा कर दिया। आज उसने साहस करके ललित से पूछा—एक बात मैं तुमसे पूछना चाहता था। इस समय मैं ज़रा जल्दी में हूँ। फिर कभी पूछूँगा।

ललित गिरधारी की चेष्टा देखकर सशंकित हो उठा। वह बोला—अच्छा हो, इस समय आप पूछ लें। मैं आपको किसी तरह की चिन्ता में नहीं रखना चाहता।

गिरधारी ने पूछा—क्या कभी तुमने मालती से प्रेम भी किया था ?

ललित सोच-विचार में पड़ गया। बोला—आपसे मालती ने जान पड़ता है, कुछ कहा है। जो हो, आपसे क्यों झूठ बोलूँ, एक बार मुझे कुछ शक जरूर हो गया था। मैंने उससे विवाह के लिए प्रस्ताव भी किया था। पर उसी के बाद हमारे सम्बन्ध टूट गये।

गिरधारी ने किसी प्रकार का कोई विचार प्रकट न करके केवल इतना कहा—बस मुझे यही पूछना था।

विपिन को चेतना सवेरे पाँच बजे आयी थी। चेतन होते हुए पहले उसने पानी माँगी। पर व्यवस्था के अनुसार उसे पहले एक मिक्स्चर दिया गया। वह बहुत कमजोर हो गया था। बहुत धीरे से बात कह पाता था। सिर इधर-उधर करते हुए सबसे पहले उसने प्रश्न किया—मैं कहाँ हूँ ?

मालती आराम कुरसी पर लेट गयी थी। चार बजे तक वह विनायक के

साथ बातचीत करती रही। अन्त में पहले विनायक को नींद आ गई, फिर मालती को।

इस प्रकार उत्तर विपिन को नर्स ने दिया—आप हॉस्पिटल में हैं।

बस, इतनी बात ही पायी थी कि मालती झट से उठ बैठी। वह विपिन की ओर झुक गयी। उसने उसका हाथ टटोला। टेम्परेचर उसे मालूम पड़ा। नर्स बोली—पहले डाक्टर साहब को खबर करना ठीक होगा। और उसने तुरन्त एक नौकर को इसके लिए भेज दिया।

मालती ने कहा—आप चिन्ता ज़रा भी न करें। जान बच गयी, यह बहुत बड़ी बात हुई। अब क्या है, एक-आध दिन में तबियत अच्छी हो जायगी।

यह उसने जान-बूझकर नहीं पूछा कि आपने ऐसा क्यों किया?

इस समय नर्स को शर्माजी को सूचना देने का स्मरण हो आया। जैसे ही डाक्टर आये, वैसे ही शर्माजी के बुलाने के लिए आदमी भेज दिया गया।

दवा पीते ही विपिन कुछ और चैतन्य हुआ। मालती और विनायक को लक्ष्य करके उसने कहा—आप लोगों को बड़ी तकलीफ हुई। नर्स ने उत्तर दिया—दोनों साहब सारी रात जागे हैं।

विनायक बोला—आज तुम हमको मिल गये, सोने नहीं पाये, सबसे अधिक प्रसन्नता की बात तो यह है।

डाक्टर ने स्टेथसकोप से विपिन की परीक्षा की। बोले—एवरीथिंग इज़ क्वाइट आलराइट।

फिर उन्होंने पूछा—मिक्सचर दे दिया था न?

नर्स ने उत्तर दिया—आँख खोलने पर पहली बात सुनते ही फौरन।

तीन दिन के बाद की बात है।

विपिन शर्माजी के यहाँ बैठा हुआ है। उसने आज उन्हीं के यहाँ भोजन किया है। रात के नौ बजे हैं। रञ्जन सो गया है। लोचन बाजार से दूध लाने गया हुआ है। रेनु कुरसी डाले पास बैठी है। शर्माजी ने विपिन के आने पर कुछ कहा नहीं। यहाँ तक कि आत्मघात की घटना के सम्बन्ध में भी कोई

हीं किया।

तब विपिन स्वयंमेव बतलाने लगा। वह बोला—कई दिन से मैं आपक इस घटना का भेद बताने के लिए सोच रहा था। यह भी मेरे मन में आ था कि और किसी को चाहे न भी बतलाया जाय, पर आपसे उसे कैसे छिप सकता हूँ! उस दिन आपने कहा था नियम से मनीआर्डर भेजना शुरू कर दे देखो क्या होता है। मैंने तदनुसार दस रुपये किसी तरह भेज दिए थे। आठ दिन में उसकी रसीद और फिर दूसरे ही दिन एक पत्र आया था। उसमें लि हुआ था—दो-चार दिन के लिए आप चले आइये। यहाँ लोग आपके लि बड़े उत्सुक हैं। मैं किसी तरह का विलम्ब किये बिना तुरन्त यहाँ से चल गया।

इसके बाद विपिन रुक गया। बीड़ी का बण्डल और दियासलाई क डिब्बी उसने जेब से निकाली। बीड़ी सुलगाकर उसने दो एक कश लिए औ कहने लगा—

"आपको पता है कि मैं दिल का कितना कठोर आदमी हूँ। मैं ..को (स्त्री के लिए) बिलकुल भूल जाना चाहता था। ससुर साहब व्यवहारों से मैं परिचित ही था, परन्तु इधर जो परिवर्तन उनके हुए, उनसे मैं बिलकुल अपरिचित था। उस बार जब मैं उसको लेने के लि गया था, तब जिस कारण उन्होंने उसे नहीं भेजा, उसे दबाकर प्रत्यक्ष से उन्होंने यही घोषित किया था कि जिसे अपने खाने की सुभीता नहीं है, व स्त्री को क्या खिलायेगा? पर उस बार पता चला कि उनके इस उप अन्दर वास्तव में एक रहस्य था।

बाद आकर ले जाना। यों तुम्हारा घर है; आते-जाते बने रहा करो।

"आप जानते हैं, मनुष्य के धैर्य की एक सीमा होती है। मैंने उस समय उनको कोई उत्तर नहीं दिया। सोचा—मैं सत्यवती से पहले बातचीत कर लूं, तब कुछ निश्चय करूँ।"'''वहाँ पर कुछ इस तरह की प्रथा है कि जामाता चाहे जितने दिनों बाद ससुराल जाये, लड़की के साथ वे लोग उसकी भेंट नहीं होने देते। प्रायः मकान की बाहरी बैठक, दालान अथवा छप्पर हुआ तो उसी में, उसके सोने का प्रबन्ध किया जाता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मैं एक दिन रहा, दो दिन रहा। किसी तरह जब सत्यवती से मिलने का कोई प्रबन्ध ही न हो सका, तो मैंने पास-पड़ोस में बैठना-उठना शुरू कर दिया।

"यहाँ यह मैं स्पष्ट कर दूं कि वह गाँव काफी बड़ा है। हफ्ते में दो बार वहाँ बाजार लगता है। ससुर महाशय के कई मकान हैं। उनका कारोबार खूब फैला हुआ है। एक आटा-चक्की चलती है और गल्ले का तो उनका अच्छा खासा चलता हुआ कारोबार है। पास-पड़ोस में मैंने जो बैठना-उठना शुरू की, तो मुझे कई ऐसी बातों का पता चला, जो मेरे लिए एकदम से नयी थी। मुझे मालूम हुआ कि घर के काम के लिए कहार रखा जरूर गया है, किन्तु वह तो बाहरी कामों में ही लगा रहता है। उसको इतनी छुट्टी कहाँ रहती है कि वह घर का चौका-बर्तन करे। सत्यवती ही सब करती है। वही दोनों वक्त खाना पकाती, बर्तन मलती, बच्चों के कपड़े और उनका मल-मूत्र साफ़ करती है। वह दिन-रात काम में लगी रहती है। वह न हो तो उनके घर में रानी-स्वरूप वे जो उनकी देवीजी आयी हैं, उनको पलंग पर से उतरना न पड़े? आज उनके बाल-बच्चा होने वाला है। पर अभी कल तक क्या था! तात्पर्य यह है कि अपनी नवेली स्त्री की दासी के रूप में ससुर महाशय ने अपनी लड़की को रख छोड़ा है। कोई दूसरा आदमी—नौकर हो तो एक तो उसको तनख्वाह देनी पड़े, दूसरे वह काम भी मरजी के मुताबिक न कर सके। इतनी बचत क्या कम है?

"मैंने सोचा—शोषण रूपी काले नाग की जीभ कितनी लपलपा रही है।

"परन्तु आप जानते हैं, ये सब बातें तो हम अपने देश और समाज

हीं किया।

तव विपिन स्वयंमेव वतलाने लगा। वह वोला—कई दिन से मैं आप इस घटना का भेद वताने के लिए सोच रहा था। यह भी मेरे मन में आ था कि और किसी को चाहे न भी वतलाया जाय, पर आपसे उसे कैसे छि सकता हूँ! उस दिन आपने कहा था नियम से मनीआर्डर भेजना शुरू कर देखो क्या होता है। मैंने तदनुसार दस रुपये किसी तरह भेज दिए थे। अ दिन में उसकी रसीद और फिर दूसरे ही दिन एक पत्र आया था। उसमें लि हुआ था—दो-चार दिन के लिए आप चले आइये। यहाँ लोग आपके लि वड़े उत्सुक हैं। मैं किसी तरह का विलम्व किये विना तुरन्त यहाँ से चल गया।

इसके वाद विपिन रुक गया। वीड़ी का वण्डल और दियासलाई क डिव्वी उसने जेव से निकाली। वीड़ी सुलगाकर उसने दो एक कश लिए औ तव कहने लगा—

जाती थी। शर्माजी, यह गौरव आज हमारा सब-का-सब न जाने कहाँ विलीन हो गया!

इसके बाद विपिन चुप हो गया। वह सोचने लगा, सम्भव है, शर्माजी कुछ कहें। पर जब वे कुछ नहीं बोले, तो विपिन ने कह दिया—आप लोगों को मृत्यु ने तो बचा लिया, पर अब जिन्दगी से कैसे बचायेंगे!

लोचन दूध ले आया था। वह ठंडा हो रहा था। एक-एक गिलास वह शर्माजी तथा विपिन को देने लगा।

रेणु बोली—भी से विपिन, चाहे जितना दुःख हो, मनुष्य अपने कर्म का त्याग कर नहीं पाता। देखो न, प्रकृति कितनी निर्मम है!

एक नि:श्वास लेते हुए शर्माजी बोले—मैं क्या बतलाऊँ, मेरी तो बुद्धि काम नहीं देती। मैं तो यही सोचने लगा हूँ, आज हमारी जैसी स्थिति है नैतिकता, आदर्श और मर्यादा-पालन के पुरातन मान अब चल नहीं सकते।

अट्ठाइस

घृणा प्रेम की ही विकृति है। जब कोई व्यक्ति किसी से घृणा करता है, तो वह प्रायः उन क्षणों का ही स्मरण करके उत्तेजना प्राप्त करता है, जिनमें उसके साथ विश्वासघात किया जाता है। घृणा की चरम परिणति का ही नाम प्रतिहिंसा है। यह ऐसी अग्नि है, जो तब तक सुलगती रहती है, जब तक आहुति के रूप में अपना भोग नहीं पा लेती। किन्तु जब उसका बदला चुक जाता है, तब घृणा भी अपना रूप बदलकर प्रेम में परिणति हो जाती है। किन्तु उस समय उसमें पश्चात्ताप का उदय हो जाता है। आत्मा उस क्षण निर्मल हो जाती है और जीवन के सारे विकार नष्ट हो जाते हैं। किन्तु त्याग के बिना पश्चात्ताप का शमन नहीं होता। इसीलिए कहा गया है कि त्याग प्रेम की चरम सीमा है।

तो त्याग प्राप्ति का हेतु है। संतुष्टि और तृप्ति उससे उपलब्ध होती है। इस प्रकार प्रतिहिंसा भी प्रेम का ही रूपान्तर है।

ब्रजनाथ को इस बात का बड़ा आश्चर्य्य और क्लेश हो रहा था कि एक स्त्री—और सो भी वेश्या—के समक्ष उनको इस प्रकार अपमानित होना पड़ा। रुपये दो हजार उनकी व्यवस्था के अनुसार सचमुच आ गये थे; परन्तु वे सोच रहे थे कि पुरुष के लिए यह बात है कितनी लज्जा की कि वह एक स्त्री के द्वारा इस प्रकार के जाल में फँस जाय! स्त्री के सम्बन्ध में वे मानते यह थे कि वह तो पुरुष के लिए एक भोग की वस्तु है। परन्तु आज घूम-फिर कर वे उसकी दूसरी दिशा का भी अनुभव करने लगते थे। वे सोचते, क्या स्त्री में इतनी कठोरता, निर्दयता और छलना भी सम्भव है! एक-आध बार तो उनके मन में यह भी आया कि चाहे जितना रुपया खर्च हो जाय, पर इसकी इस बदमाशी का भंडाफोड़ करके इसे जेल की हवा खिलाए बिना अगर मैं शान्त हो जाऊँ, तो मेरे पुरुषत्व को धिक्कार है।

पर ज्यों ही वे चलने लगते, बूंदी एक-न-एक ऐसा कारण उपस्थित कर देती कि उन्हें रुकना पड़ता। अन्त में रुपया देने के कारण जब सब तरह से उनका नशा उतर गया और वे वास्तव में चलने के लिए तत्पर हो गये, तो उन्होंने बूंदी से पूछा—एक बात मेरी समझ में नहीं आयी।

बूंदी ने ब्रजनाथ बाबू की ओर एक टक देखते हुए उत्तर दिया—उसको भी समझ लीजिए न। ऐसी जल्दी क्या पड़ी है!

ब्रजनाथ बाबू बोले—मैं केवल यह जानना चाहता हूँ कि आज तुमने मुझको इस तरह अपमानित क्यों किया? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो एक निर्दय हत्यारे की भाँति तुम मुझे तहखाने तक में डाल देने के लिए तैयार हो गयी थीं। पचासों वेश्याओं को जानता हूँ, किसी ने मेरे साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया! अगर ऐसा अन्धेर होने लगे तो फिर तुम लोगों का इस तरह रहना मुश्किल हो जाय। मैंने तो किसी तरह, रुपये के बल से, अपनी रक्षा कर ली। पर दूसरा आदमी होता, तो क्या तुम सोचती हो, इस तरह सहज ही रुपया दे देता! क्या वह अपनी जान पर न खेल जाता! और क्या

इसमें सन्देह है कि उस दशा में तुमको लेने-के-देने पड़ जाते !

बूँदी के हृदय में जैसी छुरियाँ चल रही हैं। वह बारम्बार सोचती है इसको छोड़ ही क्यों दिया ? इसका तो काम तमाम कर देना चाहिये था। अतएव उसने व्रजनाथ बाबू के कथन पर एक तुच्छता का-सा भाव प्रकट करते हुए मुँह बना दिया। फिर सिग्रेट जलाकर उसने इस ढंग से धुआँ उड़ाया जैसे यह कोई महत्व की बात ही न हो। जैसे यह बात अपराध के रूप में उसको स्पर्श तक न कर पाती हो ! उसने केवल इतना कहा—और कुछ ?

व्रजनाथ बोले—मुझे यह एक बड़ी विचित्र बात मालूम पड़ती है कि गला भी काटना होता है, तो वेश्या धीरे-धीरे काटती है; एकदम से एक ही झटके में गर्दन नहीं उड़ा देती। यदि ऐसा होने लगे, तो व्यवसाय के रूप में यह पेशा किसी प्रकार दस दिन भी चल न सके। रुपया तो तुम ले ही चुकी हो। अपमान भी जितना तुम कर सकती थीं, तुमने कर ही लिया है। भेद नहीं बतलाओगी, तो मुझे शंका बनी रहेगी। अतएव सचमुच मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे इस तरह मेरे पीछे पड़ने का कारण क्या है ?

बूँदी को स्मरण आ गया कि यह वह व्यक्ति है जो अपने विवाह के सम्बन्ध में स्वीकृति देने के सिलसिले में एक जगह लड़की देखने गया था। और अन्त में उसकी साधारण रूप-रेखा से जरा कम प्रभावित होने के कारण इसने विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था।

बूँदी उठी और पास आकर व्रजनाथ बाबू के मुँह की ओर एकटक देखने लगी। फिर बोली—मुँह तो इतना खूबसूरत और उजला नहीं जान पड़ता, लेकिन खैर। ' हाँ और कुछ ?

अब की बार व्रजनाथ बाबू को कुछ और धक्का हुई। विस्मयाकुल भाव से उनके मुँह से निकल गया—मैं तुम्हारे सामने दया की भिक्षा माँगता हूँ बूँदी। अब बस करो और अधिक मुझे अब मत सताओ। मुझे साफ-साफ बता दो कि तुम हो कौन, किस प्रकार मेरी जीवन-भर की कमजोरियों का तुम्हें इतना अधिक पता लग सका—और मुझे इस प्रकार नीचा दिखाने में तुम्हें मिल क्या गया ?

बूंदी इस बार हँसी और सिग्रेट का धुआँ उसके ऊपर छोड़ती हुई बोली—इतने सस्ते छूटना चाहते हो ? भला ऐसा कहीं हो सकता है !

ब्रजनाथ बाबू और भी आंतकित हो उठे। वे बोले—मुझे और अधिक मत सताओ बूंदी ! मुझे कुछ ऐसा संदेह हो रहा है कि रुपये की भूख इस षड़यंत्र का असली कारण नहीं है। असल बात कुछ और ही है।

बूंदी को एक-एक करके वे सारी बातें याद आ रही हैं, जो ब्रजनाथ ने प्रणय के चढ़ते रंग के समय वादों के रूप से उसमें की थीं। उसे स्मरण आ गया कि यही वह व्यक्ति है, जिसने कहा था मैं तुम्हें प्राणों से अधिक प्यार करता हूँ। मेरे समस्त जीवन की एक मात्र सफलता तुम हो। तुम्हें मैं कभी भूल नहीं सकता। एक यह जीवन क्या अनन्त काल के लिए तुम्हारे प्रेम की डोरी में आवद्ध रहने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।

बूंदी ने इसी क्षण गिलास में थोड़ी मदिरा डाली और गट्-गट् पी ली नशे में झूमती हुई वह कहने लगी,—"तो अब मुझे भी तुम बेवकूफ बनाना चाहते हो ! मेरे हमेशा के लिए सोये और मुर्दा पड़े हुए सपनों को तुम जगाने की कोशिश कर रहे हो क्यों !

अन्तिम शब्द एक धमकी के भाव से ओत-प्रोत होकर उसने कहे। तब ब्रजनाथ बाबू अत्यन्त मर्माहत हो उठे। बोले—मैं भगवान् की शपथ लेकर कहता हूँ, तुम्हें किसी प्रकार की हानि पहुँचाने का इरादा मेरा क़तई नहीं है। मैं ये बातें सिर्फ इस खयाल से कह रहा हूँ कि अगर कभी भूल से भी मुझसे कोई ग़लती या अपराध हो गया हो, और तुम पर अब तक उसका असर बाक़ी हो, तो मैं उसका प्रायश्चित कर लूं।

बूंदी ने इस समय इतना अधिक मुंह बनाया कि ब्रजनाथ बाबू के शरीर-भर में कपकपी-सी दौड़ गयी। वह यहाँ तक सोचने लगा—क्या इसका दिमाग़ कुछ फिर गया है ? परन्तु तत्काल बूंदी ने एक तुच्छता का-सा भाव दिखलाते हुए कहा—"भगवान् की शपथ ! आदमियत का खून करने वाले तुम लोगों का सबसे बड़ा और तेज औजार खुदा है। किसी की दौलत हड़पनी हो इज्जत लूटनी हो, बस, खुदा के नाम का गड़ांसा उसे जिबह करने के लिए

तैयार है। चाहे जितनी ज्यादती, जुल्म, और गुनाह होता रहे, मगर खुदा के नाम पर, तकदीर और आक़बत की दामन में, सब बरदाश्त करते चलो!…" इसके बाद उसने फिर मुँह बनाया। वह बोली—कुत्ते कहीं के! उस वक्त भी तो तेरा यही भगवान् मददगार रहा होगा जब तूने अपने रुपये के साथ-ही-साथ मालती के हिस्से का रुपया भी ट्रान्सफर करवाकर…मिल का शेयर खरीदा होगा।

अब ब्रजनाथ बाबू थर-थर काँपने लगे। हाथ जोड़कर वे बोले—मुझे माफ़ कर दो बूँदी मैं सचमुच अपराधी हूँ।

बूँदी ने कहा—मैं माफ करने वाली कौन होती हूँ। माफी माँगो अपने उसी भगवान् से, जिसका नाम लेकर इटली के पादरियों और मुल्लाओं ने अपने मुल्क के नौजवान सिपाहियों को अबेसीनियों के खून से अपने हाथ रंगने और उसे तहस-नहस करने के लिए आशीर्वाद देकर भेजा था। माफ़ी माँग अपने उस भगवान् से, जिसके नाम पर एक तरफ सेठों के मन्दिर में सुबह-शाम पूजा आरती होती, घंटा-घंट बजते और प्रसाद बाँटा जाता है, और दूसरी तरफ किसान भूखों मरते और मिलों के मजदूर लाठी और गोली खाते हैं और दूसरी ओर मैं क्यों आऊँ, क्या उस वक्त भगवान् ने तेरी मदद न की होगी जब तूने एक बेगुनाह नौजवान लड़की से यह वादा करके उसकी अस्मत ली कि मैं तेरे साथ शादी कर लूँगा लेकिन बाद में उसको नापाक करार देकर ठुकरा दिया। उसका दीनोईमान लेने और उसके अरमानों का खून करते वक्त भी तो तुझे उसी भगवान् की मदद मिली होगी।

अब ब्रजनाथ बाबू कहने लगे—तुम शायद वीणा की बात कह रही हो।

इसी समय, "तुमको आज उस वेश्या का नाम लेते शरम नहीं आयी!" बूँदी ने कह दिया। आश्चर्य, सताप और दयनीय मुद्रा से ब्रजनाथ बाबू बोले—लेकिन तुमको उस वीणा का क्या पता वह तो…वह तो—गंगा में डूब कर…

दाँत पीस कर बूँदी बोली—पापी, हत्यारे वह गंगा में नहीं डूबी, वह

रक के कुंड में डूबी थी और अब मुजस्सिम तेरे सामने है।

चाहिये तो यह था कि बूंदी के रूप में वीणा को पाकर ब्रजनाथ बाबू मोहित हो उठते; किन्तु उसकी प्रतिहिंसा को ही लक्ष कर वह बोले—"तो मने आज उसी का यह बदला चुकाया है।" फिर इस कथन के साथ ही वह कुछ सोचते हुए कुर्सी पर बैठ गये।

बूंदी बोली—तुमने सोचा होगा कि हम जिन्दगी भर मौज उड़ाते रहेंगे, क्योंकि वीणा तो मर चुकी होगी। मेरा कोई क्या कर लेगा। लेकिन तुमने यह न सोचा कि पाप स्वयं अपना मुंह खोलकर चलता है। मनुष्य उस पर एक सीमा तक ही आवरण डाल सकता है!

"लेकिन तुमको मेरी इन गुप्त-से-गुप्त बातों का पता कैसे चला वीणा?"

वीणा मदिरा डाल रही थी। रूमाल से मुंह पोंछने के बाद बोली—

वीणा जैसे प्यारे नाम से मुझे मत पुकार पापी!

"तुम अब तो मुझे क्षमा कर दो, वीणा! (वह फ़र्श पर घुटनों के बल बैठ गया) मैं घुटने टेक कर तुमसे क्षमा माँगता हूँ।"

किन्तु झुमती हुई वीणा बोली—मेरे बदन का रोआँ-रोआँ जैसे जल रहा है। मेरे शरीर का अणु-अणु प्रतिहिंसा के खौलते कढ़ाव में, बुलबुलों के साथ तैर रहा है! मुझसे बोल मत पापी।...हाय मैं नागिन हूँ, नागिन तुझे पता नहीं कि तूने मुझ पर पैर रख दिया था। आज मैंने मौका पाकर तुझे चबा लिया है। जा अपना इलाज करा। नहीं तो...।

कहते-कहते वीणा माथे पर हाथ मारकर फ़र्श पर गिर पड़ी?

ब्रजनाथ को अब चेत आया कि उसने कब, किस समय, क्या गलती की है। किन्तु उसका कोई महत्व न देकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा—खैर मैं जिस योग्य था, उसका फल मुझे मिल गया। अब आँखें खोलो और मुझको यह बतलाओ कि अब मैं तुम्हारे किस काम आ सकता हूँ!

किन्तु इधर-उधर देखता हुआ सोचने वह यही लगा कि यदि किसी तरह मैं रुपये उड़ा सकूं, तो कितना अच्छा हो!

प्रकाश डाला था आपने मेरे ऊपर जो कृपा की है, मैं उसे कृपा के रूप में स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। मैं नहीं मानता कि कोई आदमी किसी के साथ कृपा करता है। मनुष्य में एक वृत्ति होती है, जो अपने से हीन, असमर्थ और अनाश्रित व्यक्ति को सहायता देकर संतुष्ट हुआ करती है। उसमें एक बड़प्पन का भाव होता है वह उसमें एक गौरव का अनुभव करती है कि उसके द्वारा किसी अधिकारी व्यक्ति को कुछ लाभ हो जाय। उसी वृत्ति से प्रेरित होकर आपने मुझे यह ट्यूशन दिला दिया था। पर आपने इसमें स्वार्थ-त्याग किया यह मैं नहीं मानता। मैं यदि यह ट्यूशन बराबर स्वीकार किए रहूँ, तो आपके प्रति कृतज्ञता का भाव मुझे बराबर दबाये रहेगा जब कभी आप मिलेंगी, मैं सोचूंगा, मैं इनका कितना आभारी हूँ! उस समय मेरी स्वतन्त्रता अपना अस्तित्व संकटापन्न देखेगी। मैं अपने भीतर एक हीनभाव का अनुभव करने को विवश होऊँगा। इससे यह कहीं अच्छा है कि जहाँ कहीं भी मैं काम पाऊँ, इस भाव से पाऊँ कि मैं ही उस अवसर का एक मात्र अधिकारी हूँ। उस समय मेरी स्वतन्त्रता पर तो किसी तरह का बोझ न होगा। मैं वार्तालाप और विचार विनिमय में सर्वथा स्वतन्त्र तो रहूँगा। आपको यदि इस बात का अहंकार है कि आप मेरे ऊपर कृपा कर सकती हैं, तो मुझे इस बात का गौरव कि मैं अपनी स्वतन्त्रता किसी भी क़ीमत पर बेच नहीं सकता। परिणाम की बात सामने हो, तो मैं यहाँ केवल इतना कहना चाहता हूँ कि मैं भूख की पीड़ा से तड़प-तड़प कर मर भी सकता हूँ। परन्तु मैं दयनीय नहीं बन सकता। आपने मुझे समझ क्या रक्खा है?

"यहाँ एक बात मैं और स्पष्ट कर दूँ कि कृपा करने और उहकृत होने की रूढ़ी भी वास्तव में पूँजीजीवी समाज की ही देन है। निरन्तर शोषण कर पाने की परिस्थितियाँ बनी रखने की यही एक नीति रही है कि एक ओर तो मनुष्य को इतना असमर्थ और असहाय बना दिया जाय कि वह उठ न सके दूसरी ओर उस पर दया-दक्षिण्य दिखलाकर भड़कते हुए असन्तोष को ठण्डा कर दिया जाय। किन्तु मैं मनुष्य को दयनीय समझने की इस वृत्ति से ही घृणा करता हूँ। बल्कि मैं तो असल मनुष्य को दयनीय बनाने वाली सत्ता का ही

शत्रु हूँ।

पत्र पहुँचते ही मालती ने जो उसे देखा, तो पहले तो वह सन्न रह गयी, पर फिर उसे जरा भी बुरा नहीं मालूम हुआ। वरन् उसके भीतर विनायक के लिए आदरभाव पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया। वह सोचने लगी, यह आदमी अपने विचारों और विश्वासों का आदर करना जानता है। इसके अन्दर दृढ़ता है। यह कष्ट सहन कर सकता है। प्रलोभन इसको व्रत से विचलित नहीं कर सकते!

मालती पत्र पढ़कर टेबिल पर रखना ही चाहती कि उसी समय आ पहुँची पूर्णिमा। मुसकराती हुई बोली—किसका पत्र है? पढ़ती हुई बहुत प्रसन्न हो रही हो।

मालती ने पत्र पूर्णिमा के हाथ में दे दिया। पूर्णिमा ने पढ़ा, तो पहले तो वह चकित रह गयी। फिर उसने कहा—तुमने बेकार में चिढ़ा दिया! अहसान का पहाड़ ऊपर रक्खे बिना सन्तोष नहीं हुआ। खैर! इससे मुझे बहस नहीं। पर इस तरह का आदमी दरिद्रता का जीवन बिताये और बिताये हम लोगों की सांसारिक, स्वाभाविक, चुहलबाजियों द्वारा, यह तो ठीक नहीं है।

पर मालती खिलखिलाती ही रही। बोली—एक तो इस आदमी में 'सेंस आफ ह्यूमर' नहीं है, दूसरे यह इनफीरिअलरिटी काम्पलेक्स से ग्रस्त है। ऐसी दशा में हम कर ही क्या सकते हैं।

बात यहीं समाप्त नहीं हो गई। पूर्णिमा ने यह पत्र तारिणी को भी दिखलाया। तारिणी कुछ तनकर बोली—मुझे तो इन सब प्रपंचों को सोचने की छुट्टी है नहीं। योग्य आदमी का मैं आदर करती हूँ। परन्तु योग्यता का दम्भ मुझे स्वीकार नहीं होता। मैं तो सोच रही थी कि तीस के बजाय मैं उन्हें अगले मास से पचास रुपये दूँगी पर अब तो वह बात भी गयी।

चिन्तित पूर्णिमा बोली—लेकिन जीजी, सोचो तो सही, तुम करने क्या जा रही हो। यह कितना अच्छा हो कि यही बात तुम एक पत्र में लिख दो। उसमें यह भी स्पष्ट कर दो कि इस बार यह प्रस्ताव मैं अपनी प्रेरणा से ही

पके सम्मुख रख रही हूँ। इसमें कृपा अगर किसी पक्ष में सम्भव हो सकती तो केवल आपके पक्ष में। हम लोग बड़े आभारी होंगे। तात्पर्य यह है कि पको हम किसी तरह छोड़ेंगे नहीं।

पहले तारिणी बोली—'मैं इस झंझट में नहीं पड़ती।' पर जब उसने ना कि इस उत्तर का पूर्णिमा पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा, तो वह बोली—च्छा, तुम अगर ऐसा चाहती हो तो तुम्हारी खातिर मैं माने लेती हूँ। पर र्त यह है कि चिट्ठी तुम्हीं को लिखनी पढ़ेगी।

बात कहती हुई तारिणी बराबर पूर्णिमा की तरफ़ देखती रही।

पूर्णिमा ने कहा—इसमें क्या है ? पत्र मैं लिख दूंगी, हस्ताक्षर तुम कर ना।

तारिणी बोली—अच्छी बात है। मैं हस्ताक्षर कर दूंगी। पर मेरा एक प्रस्ताव है। अबकी बार जब विनायक बाबू आवें, तो उनसे कहा जाय कि मालती कहती थी, मेरी एक बार की डाँट का तो इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि बीस रुपये मासिक बढ़ गये। यदि मैं निरन्तर झिड़कियाँ देने का अवसर पाऊं, तब तो विनायक बाबू मालामाल हो उठ।

"लेकिन जीजी तुम यह कह क्या रहा हो!" आश्चर्य्य से ओत-प्रोत होकर पूर्णिमा बोली—जानती हो विनायक बाबू इसका क्या अर्थ लगायेंगे ? यह आदमी भीतर से इतना कड़ा और उग्र है कि व्यंग-विनोद का भी उत्तर गम्भीर होकर देता है। कहीं कोई ऐसी बात न कह दें जो हमारे लिए अपमानजनक हो।

तारिणी ने उत्तर दिया—तुम इसकी फ़िकर मत करो। कई दिन से माँ जो मुझसे विनायक बाबू के सम्बन्ध में पूछ-ताँछ कर रही हैं। वह इस बात पर राजी हैं कि अगर मालती स्वीकार कर ले, तो वे अपने हिस्से का सारा रुपया विनायक को भेंट कर देंगी।

पूर्णिमा खुशी के मारे नाच उठी। विस्मयाविन्त होकर बोली—पर तुम कहती क्या हो जीजी! ऐसा भी कहीं हो सकता है!

तारिणी ने उत्तर दिया—क्यों नहीं हो सकता ? तीन विषयों का एम० ए०

उसे अब तक तो मिल नहीं सका और अब मिल ही जायगा इसका भी भरोसा नहीं है।

"लेकिन मालती स्वीकार ही क्यों करने लगी"—पूर्णिमा ने सन्देह प्रकट करते हुए कहा।

"तुम तो हो पगली" तारिणी बोली—माँ कह रही थीं कि अगर मालती अपने हृदय में विनायक बाबू के लिए कहीं कोई जगह न रखती होती, तो··· तो सुशील को पढ़ाने के लिए उसे यहाँ रखने का प्रस्ताव वह कभी न करती।

पूर्णिमा के नेत्र तक जैसे हँस रहे थे। उसके मुँह से निकल पड़ा—अच्छा! माँ ऐसा कह रही थीं?—माँ।

"उनका यह भी कहना था"—तारिणी कहती रही—अगर उनके प्रति उसके मन में अनुराग न होता, तो वह उनके साथ-साथ गाड़ी पर जाने को कभी तैयार न होती।

पूर्णिमा के पैर जमीन पर अस्थिर हो रहे थे। वह बोली—माँ ने अध्ययन खूब किया।

तारिणी बराबर कहती जा रही थी—उन्होंने एक दिन यह भी देखा था कि विनायक बाबू से वह इस तरह बातें कर रही थी, जैसे ' जैसे एक के सिवा दूसरा कोई भी कर नहीं सकता।

यहीं पर पूर्णिमा को थोड़ी आपत्ति थी। वह बोली परन्तु बीबी के लिए यह कोई नई बात तो नहीं। आये दिनों अवसर ऐसी सम्भावनाएँ देख पड़ती रही हैं; परन्तु परिणाम सबका नकरात्मक ही रहा है।

तारिणी बोली—मेरी चलेगी, तो मैं इस बार ऐसा कदापि न होने दूँगी।

तीसरे दिन शाम की बात है। स्वदेशी-प्रदर्शनी के कारण सायंकाल माल-रोड पर चहल-पहल विशेष थी। मालती, तारिणी, पूर्णिमा और रेणु सब घूमकर थक गयी हैं। इस चक्कर के समाप्त होते ही सब चली जायंगी। एकाएक कपड़े की एक रेशमी दूकान पर रुककर तारिणी बोली—कोई साड़ी

ही पसन्द करो ।

पूर्णिमा बोली—रेणु दीदी, इस बार तुम्हारी पसन्द हम लोग देखना चाहती हैं।

रेणु सकुचा गई। बना लो, बना लो खूब। विनायक बाबू सामने होते, तो देखती, कैसे मुझे बना पाती हो!

मालती हँसती हुई बोली—यानी विनायक बाबू जैसे कोई डरावने जन्तु हों।

बात कहकर रूमाल उसने मुख पर लगा लिया।

रेणु साड़ी देखने लगी।

पूर्णिमा बोली—उनकी भी दवा हो रही है दीदी! बस, थोड़ी ही कसर है। मालती को देखकर एक खद्दरधारी ने इसी समय नमस्कार किया।

मालती बोली—ओः तुम हो विपिन। कहो, अच्छे तो हो?

आपकी कृपा है।—विपिन बोला—आपको शर्म्माजी ने याद किया है।

आश्चर्य से मालती ने पूछा—मुझको? आप शायद भूल रहे हैं। उन्होंने भाभी को बुलाया होगा।

बात कहते हुए उसने रेणु की ओर देखा भी।

विपिन के होंठो पर मुस्कान फूट पड़ी। आप सोचती हैं, मैं आपको या माँ जी को पहचानता नहीं हूँ?

रेणु बोली—ठीक तो है, हो आओ न! इस तरह तर्क-वितर्क क्यों कर रही हो?

मालती शर्म्माजी के पास जा रही है।

वह चलती हुई कुछ सोच रही है। कुछ चित्र उसके मानस पटल पर आ रहे हैं। अभी कल रेणु उससे मिल चुकी है। कई घंटे वह उसके कमरे में पड़ी रही थी। रज्जन बाहर खेल रहा था। अनेक तरह की बातें रेणु ने की थीं।

आते ही मैंने पूछा, अच्छी तो हो भाभी! तो उन्होंने एक निःश्वास लिया और वह बोली—हाँ, अच्छी हूँ।

"क्या मतलब?" एकाएक आश्चर्य से मैंने पूछा।

वह बोली—मतलब यह है कि मैं तुम्हारे शरण आयी हूँ। मेरी रक्षा

करो बहिन।

बात कहते हुए उसकी आँखें भरी हुई थीं। पलक भीग रहे थे।

मैंने कहा—साफ़-साफ़ कहो, क्या बात है? मैं तुम्हारे लिए सब कुछ कर सकती हूँ।

रेणु रो पड़ी थी। बोली—मैं एक भीख माँगती हूँ।

मैंने कहा—कहो न भाभी, मैं प्राण देकर भी तुम्हारी बात रक्खूँगी।

वह बोली—मैं हार मानती हूँ। वे कभी स्वीकार नहीं करेंगे कि तुम्हें कितना चाहते हैं। तुम उनकी दशा देख रही हो; कितने दुर्बल हो गए हैं? वे कभी तुमसे कहेंगे नहीं कि तुम उनकी प्रेयसी हो। वे प्राण तक दे देंगे। तुम कुछ ऐसा करो कि वे अपने साथ अत्याचार न करें। वे तुमसे हँसें, बोलें, घूमें, । तुम्हारे साथ चाहे जिस तरह रहें, मुझे कभी कोई आपत्ति न होगी। किसी तरह तो वे प्रसन्न रहें, किसी तरह उनका जीवन तो सुरक्षित रहे। विचित्र बात है बहन ! मैं तो समझ ही नहीं सकती। कहते थे प्रेयसी, प्रेयसी तो देवी होती है। वह अर्चना की वस्तु है। उसके साथ कहीं ब्याह हो सकता है? विवाह तो देवी को नारी बना डालता है। विवाह तो शरीर के उन स्थूल व्यापारों से सम्बद्ध है, जिनसे गन्ध आती है।—जो बासी पड़ते-पड़ते अन्त में सड़ जाते हैं। किन्तु प्रेयसी तो प्राणेश्वरी होती है। विवाह तो भूख-शांति का एक मार्ग है। किन्तु तृष्णा जो अजर होती है, उसकी शान्ति तो प्रेयसी ही करती है अपने आत्मदान से। वह बदला नहीं चाहती। उसे कोई आकांक्षा नहीं होती। वह अर्पित ही करती जाती है। किन्तु पत्नी? वह तो बदला चाहती है। चाहती है कि वह कुछ पाए, उसको कुछ प्राप्त हो। कल्पना पर उसका निवास नहीं होता। मानसिक पूजा का जो एक सौन्दर्य होता है एक माधुर्य्य होता है, वह उससे दूर रहती है। वह नश्वर है।

मैं मौन रही। कुछ मेरी समझ में न आया, क्या उत्तर दूं। तब वह बोली—मुझे क्षमा कर दो मालती! मैंने तुमको दोषी समझा था। मैं उनको भी दोषी समझती थी। किन्तु मैं स्पष्ट देख रही हूँ कि वे बहुत ऊँचे हैं। लोग उन्हें पा नहीं सकते।

मैं तब भी मौन रही।

तब वे फूट-फूट कर रो पड़ीं। रोती हुई ही वे बोलीं—तुम अब अपने वचन की रक्षा करो मालती ! उन्हें बचा लो। नहीं तो वे···वे मालूम नहीं अपने को क्या कर डालेंगे।

उत्तर में मैं इतना ही कह सकी—मैं कोशिश करूँगी।

और इस समय मालती चली तो जा रही है ; पर उसके हृदय की गति तीव्र है और पैर कभी-कभी जैसे काँप उठते हैं। उसके मन में आता है, वह कहेगी क्या ? वह यह भी सोचती है—लेकिन वे मुझसे चाहते क्या हैं मैं तो उन्हें तंग नहीं करती, मैं तो उनसे मिलती भी नहीं।

उसकी आँखें भर आना चाहती हैं।

इसी क्षण विपिन ने कहा—बस यहीं है। वह आ रहे हैं, वह।

शर्म्माजी के निकट आते ही विपिन अलग हो गया।

पास आने पर शर्म्माजी बोले—बहुत आवश्यक काम आने पर भी तुमको याद न करूँ, यह मुझसे हो नहीं सका। जानता हूँ, तुम मुझसे नाराज़ हो। लेकिन आज मैं तुमको नाराज़ नहीं करूँगा। घड़ियाँ टल रही हैं। किसी भी क्षण मैं सरकार के निमंत्रण पर जा सकता हूँ। ऐसी परिस्थिति में पत्र का काम कौन सम्हालेगा, कुछ सोचा है ? पत्र के सम्पादन का चार्ज मैं विनायक को और व्यवस्था तुमको सौंप रहा हूँ।

मालती मौन है। वह क्यों कहे कि मैं तैयार हूँ। जहाँ हृदय का मेल नहीं है, वहाँ कर्म का मेल कैसे हो सकता है।

तब शर्म्माजी आप ही बोले—तुम बुरा मान गयी हो। लेकिन मैंने तुमको कभी अपने से दूर नहीं समझा है कितनी पीड़ा, कितना दर्द मैंने सहन किया है, तुम न जान सकोगी। किन्तु क्या सब बातें कहने से ही जानी जाती हैं ? मुझे मालूम है, तुम विवाहित जीवन को आदर्श नहीं मानतीं। तुम्हारे हृदय में विवाह-प्रथा के प्रति घृणा भी कम नहीं है। किन्तु तब तुमने यह सार्वजनिक सेवा का व्रत क्यों ले रक्खा है ? जीवन के प्रति तुम्हें प्रयोग करना ही था, तो अपने मार्ग पर नित नव प्रयोगों के लिए तुमको कोई कमी तो थी नहीं।

यही तुमसे भूल हो गयी है। जो भी हो, तुमको तो अब आदर्श की ओर जाना ही पड़ेगा। समाज की प्रतिष्ठा प्राप्त किये बिना तुम उसका परिवर्तन कैसे कर सकोगी? क्या तुमको सहन होगा कि तुम कहीं व्याख्यान दे रही हो, लोग श्रद्धापूर्वक तुम्हारा एक-एक शब्द सुन रहे हैं। ऐसी स्थिति में कोई तुम्हारा परिचय देता हुआ कहे—यह इतनी स्वेच्छाचारिणी हैं कि नित्य नये-नये प्रेमी खोजती रहती हैं। मानो कि वे गलत कह रहे हों; पर तुम उनका मुँह कैसे बन्द करोगी?

फिर विवाह के प्रति समाज में कहीं-कहीं जो विरोध देख पड़ता है, क्या यह विवाह जीवन के दोषों की एक कटु प्रतिक्रिया नहीं है मैं यह नहीं कहता कि विवाह प्रेम की कल्पना है। किन्तु समाज निर्माण के लिये, अब तक, विवाह से उत्तम दूसरी कोई आदर्श कल्पना भी तो स्थिर नहीं हुई है। फिर अविवाहित-जीवन भी तो विकृतियों से परे नहीं है। मैं पूछता हूँ—क्या मैं तुमको पा नहीं सकता? किन्तु फिर रेणु का गला घोट दूँ? और इसकी ही क्या गारन्टी है कि मुझको पाकर तुम पूर्ण ही हो जाती हो पूर्ण कभी आदमी हो सका है? जो लोग सोच-सोचकर आगे पैर रखते है, वे साहसहीन हैं, कायर हैं; तो जो लोग बिना आगे सोचे-समझे दौड़ते है, क्या वे अबोध नहीं हैं?

"किन्तु आप तो मुझसे घृणा करते हैं।"—मालती बोली। उसकी आँखों से जैसे ज्वाला फूट रही थी।

"कौन कहता है कि···?"

"मैंने अपने कानों से सुना है।"

तुमने गलत नहीं सुना; मैंने गलत समझा हो, यह बात दूसरी है किन्तु मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि तुम जन-सेवा के इस पवित्र पथ में पूर्ण समर्थ बनो। अतीत के दोषों और अपराधों को वर्तमान की छाती पर लादना मैंने छोड़ दिया है। तुम पहले चाहे जैसी रही हो, किन्तु आज तो मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। तुम्हें मालूम नहीं, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ मालती!

रेणु, तारिणी और पूर्णिमा मुख्य द्वार पर खड़े-खड़े प्रतीक्षा कर रही हैं। बात करते उसी ओर जाते हुए मालती के दक्षिण कर को [illegible]

हाथ में ले लिया है। प्रदर्शनी का समय हो जाने के कारण विजली की वत्तियाँ वुझती हुई देखकर शर्म्माजी बोले—अरे, लाइट आफ़ हो रही है !

उत्तरंग मालती बोली—नहीं तो।

देख नहीं रही हो, प्रकाश कितना क्षीण है ? वत्तियाँ वुझ गयी हैं।

मैं तो कुछ और देख रही हूँ। मेरे सामने तो एक ज्योतिपुञ्ज है।

शर्म्माजी मुस्करा कर हाथ छोड़ देते हैं।

इसी समय पीछे से आ गया विनायक। बोला—शर्म्माजी !

आवाज़ सुनकर शर्म्माजी खड़े हो गये।

विनायक उनके कान के पास जाकर फुसफुसाने लगा।

शर्म्माजी बोले—मैं भी तैयार हूँ।

रेणु के पास पहुँचते-पहुँचते विपिन भी मिल गया। सब लोग द्वार से निकलने लगे। द्वार पर वे अभी आये ही थे कि देखते क्या हैं—एक युवती चिथड़े लपेटे हुए है ; फिर भी उसके गुप्तांग पूरे ढक नहीं पाते। वह कुत्तों को ढेला मारती है, किन्तु वे दूर हटते-हटते, फिर निकट आ-आकर उसको घेर लेते हैं। वे भौंक रहे हैं। किन्तु वह पागल युवती संगतिहीन भाषा में कह रही हैं—बेकार भौंकते हो अरे पागलो, क्या मैं तुम्हारी जाति की हूँ ? क्या मेरे कोई है नहीं ?···मेरा स्वामी नुमायश देखने गया है ! लौटने दो, मैं कैसी मरम्मत कराती हूँ।

वह जिसे देखती है, उसी की ओर संकेत करके कह उठती है—तुम भी नहीं हो ! तुम भी नहीं हो ! ज़रा ठिठुक कर वे लोग आगे वढ़ गये। मालती अपनी भाभियों से जा मिली। विनायक शर्म्माजी के ताँगे में वैठ गया। जब ताँगा चलने को हुआ, तो शर्म्माजी वोल उठे—विपिन कहाँ है ? उन्होंने विनायक से कहा—ज़रा देख तो लेना, कहाँ रह गया।

विनायक विपिन को इधर-उधर खोजता रहा। अन्त में जब वह नहीं मिला तो उसे भी लौट जाना पड़ा।

घर पहुँचने पर दो घण्टे वाद शर्म्माजी गिरफ्तार कर लिए गये। उनके चलते-चलते वहुत से लोग वहाँ जमा हो गये थे।

मालती के साथ पूर्णिमा भी आ गयी थी। जन-जन ने अनेक फूल मालाएँ उन्हें पहनायी गयी। मालती ने भी एक माला पहनायी।

पूर्णिमा बोली—इस समय मैं एक सुसंवाद भी आपको देना चाहती हूँ शर्म्माजी।

उसने अपना दाहिना हाथ विनायक के कन्धे पर रख कर इशारे से कहा—शरमाओ मत।

किन्तु विनायक को उन दिन का स्वप्न याद आ रहा है।

उत्फुल्ल शर्म्माजी ने कह दिया—सुनाओ-सुनाओ। जल्दी करो। मैं भी खुशी मना लूँ।

फिर उन्होंने देखा, विनायक इधर-उधर झाँकने लगा है और सकुचाती हुई मालती जैसे मना करती-करती कह रही है—पर वह तो बाद की बात है। अभी से ...।

शर्म्माजी कुछ ताड़ गये। प्रसन्नता से उछलते हुए बोले—दोनों को मेरी बधाइयाँ हैं—हजार-हजार बधाइयाँ!

रेणु ने मालती को छाती से लगा लिया है। उसके नेत्र भर आये हैं।

अन्त में जब शर्म्माजी घर से बाहर होने लगे, तो रज्जन बोला—मैं भी चलूँगा बाबू मुझे भी ले चलो।

गिरधारी ने ऊपर उठाकर उसका चुम्बन लेते हुए कहा—तुम यहीं रहो, मैं तुम्हारे लिए तस्वीरें ले आऊँगा। अच्छा!

पर रज्जन कह रहा था—सात तस्वीरें लाना, अच्छा बाबू!

माल रोड पर—

अब प्रकाश और भी मन्द पड़ गया है। कहीं कोई देख नहीं पड़ता। हाँ थोड़ी दूर पर एक छाया अवश्य देख पड़ती है। दो व्यक्ति जा रहे हैं। उसके लम्बे केश बिखरे हुए हैं। उसकी साड़ी का छोर जमीन पर घिसटता जा रहा है। साथी उसे ठेल रहा है और ऐसा जान पड़ता है, मानो कह रहा है—इधर चलना है, इधर